## प्रवृत्तियाँ

१ पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान

२ शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय

३. लाभदेवी हरजसराय जैन छात्रावास

४ श्रमण ( मासिक )

५ साहित्य-निर्माण

६ शोधवृत्तिया एवं छात्रवृत्तिया

७ व्याख्यानमाला

८ प्रकाशन

२०) रु०

पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला : १८

सम्पादक
डा० मोहनलाल मेहता

# अपभ्रंश कथाकाव्य एवं हिन्दी प्रेमाख्यानक

लेखक
डा० प्रेमचन्द्र जैन
एम ए, पी-एच डी

प्रकाशक
सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति
अमृतसर

प्राप्ति-स्थान
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी-५

# समर्पण

कहा विअक्खण णाणगुरु, वन्ध णिवन्ध सुहाउ।
नव दस्सण मइ सहअ मण, गुरुवर सीव पसाउ॥
जिण्ह अवहस अगाह दह, कियउ पथ निम्माण।
तिन्ह केरउ कर कवँल मँह, अप्पिय सोह पमाण॥

० ०

पूज्य गुरुवर डा० शिवप्रसाद सिह जी
एव वन्दनीया माँ श्रीमती धर्मा जी
के कर-कमलो मे सादर
सविनय समर्पित

० ० ०

# प्रकाशकीय

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान के [illegible] शोधछात्र डा० प्रेमचन्द्र जैन, एम०ए०, पी-एच०डी० का अपभ्रंश कथाकाव्य एवं हिन्दी प्रेमाख्यानक नामक प्रस्तुत प्रबन्ध सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति द्वारा प्रकाशित सातवाँ शोध ग्रन्थ है। इसके पूर्व प्रकाशित छहों शोध ग्रन्थों का विद्वानों ने सम्मानित आदर किया, यह समिति के लिए हर्ष एवं सन्तोष का विषय है।

प्राचीन भारतीय साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग अपभ्रंश कथाकाव्यों का हिन्दी प्रेमाख्यानकों के शिल्प पर क्या व कितना प्रभाव पड़ा है, उसका दिग्दर्शन कराना ही प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है। लेखक ने विषय-विवेचन में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

समिति पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान के अध्यक्ष एवं बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के सम्मान्य प्राध्यापक डा० मोहनलाल मेहता का आभार मानती है जिन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ का परिश्रमपूर्वक सम्पादन किया है। प्रबन्ध के लेखक डा० प्रेमचन्द्र जैन एवं निर्देशक डा० शिवप्रसाद सिंह के प्रति भी समिति कृतज्ञता व्यक्त करती है जिनके प्रशंसनीय पुरुषार्थ के कारण समिति को यह ग्रन्थ प्रकाशित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

हरजसराय जैन
मन्त्री

# पुरोवाक्

प्रस्तुत ग्रन्थ काशी विश्वविद्यालय को पी-एच० डी० उपाधि के लिए लिखे गए 'अपभ्रंश कथाकाव्यो का हिन्दी प्रेमाख्यानको के शिल्प पर प्रभाव' शीर्षक शोध-प्रबन्ध का प्रकाशित रूप है। मैंने इस ग्रन्थ को पूज्य गुरुवर डा० शिवप्रसाद सिंह जी के निर्देशन मे लगभग साढे चार वर्षो के अनवरत प्रयत्न से पूर्ण किया था। एकाधिक बार अपभ्रंश के अगाध सागर के विस्तार को देख भयभीत होने की स्थितियो ने मुझे कूल से ही लौट चलने को विवश किया। परन्तु गुरुवर ने अवगाहन-विधि प्रदान करके मुझे अपभ्रंश-सागर मे उतार ही दिया। मै कबीर की साखी गुनगुनाते कार्य करता रहा—

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाडिया, अनँत दिखावणहार॥

और वही कार्य आज प्रकाशित होकर आपके सामने पहुँच रहा है। मै अपने श्रम और उसके फल से सतुष्ट हूँ। फिर भी इस दिशा मे किया गया यह कार्य सर्वथा पूर्ण ही है, ऐसा मै नही कहूँगा। हिन्दी प्रेमाख्यानो के शिल्प पर कार्य करने की काफी गुजाइश है। हाँ, आगे मेरे जैसे कार्य करने वालों को इस ग्रन्थ से कुछ दिशाबोध होगा—इस कथन मे कोई अत्युक्ति नही समझनी चाहिये। ग्रन्थ मे क्या और वह कहाँ है, इसकी जानकारी विषयानुक्रमणिका से तथा अध्यायो का साराश उपसहार से ज्ञात हो सकेगा। अत यहाँ मै अध्यायो के विषयो की रूपरेखा प्रस्तुत करने की परम्परा का निर्वाह नही कर रहा हूँ।

श्रद्धेय आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखने का अनुग्रह किया है। शोध-प्रबन्ध लिखने मे लेकर अब तक उनकी सदैव मुझ पर कृपादृष्टि रही है, इसे मै अपना सौभाग्य मानता हूँ। वस्तुत किसी भी निर्माण-प्रक्रिया मे अनेकविध वस्तुओ की आवश्यकता होती है। मुझे यह कहने मे कोई सकोच नही है कि यदि मुझे शोध-प्रबन्ध लिखते समय सरक्षक, निर्देशक, सहयोगी, प्रेरक अथवा प्रोत्साहित करने वालो का सद्भाव न प्राप्त होता तो मैं निश्चित ही अपना कार्य सम्पन्न करने मे

असमर्थ रहता । [illegible]
जिनसे मैं उपकृत और लाभान्वित हुआ हूँ । इस अवसर पर मैं सभी का स्मरण करना चाहता हूँ । फिर भी स्थानाभाव अथवा भूल से कुछ असावधानी हो जाये तो मैं क्षमा चाहूँगा । काशी विश्वविद्यालय का मैं चिरऋणी रहूँगा, क्योंकि मैं इस संस्था का विद्यार्थी रहा हूँ । पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी के मंत्री श्री हरजसराय जैन तथा अध्यक्ष डा० मोहनलाल मेहता का किन शब्दों में आभार मानूँ जिन्होंने मुझे शोध छात्रवृत्ति प्रदान की तथा इस प्रबन्ध को प्रकाशित करने की कृपा की । प० वाचस्पति पाठक, स्व० डा० हीरालाल जैन, डा० ए० एन० उपाध्ये, प० दलसुख मालवणिया, डा० भागचन्द्र जैन ने मेरी शोध-सम्बन्धी कठिनाइयों को पत्रों द्वारा हल करने की कृपा की । मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । डा० कृष्णबिहारी मिश्र, डा० दरबारी-लाल कोठिया, प० फूलचन्द्र शास्त्री, डा० गोकुलचन्द्र जैन, श्री सूर्यमणि मिश्र, श्री छोटेलाल गुप्त, श्री दुर्गाप्रसाद भट्टाचार्य, श्री एस० के० 'हिन्दी' और डा० चन्द्रप्रकाश त्यागी भी मेरे लिए अविस्मरणीय हैं । इन सभी ने मुझे बराबर लिखने की प्रेरणा दी । मित्रों में श्री मोहनलाल, लालचन्द्र-बालचन्द्र शास्त्री, जयप्रसाद बलोदी, के० रवि० मेनन, शालिग्राम त्रिपाठी और बलराम रेकवार के सहयोग को नहीं भुलाया जा सकता । पिता श्री शोभाराम जी जैन, अग्रज डा० ज्ञानचन्द्र जी जैन ने अध्ययन के लिए पारिवारिक समस्त दायित्वों से मुक्त रखकर मुझे पूर्ण स्वतन्त्र और निश्चिन्त रहने दिया । विशेष रूप से यह कार्य इसीलिए सम्पन्न हो सका । मैं नतमस्तक हूँ ।

अन्त में मैं उन समस्त लेखकों, आलोचकों और ग्रन्थकारों का आभारी हूँ जिनसे मैंने शोध-प्रबन्ध के लिए सहायता ली है । विद्वान् पाठकों से निवेदन है कि वे मेरी त्रुटियों को सुझाकर उन्हें दूर करने का अवसर प्रदान करें ।

सुमेर आई हॉस्पिटल
इस्लामनगर, बदायूँ
१६–६–७३

**प्रेमचन्द्र जैन**
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
साहू जैन कॉलेज
नजीबाबाद ( उ० प्र० )

# प्राक्कथन

अपभ्रंश कथाकाव्य एवं हिन्दी प्रेमाख्यानक डा० प्रेमचन्द्र जैन का विवेचनापूर्ण ग्रंथ है। अस्पष्ट रूप से बराबर ही अनुभव किया गया है कि अपभ्रंश कथाकाव्यों की परंपरा का विकास ही हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्य हैं। परन्तु दो कारणों से इसे स्पष्ट रूप से प्रमाणित करने में बाधा पड़ी है। एक तो यह है कि अपभ्रंश के कथाकाव्य अधिकतर जैन कवियों की रचना हैं और यह मान लिया गया है कि वे धार्मिक ग्रंथ हैं। दूसरा यह है कि हिन्दी में पाये जाने वाले प्रेमाख्यानक नामक काव्य अधिकतर मुसलमान कवियों के हैं और उनमें फारसी कविता के प्रभाव की संभावना अधिक है। परन्तु ये दोनों बातें एक हद तक ही सही हैं। इन दोनों प्रकार के काव्यों का बारीकी से अध्ययन आवश्यक था। किस प्रकार की कथानक-रूढ़ियों का दोनों प्रकार के काव्यों में प्रयोग हुआ है और किस हद तक दोनों प्रकार के काव्यों में काव्य की अन्यान्य रूढ़ियों और अभिप्रायों का आश्रय लिया गया है, यह जाने बिना इनकी प्रकृति की ठीक-ठीक जानकारी नहीं हो सकती। सौभाग्य से हमें कुछ ऐसे भी अपभ्रंश के कथाकाव्य मिले हैं जो जैन परंपरा के नहीं कहे जा सकते। और कुछ ऐसे भी प्रेमाख्यानक काव्य मिले हैं जो मुसलमान कवियों से भिन्न सम्प्रदाय के कवियों द्वारा लिखे गये हैं। इन सबकी सावधानी से परीक्षा की जानी चाहिये। मुझे प्रसन्नता है कि आयुष्मान् डा० प्रेमचन्द्र जी ने हिन्दी-अपभ्रंश के इन कथाकाव्यों का परिश्रमपूर्वक परीक्षण किया है। उनमें पायी जाने वाली कथानकगत एवं काव्यगत रूढ़ियों का, विभिन्न श्रेणियों के अभिप्रायों का तथा प्रतीकों का बहुत अच्छा विश्लेषण किया है और एक लम्बी परम्परा का संधान पाया है। इस विवेचन से हिन्दी साहित्य के अनुशीलन को एक नयी दिशा मिलेगी। मुझे आशा है कि साहित्य-प्रेमी इसका स्वागत करेंगे। मैं आयुष्मान् डा० प्रेमचन्द्र जैन को उनकी परिश्रमपूर्वक की गयी खोज के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

वाराणसी
१३-६-[illegible]

हजारीप्रसाद द्विवेदी

# प्रस्तुत पुस्तक में

## अध्याय १



## अध्याय २



## अध्याय ३



## अध्याय ४

अध्याय ७

# अपभ्रंश कथाकाव्य एवं हिन्दी प्रेमाख्यानक

## अध्याय १

# प्रास्ताविक

भारतीय वाङ्मय मे ही नही अपितु विश्व-वाङ्मय मे प्रेम-प्रसग अधिकाश काव्यो की विषयवस्तु रहा है। नही कहा जा सकता कि प्रेम तत्त्व की उत्पत्ति और अनुभूति मानव-हृदय मे कब कैसे हुई। इतना सच है कि भारतीय साहित्य मे वैदिककाल से वर्तमान समय तक प्रेम को लेकर चर्चाएँ हुईं, आख्यानक, चरित, चम्पू एव कथा-काव्यो मे लेकर उपन्यास, कहानी और वार्ताएँ तक लिखी गईं। वैदिककाल के पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी सवाद, श्यावाश्य आदि, सस्कृतकाल के अथवा सस्कृत भाषा मे रचित पुरुरवा-उर्वशी, नल-दमयन्ती, दुष्यन्त-शकुन्तला, उषा-अनिरुद्ध, कृष्ण-रुक्मिणी, अर्जुन-सुभद्रा, भीम-हिडिम्बा आदि के प्रेम प्रसगो को आधार बनाकर लिखे गये काव्यो तथा नैषधचरित, वासवदत्ता, कादम्बरी आदि प्रेमकृतियो, प्राकृत भाषा मे प्रणीत तरगवईकहा, लीलावईकहा, आरामसोहाकहा, सिरिवालकहा, अजनासुन्दरीकहा, जयसुन्दरीकहा, भव्यसुन्दरीकथा, पद्मश्रीकथा, विश्वसेनकुमारकथा, सुरसुन्दरकथा आदि, अपभ्रश भाषा मे प्रणीत भविसयत्तकहा, पुरदरकहा, जिनरत्तिकहा, सुअधदसमीकहा, विलासवईकहा, सिरिवाल-कहा, वर्द्धमानकथा, निद्दुहसत्तमीकहा, सुदसणचरिउ, जबूसामिचरिउ, पासणाहचरिउ, करकडुचरिउ, णायकुमारचरिउ, जसहरचरिउ, पउम-सिरिचरिउ, सुलोयणाचरिउ, भविसयत्तचरिउ, सनत्कुमारचरित, णेमिनाहचरिउ, चदप्पहचरिउ आदि का उक्त सन्दर्भ मे उल्लेख किया जा सकता है।

हिन्दी का प्रेमाख्यान साहित्य भी पूर्व प्रेमाख्यानको की शृखला मे महत्त्वपूर्ण कडी के समान जुडा हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास जी के पहले लोकभाषा मे प्रेम-आख्यानको का ऐसा साहित्य काफी अधिक मात्रा मे लिखा गया था जिसके कथा अश का आधार लोकप्रचलित कथानक

थे।[1] इन प्रेमाख्यानकों का उस समय वही स्थान था जो आज प्रेमविषयक उपन्यासों का। रसिकजन अथवा रोजी-रोटी की समस्या से मुक्त समय यापन करने वाले लोग तत्कालीन प्रेमाख्यानकों को रुचि से पढ़ते थे। जैन कवि बनारसीदास के आत्म-चरित 'अर्द्धकथानक' से यह बात प्रमाणित हो जाती है

> तब घर मे बैठे रहं, जाँहि न हाट बजार।
> मधुमालति मिरगावती, पोथी दोइ उचारि ॥ ३३५ ॥[2]

यो तो हिन्दी प्रेमाख्यानो का प्रारम्भ हिन्दी के रासो ग्रन्थो मे ही मानना चाहिए। रासो ग्रन्थ परम्परा मे पृथ्वीराजरासो एक विशाल ग्रन्थ के रूप मे हमारे सामने आता है। इसमे अपभ्रंश की अनेक प्रकार की शैलियो का सम्मिश्रण मिलता है। वस्तुत. इस ग्रन्थ को भी प्रेमाख्यानकों की कोटि मे ही समझना चाहिए।[3] इस सन्दर्भ मे प० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है 'मूलत ये सभी प्रेम-कथानक है। इनमे प्रेमकथानकों की सभी विशेषताएँ प्राप्त होती है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ नायक की युद्ध-पटुता और शौर्य-प्रदर्शन मुख्य हो गया है और प्रेम-व्यापार गौण।'[4] इसी प्रकार वीसलदेवरासो भी एक प्रेम-कहानी ही है। यह मसृणरास काव्य है जिसमे युद्ध का कही भी प्रसग नही आता। खासतौर से यह विप्रलभ शृगार की महत्त्वपूर्ण कृति है।

इसी प्रकार मध्ययुगीन हिन्दी प्रेमाख्यानकों मे चन्दायन, सखमसेन, पद्मावतीकथा, चदकुवरि री बात, सदयवत्स-सावलिगा की कथा, मधुमालतीवार्ता ( चतुर्भुजदास ), छिताईवार्ता, मझनकृत मधुमालती, मृगावती, उपाहरण, प्रेमविलास-प्रेमलता, रूपमजरी, कृष्ण-रुक्मिणी, चित्ररेखा, चित्रावली, इन्द्रावती, रसरतन, नल-दमयन्तिकथा, ज्ञानदीप, माधवानल, कामकन्दला पर आधारित अनेक कृतियाँ ( कुशललाभ, गणपति, बोधा, आलम और दामोदर कृत ), रुक्मिणीपरिणय, सत्यवती की कथा, हस-जवाहिर, अनुरागबाँसुरी, प्रेमदर्पण, भाषाप्रेमरस,

---

१ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, वि० स० २००९, पृ० २५९
२ बनारसीदास, अर्धकथानक, स० नाथूराम प्रेमी, १९५७, पृ० ३८
३ डा० सरला शुक्ल, हिन्दी-सूफी कवि और काव्य, वि०स० २०१३, पृ० ३७५
४ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ० २६१

कनकावती, कामलता, मधुकरमालती, रतनावली, छोता आदि जान कवि कृत उनतीस प्रेमाख्यानो तथा नूरजहाँ, लैला-मजनूँ, युसुफ-जुलेखा आदि की गणना की जा सकती है।

उक्त हिन्दी प्रेमाख्यानक साहित्य के सम्वन्ध मे एक बात जो उल्लेखनीय है वह यह कि हिन्दी प्रेमाख्यानको की दो धाराएँ रही हैं—१ विशुद्ध भारतीय या हिन्दू प्रेमाख्यान, २ सूफी प्रेमाख्यानक। इन धाराओ का विशद विवेचन प्रस्तुत प्रवन्ध के द्वितीय अध्याय मे किया गया है अतः यहाँ इनका उल्लेख मात्र ही पर्याप्त होगा। सूफी कवियो ने ममनवी पद्धति मे रचनाएँ की। परिणामत भारतीय प्रेमाख्यानको की शैली मे परिवर्तन आ गया। सूफियो के मतानुसार लौकिक प्रेम तथा अलौकिक प्रेम मे कोई विशेष अन्तर नही होता। उनकी मान्यता है कि इश्क हकीकी ( अलौकिक प्रेम ) के लिए इश्क मजाजी ( लौकिक प्रेम ) का होना भी अनिवार्य है :

इश्क हकीकी के लिए इश्क मजाजी है जरूर।
बैवसीला कही वन्दे को खुदा मिलता है॥
( एक सूफी कवि )

इन सूफी साधको और कवियो ने भारतीय-अभारतीय पद्धतियो का ध्यान न कर दोनो का मिश्रण कर दिया। इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानक साहित्य एक नये काव्यरूप मे विकसित हुआ। इसका एक कारण यह भी था कि मध्यकालीन राजनीतिक उथल-पुथल के कारण प्रेमाख्यानको की शैली पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव पडे।

डा० शिवप्रसाद सिंह भारतीय प्रेमाख्यानको के विषय मे लिखते हैं 'भारतीय प्रेमाख्यानक सम्पूर्ण एशियाई संस्कृति की प्रतिफलन पीठिका है। इनमे अनुस्यूत तत्त्वो के समाजशास्त्रीय, पुरातात्त्विक और ऐतिहासिक अध्ययन का अभी आरम्भ ही हुआ है। यह विपुल ज्ञानराशि अनेकानेक सुधीजनो के श्रम और शक्ति का आह्वान करती है।'[१] वस्तुत हिन्दी प्रेमाख्यान साहित्य मे विविध रूपो का मिश्रण होने से एक नये काव्य रूप का जन्म हुआ है। हिन्दी साहित्य मे पौराणिक प्रेमाख्यानो के आधार पर भी कई रचनाएँ हुई जिनके माध्यम से यह कहा जा सकता है कि

---

१ डा० शिवप्रसाद सिंह, रसरतन की भूमिका, पृ० ७२

था। जिसका विवेचन कथा और आख्यायिका का लक्षण प्रस्तुत करते समय इसी अध्याय मे आगे किया जायेगा।

बाणभट्ट की कादम्बरी संस्कृत साहित्य मे एक अनमोल रत्न है। कादम्बरी का कथानक एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। इसमे प्रमुख पात्रो के चरित्र को तीन जन्मो की व्यापक पीठिका पर प्रस्तुत किया गया है। फिर भी विशेषता यह है कि कही भी शैली-प्रवाह मे, कथानक की रोचकता और उसके तारतम्य मे अवरोध उत्पन्न नही होता। कादम्बरी की कथा के सम्बन्ध मे डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है 'कथा की दृष्टि से कादम्बरी का सस्थान उस वसुधान-कोश के समान है जिसमे ढक्कन के भीतर ढक्कन खुलता हुआ पद-पद पर नया रूप, नया यश और नया विधान आविष्कृत करता है। यहाँ पात्रो के चरित्र एक जीवन मे नही, तीन-तीन जीवन पर्यन्त हमारे सामने आते है।'[1] इसकी कथावस्तु को सक्षेप मे इस प्रकार देखा जा सकेगा[2]—

१ शूद्रक की राजसभा मे चाडाल कन्या का आगमन तथा वैशम्पायन तोते का परिचय और उसके द्वारा कथा का आरम्भ।

(अनुच्छेद १–११ तथा अनु० १२–१६)

२ विंध्याटवी-वर्णन। (अनु० १७–३५)

जावालिका आश्रम, जावालि ऋषि द्वारा वैशम्पायन तोते की कथा का आरभ। (अनु० ३६–४३)

३. उज्जयिनी और तारापीड का वर्णन, चन्द्रापीड का जन्म।

(अनु० ४४–६७)

चद्रापीड की शिक्षा, यौवराज्याभिषेक और दिग्विजय।

(अनु० ६८–१२३)

४ अच्छोद सरोवर का वर्णन, चन्द्रापीड और महाश्वेता की भेंट एव महाश्वेता का अपना वृतात कथन। (अनु० १२४–१८१)

कादम्बरी और चन्द्रापीड का प्रथम मिलन। (अनु० १८२–२१२)

५ चन्द्रापीड का उज्जयिनी मे लौटना, कादम्बरी का विरह और प्रेम-सदेश। (अनु० २१३–२५७)

---

१ डा० वा० अग्रवाल, कादम्बरी एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० ३

२ वही, पृ० ३-४

चन्द्रापीड का पुनः गन्धर्व लोक मे जाना और मरण।
(अनु० २९८–३००)

६ महाश्वेता और कादम्बरी का शोक एवं प्रतियोगन।
(अनु० ३०१–३१५)

तारापीड और विलासवती का शोक, जाबालि ऋषि द्वारा उद्घाटित कथासूत्र की समाप्ति। (अनु० ३१६—३२९)

७ श्वेतकेतु द्वारा भेजे हुए कपिजल का वैशम्पायन से जाबालि आश्रम मे आकर मिलना। (अनु० ३३०–३३७)

जाबालि आश्रम से वैशम्पायन तोते का भागना और चाण्डाल कन्या द्वारा पकड़कर शूद्रक की सभा मे लाया जाना। (अनु० ३३८–३४७)

८ लक्ष्मी द्वारा शूद्रक तथा वैशम्पायन के पूर्वजन्म का परिचय देना और उनका जन्म शापमोचन। (अनु० ३४८)

महाश्वेता और पुण्डरीक एव चन्द्रापीड और कादम्बरी का समागम।
(अनु० ३४९–५२)

कादम्बरी के विषय मे उक्त प्रसगो के उल्लेख करने का केवल यही उद्देश्य है कि जिस प्रकार इस कथा-काव्य मे प्रधान अथवा प्रमुख पात्रो की कथा तीन भवो की कथा का निर्देश करती है, ठीक उसी प्रकार अपभ्रंश के एकाधिक जैन चरित-कथाकाव्यो मे कई-कई भवो की कथाओ का उल्लेख होता है। प्राकृत भाषा मे रचित समराइच्चकहा[1] मे तो समरादित्य के नौ भवो तक का इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

सस्कृत के चरितकाव्यो की परम्परा मे दण्डी (६०० ई०) का दशकुमारचरित भी एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमे दस राजकुमारो के देशाटन की कथा है। दशकुमारचरित के नायक अपनी इष्टसिद्धि के लिए उचितानुचित सभी साधनो का प्रयोग करते है। लक्षण-निर्माताओ या आचार्यो द्वारा निर्धारित परम्पराओ का दण्डी द्वारा उल्लघन किया गया है। क्योकि गद्य काव्य मे भी कथा-नायक शीलवान्, धैर्यवान् और गुणवान् होना चाहिए। परन्तु दशकुमारचरित के दसो राजकुमारो को कुत्सित और गर्हित स्थानो पर भी विचरण करते देखा जा सकता है। इस कृति

---

१ हरिभद्रसूरिविरचित समराइच्चकहा (इसका सपादन हर्मन जैकोबी एव उसके बाद एम० सी० मोदी ने किया है)।

मे साधु, पाखण्डी, जादूगर, कामान्ध, धूर्त, वेश्याओ और सेठो आदि के विपय मे सजीव चित्रण तो है ही, साथ ही ऐसे अनुभवसिद्ध प्रयोग भी हैं जो सामाजिक जीवन निर्वाह करने वालो के लिए वडे उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। दण्डी के मत से कथा और आख्यायिका मे केवल नाम का भेद है।[1] वाण ने हर्पचरित को आख्यायिका और कादम्वरी को कथा माना है। हर्पचरित्त के प्रारम्भ मे वाण लिखते हैं—'**करोम्याख्यायिकाम्बोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्**' अर्थात् मैं इस आख्यायिका रूपी समुद्र मे चपलता-वश जिह्वा चला रहा हूँ। कादम्वरी को वाण ने 'कथा' द्वारा सम्वोधित किया है—'**धिया निवद्धेयमतिद्वयी कथा**'।[2] वाण ने कथा और आख्या-यिका सम्वन्धी जो विचार प्रस्तुत किया था उससे स्पष्ट है कि कथा कल्पना-जन्य और आख्यायिका का आधार इतिहास होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि आख्यायिका और कथा के परवर्ती लक्षण निर्धारण मे वाण के इस सकेत मे वडी सहायता मिली। चाहे चरितकाव्य हो अथवा कथा-काव्य, उसमे किसी न किसी रूप मे कथा तो अनुस्यूत रहेगी ही। अतएव यदि किंचित् विचार करके देख तो आख्यान-चरित और कथाकाव्यो मे कोई विशेप मौलिक अन्तर नही मिलता। इन सभी का मूलोद्देश्य कथा को रसमयी अभिव्यक्ति ही है।

डा० शम्भूनाथ सिंह चरितकाव्य को प्रवन्धकाव्य का ही एक विशेप रूप मानते हैं।[3] उनका कथन है कि प्रवन्धकाव्य, कथाकाव्य और इति-वृत्तात्मक कथा (पुराणकथा आदि) के लक्षणो का समन्वय हुआ है इसीलिए प्राय चरितकाव्यो ने अपने को कभी चरित, कभी कथा और कभी पुराण कहा है। चरितकाव्य की कुछ निजी विशेपताएँ होती हैं जिससे वह पुराण, इतिहास और कथा से भिन्न एक विशेप प्रकार का प्रवन्धकाव्य माना जाता है। सस्कृत साहित्य मे चार शैलियो—शास्त्रीय शैली, ऐतिहासिक शैली, पौराणिक शैली और रोमासिक शैली मे लिखे

---

१ डा० सत्यनारायण पाण्डेय, सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २५८

२ कादम्वरी, पूर्वार्द्ध, श्लोक २०

३ डा० शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्यो का स्वरूप और विकास, पृ० २८६-८७

प्रबन्धकाव्य मिलते है। अपभ्रंश मे पौराणिक और रोमासिक दोनो शैलियो के प्रबन्धकाव्य मिलते है और सभी चरितकाव्य है।

चरितकाव्यो का लक्षण इस प्रकार किया गया है

१ चरितकाव्य की शैली आख्यायिका की शैली होती है। उसमे चरितनायक के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त की अथवा कई जन्मो (भवा-न्तरो) की कथा रहती है।

२ चरितकाव्यो मे प्राय प्रेम, वीरता और धर्म या वैराग्य-भावना का समन्वय दिखलाई पडता है। सबमे कोई न कोई प्रेमकथा अवश्य होती है और उसका स्थान गौण नही, महत्त्वपूर्ण होता है। प्राय. सभी चरितकाव्यो मे प्रेम का प्रारम्भ समान रूप से होता है।

३ प्राय सभी मे कथारम्भ के लिए वक्ता-श्रोता योजना अवश्य रहती है।

४ उसमे अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियो, कार्यो और वस्तुओ का समावेश अवश्य रहता है, जो पौराणिक और रोमासिक शैली के कथाकाव्यो, पौराणिक कथाओ और लोककथाओ की देन है।

५ उनका कथानक शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यो जैसा पचसधियो से युक्त और कार्यान्विति वाला नही होता। वह कथानको की तरह स्फीत, विशृखल, गुम्फित या जटिल होता है।

६ शैली कथाकाव्यो से अधिक उदात्त होती है।

७ यह उद्देश्यप्रधान होता है, मनोरजनप्रधान नही।

उद्देश्य और विषयवस्तु की दृष्टि से चरितकाव्य छ प्रकार के होते है—धार्मिक, प्रतीकात्मक, वीरगाथात्मक, प्रेमाख्यानक, प्रशस्तिमूलक और लोकगाथात्मक। हिन्दी के अधिकाश मध्यकालीन प्रबन्धकाव्य अप-भ्रश के प्रबन्धकाव्यो की भाति चरितकाव्य ही है।

यहाँ हम सस्कृत के लक्षणग्रन्थो के आधार पर कथा-आख्यायिका के रूप पर विचार करेगे। ‘कथा’ शब्द सस्कृत की ‘कथ्’ धातु से बना है। इसका सामान्य अर्थ होता है ‘जो कुछ कहा जाये’ वह कथा है। बगला भाषा मे भी उक्त अर्थ मे ही इसका प्रयोग किया गया है। यदि कथा का अर्थ उसके सामान्य अर्थ पर से ही निर्धारित किया जाये तब कदाचित् वह अनुपयुक्त होगा। क्योकि जो कुछ कहा जाये वह सभी कथा नही माना जा सकता। श्रीमद्भागवत मे ससार ताप से सतप्त प्राणो के लिए कथा को पीयूष के समान जीवनदायिनी कहा गया है

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना ॥[१]

श्रीमद्भागवत मे ही 'वार्ता' और 'कथा' शब्द समान अर्थ मे प्रयुक्त हुए हैं।[२] सस्कृत-आचार्यो ने महाकाव्य, कथा और आख्यायिका मे भेद किया है। दडी का कथन है कि कथा गद्य मे ही निवद्ध होनी चाहिए। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ का मत है कि कथा मे वस्तुवर्णन सरस हो और वह गद्य मे ही रचित हो। कही पर इसमे आर्या तथा कही वक्रापवक्र छन्द भी आते हो। कथा के प्रारम्भ मे नमस्कार एव दुर्जनादि के चरित्र पद्यमय वर्णित होते हैं। जैसे कादम्वरी आदि

कथायां सरस वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् ॥
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्रापवक्रके ।
आदौ पद्यैर्नमस्कार खलादेर्वृत्तकीर्तनम् ॥[३]

यथा—कादम्वर्यादिः ।

अग्निपुराण मे गद्य-काव्य के पाँच भेद कहे गये है—आख्यायिका, कथा, खडकथा, परिकथा और कथानिका।[४] उसके अनुसार आख्यायिका वह है जिसमे लेखक के वश की कुछ विस्तार से प्रशसा हो, जिसमे कन्याहरण, सग्राम, विप्रलम्भ आदि विपत्तियो का वर्णन हो, जिसमे रीति और वृत्ति अति प्रदीप्त शैली मे हो, जिसमे उच्छ्वास नामक परिच्छेद हो, जिसमे चूर्णक शैली का वाहुल्य हो एव वक्त्र और अपवक्त्र नामक श्लोक हो।[५]

इसके विपरीत कथा का लक्षण इस प्रकार किया गया है :

श्लोकै स्ववशं सक्षेपात् कविर्यत्र प्रशसति ।
मुख्यस्यार्थावताराय भवेद् यत्र कथान्तरम् ॥
परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद् वा लम्वकै क्वचित् ।
सा कथा नाम तद्गर्भे निवध्नीयाच्चतुष्पदीम् ॥[६]

---

१ श्रीमद्भागवत, १० ३१ ९

२ यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिक व्रजेत् ।
कथाशब्द समाकर्ण्य तत्त्रिक तरुणायते ॥ श्रीमद्भागवत (माहात्म्य), ३ ९

३ आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, षष्ठोच्छ्वास, श्लो० ३३२-३३

४ अग्निपुराण, ३६६ १२

५ वही, ३३६ १३-१४

६ वही, ३३६ १५-१७

अर्थात् कथा वह है जिसके आरम्भ में कविवंश का संक्षिप्त वर्णन हो, मुख्यार्थ का आरम्भ करने के लिए भूमिका में इसकी कथा कही जाय और जिसमें परिच्छेद न हो, अथवा कहीं-कहीं पर लम्बक हो।

आचार्य भामह ने कथा को 'इतिहासाश्रित' माना है।[1] आख्यायिका के विषय में भामह के मत से सुन्दर गद्य में लिखी सरस कहानी वाली रचना को आख्यायिका कहते हैं। यह उच्छ्वासों में विभक्त होती है। कथा कहने वाला नायक ही होता है। उसके बीच-बीच में वक्त्रापवक्त्र छन्द आते हैं। कन्यापहरण, युद्ध और अन्त में नायक की विजय का वर्णन होता है।[2] दण्डी कथा और आख्यायिका में भेद स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार कथा और आख्यायिका एक ही कोटि की रचनाएँ हैं। चूंकि कहानी नायक कहे अथवा कोई अन्य, अध्याय का विभाजन हो या न हो, उनका नाम उच्छ्वास अथवा लम्भक रखा जाये, बीच में वक्त्रापवक्त्र छन्द आवे या नहीं इन सबसे कहानी में क्या अन्तर पड़ता है? इसीलिए इन बाह्य भेदों के कारण कथा और आख्यायिका में भेद नहीं करना चाहिए।[3] भामह ने कथा और आख्यायिका में भेद किया है, यह पहले लिखा जा चुका है परन्तु वे कथा और आख्यायिका का प्रयोजन एक ही मानते हैं। वह प्रयोजन है—अभिनय।[4]

अमरकोषकार के मतानुसार आख्यायिका में ऐतिहासिक आधार होना चाहिए, परन्तु कथा कल्पना-प्रसूत होती है। आचार्य विश्वनाथ ने पूर्ववृत्त को आख्यान की संज्ञा दी है।[5] संस्कृत आख्यान-साहित्य दो भागों में विभक्त किया गया है—नीतिकथा ( Diadectic fables ) और लोककथा अथवा मनोरंजक कथा ( Fairy-tales )। प्रथम प्रकार की

---

१ शब्दश्छन्दोऽभिधानार्थां इतिहासाश्रया कथा।
लोको युक्तिः कलाश्चेति मन्तव्या काव्यगैर्वशी॥

—काव्यालंकार, १ ९

२ भामह, काव्यालंकार, १ २५-२८

३ दण्डी, काव्यादर्श, १ २३-२८

४ सर्गबन्धोऽभिनेयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे। —काव्यालंकार, १ १८.

५ आख्यानं पूर्ववृत्तोक्तिः।

कथाओ का लक्ष्य होता है उपदेश और दूसरे प्रकार की कथाओ का मात्र मनोरजन ।[1]

इस प्रकार कथा-आख्यायिका की परिभाषा विभिन्न आचार्यों तथा कोशकारो ने विभिन्न प्रकार से की है। हिन्दी साहित्य कोश मे कथा की परिभाषा इस प्रकार की गई है · 'किसी ऐसी कथित घटना का कहना या वर्णन करना जिसका कोई निश्चित परिणाम हो। घटना के वर्णन मे कालानुक्रम भी आवश्यक है, जैसे सोमवार के पश्चात् मगलवार, दिन के बाद रात, बचपन के बाद यौवन आदि। मनुष्य, पशु-पक्षी, नदी-पहाड़ आदि। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से कथा की घटना का सम्बन्ध हो सकता है। जिससे सम्बन्धित घटना हो, उसकी किसी विशेष परिस्थिति या परिस्थिति का आदि और अन्त से युक्त वर्णन ही कथा है'।[2] प्रसिद्ध उपन्यास आलोचक ई० एम० फोर्सटर ने लिखा है कि कथा, समय की शृखला मे बँधा हुआ घटनाओ का पूर्वापर विवरण है।[3] इसी के समान एडविन म्योर की भी परिभाषा है। वे लिखते है 'गद्य-काव्य की सबसे सरल विधा कथा है जो घटनाओ को अद्भुत ढग से ब्योरेवार रिकार्ड करती है'।[4]

यहाँ सस्कृत कथाकाव्यो के लक्षणो के साथ-साथ यह जान लेना भी अनिवार्य हो जाता है कि कथाकाव्यो की भाषा के विषय मे आचार्यों का क्या मत रहा था। यो दण्डी आदि के अनुसार कथा गद्य मे ही रचित होनी चाहिए। परन्तु रुद्रट की मान्यता है कि कथा के आरम्भ मे देवता और गुरु की वदना होनी चाहिए। ग्रन्थकार को ग्रथ एव स्वय का परिचय देना चाहिए। कथोद्देश्य व्यक्त करना चाहिए। सकल शृगारो से

---

१ डा० सत्यनारायण पाडेय, सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७१

२ डा० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्यकोश, पृ० १८३-८४

३ "It is narrative of events arranged in their time sequence" —E M Forster, Aspects of Novel, p 47

४ "The most simple form of prose fiction is the story which records a succession of events, generally marvellous" —Edwin Muir, The Structure of Novel, p 17.

विभूषित कन्यालाभ ही इस कथा का उद्देश्य होता है। इस प्रकार सस्कृत मे कथा गद्य और अन्य भाषाओ मे पद्य मे लिखी जाती है

> कन्यालाभफला वा सम्यग्विन्यस्य सकलशृङ्गारम्।
> इति सस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन॥[1]

उपर्युक्त श्लोक मे 'कथामगद्येन चान्येन' पद ध्यान देने योग्य है। सस्कृत भाषा का स्पष्ट उल्लेख करके लक्षणकार ने 'अन्येन' पद से अपभ्रश-प्राकृत की ओर इगित किया है, यह अधिक सभव जान पडता है। यदि सस्कृता-चार्यो के कथासम्बन्धी उक्त लक्षणो से निष्कर्ष निकाला जाए तो रुद्रट की परिभाषा का दृष्टिकोण काफी उदार कहा जायगा। वैसे लक्षणग्रथो मे आचार्यो ने इन सब बातो का ध्यान न्यूनतम ही रखा है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि रुद्रट से कुछ पूर्व की कौतूहल कवि की 'लीलावती' नामक कथा मिली है जो ठीक रुद्रट के कथालक्षणो पर घटित होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि रुद्रट ने कथा या महाकथा के लिए जो लक्षण बताये है वे उस समय की प्राकृत या अपभ्रश की कथाओ को देख कर ही लिखे गये होगे। हिन्दी प्रेमाख्यानको मे से एका-धिक प्रेमाख्यानको पर रुद्रट की परिभाषारूपी कसौटी कसी जा सकती है। पुहुकर कवि कृत 'रसरतन' मे रुद्रट की परिभाषा का अनुसरण किया गया है।[2] पुहकर ने आरम्भ मे देव-वदना की है। सूफी प्रेमाख्यानको की तरह शाहेवक्त की स्तुति भी की है—आदि।

कथा और आख्यायिको मे कुछ सूक्ष्म भेदो के होते हुए भी इनके सदर्भ मे कहा जा सकता है कि ये एक ही श्रेणी की रचनाएँ होती थी। इनमे कोई मौलिक भेद प्रतीत नही होता। हितोपदेश, कथासरित्सागर, सिंहासनबत्तीसी, वैतालपच्चीसी, कादम्बरी, हर्षचरित, वासवदत्ता, दश-कुमारचरित आदि कथा-आख्यायिकाओ को बहुत-कुछ प्रकृति एक-दूसरे से मिलती है। कथा-आख्यायिका के उपर्युक्त सभी मतो को एकत्र करके सर्वमान्य लक्षणों की रूपरेखा इस प्रकार बन सकती है

१ कथा-आख्यायिका मे रोमाचक तत्त्वो और साहसिक कार्यो जैसे युद्ध, बलपूर्वक विवाह, कन्याहरण, भयकर यात्रा, मार्ग की दुरूह

---

१ रुद्रट, काव्यालकार, १६ २०-२३

२ डा० शिवप्रसाद सिंह, रसरतन की भूमिका, पृ० ७८

कठिनाइयाँ, देव-असुर, गन्धर्व-यक्षादि के अलौकिक कार्यो का बहुत अधिक विस्तार होता है।

२. कथा-आख्यायिका का कथानक अधिक प्रवाहयुक्त, इतिवृत्तात्मक और आकर्षक होता है किन्तु उसका मूलाधार यथार्थ जीवन नही होता (बाण की हर्षचरित सदृश कुछ रचनाएँ इसके लिए अपवादस्वरूप है)। इसमे कल्पना-जन्य अलौकिक, अतिमानवीय एव अतिप्राकृत तत्त्वो, यात्राओ तथा असम्भव घटनाओ की अधिकता होती है। परिणामस्वरूप उसमे काल्पनिक कथा का चमत्कार और असम्भव या अविश्वसनीय घटनाओ की भरमार होती है।

३ कथा-आख्यायिका मे कथानक की कोई शृंखलित योजना नही होती। उसका कथानक स्फीतियुक्त, उलझा हुआ और जटिल होता है। प्राय उसका प्रारम्भ ही कथातर से होता है, फिर उसमे कथा के भीतर कथा और उस अन्तर्गत कथा मे भी गर्भकथाएँ भरी रहती है। कुछ कथाएँ ऐसी भी होती है जिनमे अनेक कथाएँ किसी एक सूत्र से परस्पर बाँध दी गई रहती है। यद्यपि उन सबका अस्तित्व अलग-अलग ही रहता है।

४ कथा-आख्यायिकाओ की कथाओ मे विवाह और उसके लिए युद्ध तथा प्रेम के सयोग एव वियोग पक्ष के वर्णन पर अधिक ध्यान दिया जाता है। परिणामस्वरूप उसके नायक प्राय धीर ललित होते है और उनका जीवन अयथार्थ पर आधारित होता है। वे प्राय निजन्धरी होते है या कथाकार द्वारा निजन्धरी ऊँचाई तक पहुँचा दिये जाते है। भारतीय कथाओ मे विक्रमादित्य, सातवाहन, उदयन, दुष्यन्त और नल आदि ऐसे ही चरित्र है, जो ऐतिहासिक होते हुए भी निजन्धरी व्यक्तित्व द्वारा गढे हुए है। युद्ध, साहस एव वीरता के कार्यो का वर्णन कथा-आख्यायिकाओ मे भी होता है पर वैसा नही जैसा अलकृत काव्यो मे होता है। कथाकार युद्ध और वीरता को प्रेम और शृगार का साधनमात्र समझता है, जिससे उसका मन इन बातो मे ही रमता है।[1]

पहले लिखा जा चुका है कि हिन्दी प्रेमाख्यानको की एक सुदृढ परम्परा

---

१ विस्तार के लिए देखिए—डा० शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्यो का स्वरूप और विकास, पृ० ८०१-८

रही है। यहाँ विचारणीय यह है कि हिन्दी प्रेमाख्यानकों का मूल [illegible] गया है ? यह तो सुनिश्चित ही है कि प्रेमाख्यानकों अथवा प्रेमगाथाओं का आधार कोई न कोई धर्मकथा, प्रेम-कहानी, प्रेम-गाथा अथवा कोई लोकवार्ता या प्रचलित दास्तान ही होगी। जहाँ तक मेरा इस विषय में अध्ययन है वहाँ तक मैं यह कह सकता हूँ कि संस्कृत कथाकाव्यों की भाँति हिन्दी प्रेमाख्यानकों को किसी एक परिभाषा के घेरे में नहीं घेरा जा सकता। हिन्दी प्रेमाख्यान अपनी पृष्ठभूमि में जहाँ एक ओर भारतीय प्राचीन परम्परा को सुरक्षित रखे हुए हैं वहाँ दूसरी ओर अभारतीय विशेषकर सूफी परम्परा के प्रभाव से अछूते नहीं रह सके हैं। सूफी प्रेमाख्यानकों की एक अलग धारा रही है। इस बात का संकेत मैंने पूर्व भी किया है कि कोई भी प्रेम-कथा चाहे वह चरितकाव्य के रूप में अथवा दन्तकथा के आधार पर रचित अथवा लोकवार्ता आदि में समन्वित होकर सामने आई, उसे प्रेमगाथा या प्रेमाख्यान कहने में संकोच की क्या बात है ? हाँ, यह बात अवश्य द्रष्टव्य होगी कि उस कथा, आख्यायिका अथवा आख्यान में प्रेमकथा की प्रधानता है या नहीं। यदि प्रेमकथा की प्रधानता नहीं है तो अवश्य ही विषयान्तर होगा।

साधारणतया प्रेमाख्यानकों के सन्दर्भ में लोक-मर्यादा का प्रश्न उठता है। ऐसी स्थिति में मेरा विचार है कि कोई भी सजग कृतिकार जान-बूझकर लोकमर्यादा के परे की बात नहीं लिखता। यदि वह चरमोत्कर्ष की वेला में लोकमर्यादा का अतिक्रमण बरबस कर जाता है तो क्षम्य है। चूँकि 'प्रेमाख्यानकों में लोकमर्यादा का अतिक्रमण दोष नहीं गुण समझा जाता है।'[1]

हिन्दी प्रेमाख्यानकों को अध्ययन की सुविधा के लिए तीन भागों में विभक्त करके देखा जा सकता है। अथवा इसे यों भी कह सकते हैं कि उपलब्ध प्रेमाख्यानक तीन प्रकार के हैं[2]

१ आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए लिखे गये काव्य।
२ विशुद्ध लौकिक प्रेम-काव्य।
३ अर्द्ध-ऐतिहासिक प्रेमगाथाएँ।

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० २४८
२ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ० २६३

विषय मे विद्वानो के सकेत मात्र मिलते है। जैसे, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे 'ध्यान देने की बात है कि चरित्रकाव्य या आख्यानकाव्य के लिए अधिकतर चौपाई, दोहे की पद्धति ग्रहण की गई है। चौपाई-दोहे की यह परम्परा हम आगे चलकर सूफियो की प्रेम कहानियो मे, तुलसी के रामचरितमानस मे तथा छत्रप्रकाश, ब्रजविलास, सबलसिंह चौहान के महाभारत इत्यादि अनेक आख्यानक काव्यो मे पाते है।'[1] डा० भगीरथ मिश्र लिखते है—'जायसी, तथा प्रेमाख्यानक कवियों की कहानी और प्रेमवर्णन का मूल जैनाचार्यो द्वारा लिखी प्राकृत और अपभ्रश कथाओ मे मिलता है। जायसी, तुलसी आदि की दोहा-चौपाई वाली शैली जो हिन्दी मे इतनी सफल सिद्ध हुई, अपभ्रश से ही प्रारम्भ हुई है।'[2] डा० हरिकान्त श्रीवास्तव की मान्यता है कि ' हिन्दी आख्यानक काव्य अपभ्रश के चरित्र और पुराण काव्यो के उत्तराधिकार मे मिले।'[3] प्रो० हरिवश कोछड का कथन है—'अपभ्रश काव्यो के प्रेमाख्यानक काव्य हिन्दी साहित्य मे जायसी के पद्मावत के रूप मे प्रकट हुए।'[4] इसी प्रकार अन्य कतिपय विद्वानो ने इस सन्दर्भ की सूचना मात्र दी है।

हिन्दी प्रेमाख्यानकों पर जो शोध अथवा समालोचनात्मक ढग के ग्रथ लिखे गये है, उनमे डा० हरिकान्त श्रीवास्तव के 'भारतीय प्रेमाख्यान काव्य', डा कमल कुलश्रेष्ठ के 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य', श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी द्वारा सपादित 'हिन्दी प्रेमगाथा काव्य सग्रह', प० परशुराम चतुर्वेदी के 'मध्यकालीन प्रेमसाधना' और 'हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान', डा० शिवसहाय पाठक के 'मलिक मोहम्मद जायसी और उनका काव्य', श्री चन्द्रबली पाडेय के 'तसव्वुफ अथवा सूफीमत', डा० श्याममनोहर पाडेय के 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' और डा० सरला शुक्ल के 'हिन्दी-सूफी कवि और काव्य' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। यहाँ यह भी कहना अनिवार्य है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास मे भी हिन्दी-प्रेमाख्यानको के सन्दर्भ मे थोडी-घनी सामग्री दी ही गई थी। उल्लिखित सभी सामग्री अपने क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण स्थान तो रखती है, परन्तु इन सभी मे शिल्प पर

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रथम स०, पृ० ८-९

२ डा० भगीरथ मिश्र, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ४८

३ डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० २६

४ प्रो० हरिवश काछड, अपभ्रश-साहित्य, पृ० ३८८

विचार का अभाव है। कही शिल्प की चर्चा उठाई भी गई है तो वह नगण्य है।

हिन्दी प्रेमाख्यानको के शिल्पगठन पर वास्तविक प्रभाव अपभ्रंश कथाकाव्यों का पडा। शुद्ध भारतीय शैली के प्रेमाख्यानक अपभ्रंश के पुराण और चरितकाव्यों की देन है। विचारको ने उक्त सत्य को स्वीकार किया है, फिर भी इस विषय पर विस्तार के अभाव मे हिन्दी प्रेमाख्यानको की वस्तु-गठन, शैली-शिल्प आदि का अध्ययन अधूरा ही रह जाता है। मूल प्रश्न शिल्प-विधि की कठिनाइयो का था। उक्त प्रसग मे हमने देखा कि शिल्प-विधि के अध्ययन की कठिनाइयो का समाधान अत्यधिक श्रम-साध्य एव दुहरा व्यापार है। कारण इसका यही है कि शिल्पविधि पर आधिकारिक ढग से किसी ने नही सोचा या कार्य किया। नये सिरे से कोई भी कार्य किया जाये उसमे कठिनाइयाँ होना स्वाभाविक है। ठीक यही बात हिन्दी-प्रेमाख्यानको की शिल्पविधि के अध्ययन की कठिनाइयो के सदर्भ मे कही जा सकती है।

हिन्दी प्रेमाख्यानको का शिल्प क्या है ? इसे निर्दिष्ट करने के लिए एक कसौटी चाहिये और उसका प्रारूप यह होगा

१ **कथावस्तु** मगलाचरण, सज्जन-प्रशसा, दुर्जन-निन्दा, कथान्यास, कथाविस्तार, कथोद्देश्य, युद्धवर्णन, कन्या-प्राप्ति, पारलौकिक या इहलौकिक सुख ( आरम्भ, विकास-सघर्ष और फलप्राप्ति )।

२ **कथासंघटन-वस्तुवर्णन**

१ नगर, वन, बाग, गिरि, ताल, सरिता, हाट आदि।

२ अश्व, सेना, आयुध, सिहासन आदि।

३ सास्कृतिक आलम्बन—सगीत, विधाएँ, धार्मिक विश्वास, अन्ध-विश्वास, आकस्मिक घटना, सयोजन आदि।

४ भाषा-शैली, कथा-शैली, दोहा-चौपाई, कडवक, घत्ता, सधि, अध्याय आदि का विवेचन आवश्यक है।

'शिल्प' शब्द के अर्थ अथवा अर्थ-विस्तार पर प्रस्तुत प्रबन्ध के तृतीय अध्याय मे मूलरूप से विचार किया जायगा। यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि मै शिल्प को सिर्फ शैली नही मानता। शिल्प एक व्यापक शब्द है जिसमे शैली की विशेपताएँ तो आ ही जाती है, पर इसके अतिरिक्त कथा की गठन ( स्ट्रक्चर ), रूढियाँ ( मोटिफ्स ), वस्तुवर्णन, साज-

सज्जा तथा कथाकाव्यो का पूरा रचाव भी शिल्प के अन्तर्गत आता है। मै यही प्रभाव शब्द की भी व्याख्या कर देना चाहता हूँ। प्रभाव का अर्थ सीधी छाप या सादृश्य नही, प्रभाव को व्यापक अर्थ मे ग्रहण किया गया है, इसे एक प्रकार से अपभ्रश कथा-शिल्प का हिन्दी कथा-शिल्प के विकास मे योगदान ही कहना चाहिये। इसी योगदान की भूमिका मे मेरे शोध प्रबन्ध का उद्देश्य हिन्दी प्रेमाख्यानको और अपभ्रश कथा-काव्यो मे शिल्पगत शृखला नियोजित करना है।

## हिन्दी प्रेमाख्यान ो ी तालि ा

### एक[1]

| कृति | | कृतिकार | कृतिकाल |
|---|---|---|---|
| १ | चन्दायन | मुल्लादाऊद | सन् १३७० ई० ( ७७२ हि० ) |
| २ | सत्यवती | ईश्वरदास | ,, १५०१ ( १५५८ वि० स० ) |
| ३ | मृगावती | कुतुबन | ,, १५०१ ( ९०९ हि० ) |
| ४ | पद्मावती | जायसी | ,, १५४० ( ९४७ हि० ) |
| ५ | मधुमालती | मझन | ,, १५४५ ( ९५२ हि० ) |
| ६ | रूपमंजरी | नददास | ,, १५५० के लगभग |
| ७ | माधवानल-काम-कन्दला | आलम | ,, १५९१ ( ९९२ हि० ) |
| ८ | चित्रावली | उसमान | ,, १६१३ ई० |
| ९ | रसरतन | पुहकर | ,, १६१६ ई० |
| १० | ज्ञानदीप | शेख नबी | ,, १६१९ ई० |
| ११ | कनकावती | जान | ,, १६१८ ई० |
| १२ | पुहुप-बरिखा | ,, | ,, १६२१ ई० |
| १३ | कामलता | ,, | ,, १६२२ ई० |
| १४ | रत्नावली एव बुद्धिसागर | ,, | ,, १६३४ ई० |

---

१ डा० शिवगोपाल मिश्र द्वारा सपादित एव हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी से नवम्बर १९५७ में प्रकाशित 'मझनकृत मधुमालती' से

| कृति | कृतिकार | कृतिकाल |
|---|---|---|
| १५. छीता | जान | सन् १६३६ ई० |
| १६. रूपमजरी | ,, | ,, १६३७ ई० |
| १७ कमलावती | ,, | ,, १६३९ ई० |
| १८ कलदर | ,, | ,, १६४५ ई० |
| १९ नल-दमयन्ती | ,, | ,, १६५६ ई० |
| २० नलदमन | सूरदास लखनवी | ,, १६५७ ई० |
| २१ मृगावती की कथा | मेघराज प्रधान | ,, १६६६ ई० |
| २२ पुहुपावती | दुखहरनदास | ,, १६६९ ई० |
| २३ हस-जवाहिर | कासिमशाह | ,, १७२१ ई० |
| २४ इन्द्रावती | नूरमुहम्मद | ,, १७४४ ई० |
| २५ विरह-वारीश | बोधा | ,, १७५२-५८ ई० |
| २६ प्रेमरतन | फाजिलशाह | ,, १८४८ ई० |

## दो[1]

| | | |
|---|---|---|
| १ मृगावती | शेख कुतबन | १५६० वि० |
| २ पद्मावती | जायसी | १५७८ वि० |
| ३ मधुमालती | मलिक मझन | १६०२ वि० |
| ४ चित्रावली | उसमान | १५७० वि० |
| ५ कनकावती | जान कवि | १६७५ वि० |
| ६ कामलता | ,, | १६७८ वि० |
| ७ मधुकरमालती | ,, | १६९१ वि० |
| ८ रतनावली | ,, | १६९१ वि० |
| ९ छीता | ,, | १६९३ वि० |
| १० हस-जवाहर | कासिम शाह | १७९३ वि० |
| ११ इन्द्रावती | नूरमुहम्मद | १८०१ वि० |
| १२ अनुरागबाँसुरी | ,, | १८२१ वि० |
| १३ यूसुफ-जुलेखा | शेख निसार | १८४७ वि० |

---

१, डा० सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, ० २९१–२९२ से उद्धृत

| कृति | कृतिकार | कृतिकाल |
|---|---|---|
| १४ नूरजहाँ | ख्वाजा अहमद | १९,६२ वि० |
| १५ भाषा-प्रेमरस | शेख रहीम | १९,७२ वि० |
| १६ ढोला-मारू रा दूहा | | |
| १७ रसरतन | नारायण | १६७५ वि० |
| १८ छिताईवार्ता | ,, | १६४७ वि० |
| १९ विरहवारीश | बोधा | १८०९ वि० |
| २० माधवानल-कामकन्दला | गणपति | १५८४ वि० |
| २१ माधवानलकथा | दामोदर | १७३७ वि० |
| २२ प्रेमविलास-प्रेमलता कथा | नटमल | १६१३ वि० |
| २३ राजा चित्रमुकुट-रानी चन्द्रकिरन की कथा | | |

## प्रकाशित प्रेमाख्यानकों की सूची

१ पद्मावत—मलिक मुहम्मद जायसीकृत, स०—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्र०—साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, स० २०१२

२ जायसी-ग्रन्थावली—स०—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्र०—ना० प्र० सभा, काशी, स० २००८

३ मझनकृत मधुमालती—स०—डॉ० शिवगोपाल मिश्र, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९५७

४ छिताईवार्ता—नारायणदासकृत, स०—डा० माताप्रसाद गुप्त, स० २०१५

५ रसरतन—पुहुकरकृत, स०—डा० शिवप्रसाद सिंह, स० २०२० (दोनो ही ना० प्र० सभा, काशी से प्रकाशित)

६ मझनकृत मधुमालती—स०—डा० माताप्रसाद गुप्त, मित्र प्रकाशन प्रा० लि०, इलाहाबाद, सन् १९६१

७ चदायन—मौलाना दाऊद दलमईकृत, स०—डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, हिंदी ग्रथ रत्नाकर प्रा० लि०, बबई-४, सन् १९६४

८ माधवानल-कामकन्दला—गणपति, कुशललाभ और दामोदर रचित, स०—एम० आर० मजूमदार, ओरियन्टल इस्टीट्यूट, बडौदा, सन् १९४२

९ कुतुवनकृत मृगावती—स०—डा० शिवगोपाल मिश्र, हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग, शक स० १८८५
१० मधुमालतीवार्ता—चतुर्भुजदासकृत, स० –डा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा काशी, स० २०२१
११ रुक्मिणीपरिणय—रघुराज सिंह जूदेवकृत, स०—गगाविष्णु, श्रीकृष्णदास लक्ष्मी वैंकटेश्वर, कल्याण-मुवई, स० १९८१
१२ वेलिक्रिसन रुक्मिणी री—प्रिथीराजकृत, स०—आनन्द प्रकाश दीक्षित, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर
१३ कथा हीर रॉझनि की—कवि गुरुदास गुणीकृत, स०—सत्येन्द्र तनेजा, पटियाला, सन् १९६१
१४ विरहवारीश माधवानल कामकन्दला चरित्रभाषा—बोधाकृत, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
१५ इन्द्रावती—नूरमुहम्मदकृत, स०—श्यामसुन्दरदास, ना० प्र० सभा, काशी
१६ ढोला-मारू रा दूहा—ना० प्र० सभा से प्रकाशित
१७ अनुरागबॉसुरी—नूरमुहम्मदकृत, स०—रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रवली पाडेय.
१८ उसमानकृत चित्रावली—स०—जगन्मोहन वर्मा
१९ चित्ररेखा—जायसीकृत, स०—शिवसहाय पाठक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
२० वीसलदेवरास—नरपति नाल्हकृत, स०—माताप्रसाद गुप्त तथा अगरचन्द नाहटा

इनके अतिरिक्त उषाहरण, रूपमजरी, वात सयाणी चारिणी री, सत्यवता का कथा, प्रेमदर्पण, हुसजवाहिर और भाषा-प्रेमरस आदि प्रेमाख्यान भी सपादित-प्रकाशित हुए है। हिन्दी प्रेमाख्यानको का उक्त कार्य प्रेमाख्यानको की परम्परा को जीवित रखने के लिए आवश्यक होने का साथ-साथ उनका अध्ययन करने वालो के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रेमाख्यानको के सदर्भ मे शोधपूर्ण कार्यो की कमी वरावर अखरती है। सपादित कार्यो की सूची मे सपादन और शोधपूर्ण भूमिकाओ को प्रस्तुत करने मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य 'रसरतन' के सम्पादक डॉ० शिवप्रसाद सिह एव 'चदायन' के सपादक डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त का है।

## अध्याय २

# हिन्दी प्रेमाख्यानकों का ऐतिहासिक विकास

### प्रेमाख्यानक : परिभाषा का प्रश्न

प्रेमाख्यानक, प्रेमगाथा, प्रेमकहानी और प्रेम कथा लगभग एकार्थ-वाचक शब्द है। प्रेमाख्यानको को ही कतिपय विद्वानो ने प्रेमगाथा कहा है।[1] समान अर्थ वाले शब्दो को पर्यायवाची शब्द माना जाता है। मूलत. यह व्यवस्था कामचलाऊ ही है। आख्यानक शब्द मे कथा, कहानी, गाथा और कथानक आदि सभी अर्थ अन्तर्निहित हैं, जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे। प्रेमाख्यान शब्द प्रेम और आख्यान के सयोग से बना है, यह प्रत्यक्ष ही है। इन दोनो शब्दो की अलग-अलग और सम्मिलित व्याख्या से प्रेमाख्यानक की परिभाषा करने मे सरलता होगी। प्रेम ससार की एक ऐसी नौका है, जिसमे बैठकर ससार की सैर भी की जा सकती है और ससार से ऊब होने पर उससे पार भी उतरा जा सकता है। प्रेम एक ऐसा भाव है जिस पर किन्ही बाह्य पदार्थों का प्रभाव नही पडता

नूरमुहम्मद प्रेम पर लहे न मन्त्र न जन्त्र।
प्रेम-पीर जहाँ ऊपजे, तहाँ न औषद मन्त्र ॥[2]

प्रेम का प्रभाव इतना दिव्य होता है कि 'प्रेम के दिव्य प्रभाव से उसे (प्रेमी को) अपने आस-पास चारो ओर सौन्दर्य की छाया फैली हुई दिखाई पडती है, जिसके बीच वह बडे उत्साह और प्रफुल्लता के साथ अपना कर्मसौन्दर्य प्रदर्शित करता है। यह प्रवृत्ति इस बात का पूरा सकेत करती है कि मनुष्य की अत प्रकृति मे जाकर प्रेम का जो विकास हुआ है वह सृष्टि के बीच सौन्दर्य-विधान की प्रेरणा करने वाली एक दिव्य शक्ति के रूप मे है।'[3] सत्य तो यह है कि प्रेम अनुभूतिपरक है। अतएव जिसने जैसा अनुभव किया उसने अपने ढग से 'प्रेम' को परिभाषित किया। प्रिय से प्रेमी

---

१ डा० सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन, पृ० १३९
२ डा० सरला शुक्ल, हिन्दी-सूफी कवि और काव्य, पृ० ४७१ से उद्धृत।
३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, प्रथम भाग, पृ० ८९

अद्वैत सुखदु खयोरनुगत सर्वास्ववस्थासु यत्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रस ।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थित,
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येक हि तत्प्राप्यते ॥[1]

भवभूति ने प्रेम को सभी अवस्थाओ मे अद्वैत माना है। इस रहस्य का निर्गुणिया सत कबीर ने उद्घाटन किया है

कबीर बादल प्रेम का हम पर बरस्या आय।
अतर भीग्यी आत्मा, हरी भई बनराइ ॥ ३४ ॥[2]
( गुरु० कौ अग )

जिसकी आत्मा ही प्रेम मे डूब चुकी हो, नि:सदेह उसका प्रेम अद्वैत होगा। जो व्यक्ति प्रेम शून्य है उसे कबीर धिक्कारते है

जिहि घटि प्रीति न प्रेमरस, फुनि रसना नहिं राम।
ते नर इस ससार मे, उपजि भये बेकाम ॥ १७ ॥[3]
( सुमि० कौ अग )

प्रेम-जगत का विस्तार इतना अधिक है कि उसे लिपिबद्ध कर पाना कठिन है। उल्लेखनीय और आश्चर्य की बात तो यह है कि निर्गुण सतो ने भी 'प्रेम' बिना अपना निस्तार सभव नही समझा। अस्तु, मुख्यरूप से उक्त प्रेम को लौकिक एव पारलौकिक इन दो भेदो मे विभाजित किया गया है। प्रेमाख्यानको की परिभाषा के सदर्भ मे डॉ० सत्येन्द्र का यह कथन है 'उसी के ( निर्गुणधारा के ) साथ प्रबन्धकथाओ को लेकर एक काव्यधारा और खडी हुई। इन कथाओ मे प्रेमकथाओ की प्रधानता रही। ये प्रेमगाथाएँ कहलाती है।'[4] फलत मेरे विचार से, जिस कहानी, कथा, गाथा, लोकवार्ता अथवा आख्यानादि मे सफल या असफल प्रेम को सोद्देश्य पूरी बात कही जाये, उसे प्रेमाख्यान की सज्ञा दी जानी चाहिए। आगे 'आख्यानक' शब्द के अर्थ पर विवरण प्रस्तुत किया गया है।

---

१ भवभूति, उत्तररामचरित, १ ३९

२ स०—डा० श्यामसुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३

३ वही, पृ० ७

४ डा० सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० १३९,

आख्यान शब्द की व्युत्पत्ति ( आ + ख्या + ल्युट् ( अन् ) आन ) की गई है। सामान्य और विशेष [illegible] अर्थ लिये गये हैं

(क) सामान्य अर्थ १ कथन, निवेदन, [illegible] २ कथा, कहानी ३ प्रति[illegible] ४ उत्तर ( यथा अनन्यस्यापि प्रश्नाख्यानयो )—अष्टाध्यायी, ८ २ १०५

(ग) विशेष अर्थ

१ [illegible] ( [illegible] में उपसर्ग [illegible] 'ल्युट्' प्रत्यय 'भाव' ( क्रियापद [illegible] ) अर्थ [illegible] 'करण' अर्थ में गृहीत होगा तब 'आख्यायते अनेनेति-आख्यानम्' यह व्युत्पत्ति होगी। )

इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग 'लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनव' ( अष्टाध्यायी, १ ४ ९० ) में हुआ है।

२ पुरावृत्तकथन ( 'आख्यान पूर्ववृत्तोक्ति' मा० द० ), ऐतिहासिक कहानी, पौराणिक कथा।

वेदों में आये हुए ऐसे ही आख्यानों का संग्रह 'पुराण-संहिता' नाम से अथर्ववेद में उल्लिखित है। जैसे, सुपर्ण और पुरूरवा इत्यादि के आख्यान ऋग्वेद में मिलते हैं। मनुस्मृति के तृतीयाध्याय में पितृश्राद्ध के अवसर पर किये जाने वाले कर्मों के विवरण में लिखा है

स्वाध्याय श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासाश्च पुराणानि खिलानि च॥

—मनुस्मृति, ३ २३२

इसी पर कुल्लूक भट्ट ने मन्वर्थमुक्तावली में व्याख्यान लिखते हुए लिखा है 'आख्यानानि सौपर्णमैत्रावरुणादीनि।'[1]

३ महाभारत इत्यादि इतिहास ग्रन्थ अनेक आख्यानों एवं उपाख्यानों का 'जय' नामक इतिहास ग्रन्थ में ( वर्तमान महाभारत के मूल रूप में) संग्रह होने के कारण ही परिवर्द्धित महाभारत को आख्यान-काव्य का नाम प्राप्त हुआ होगा।

---

१ देखिये, तारानाथकृत वाचस्पत्यम् कोश.

४ इन महाभारत आदि आर्षकाव्यों के सर्गों में वर्णित अलग-अलग उपाख्यानों को भी आख्यान कहा जाता था। इस अर्थ के प्रामाण्य में तारानाथ ने स्वकृत 'वाचस्पत्यम्' में निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है

नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।
अस्मिन्नार्षे पुन सर्गा भवन्त्याख्यानसञ्ज्ञका ॥

और इनका उदाहरण देते हुए लिखा है, 'यथा भारते रामोपाख्यान, नलोपाख्यान इत्यादि।

(ग) हिन्दी मे यह शब्द प्राय प्राचीन कथानक या वृत्तान्त के ही अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

(घ) पर्याय : कथा, कथानक, आख्यायिका, वृत्तान्त इत्यादि।

(ङ) व्यापक अर्थ कहानी, कथा और इसी अर्थ मे उपर्युक्त पर्याय दिये गये हैं। इसका सीमित अर्थ है ऐतिहासिक कथानक, पूर्ववृत्त-कथन।[१]

आख्यान शब्द के उपर्युक्त अर्थों मे आख्यान की व्यापकता पर विशद प्रकाश पड़ता है। वास्तव मे कहानी, कथा, कथानक, आख्यायिका और वृत्तान्त को आख्यान के पर्यायवाची मान लेने पर उसके अर्थ-विस्तार का स्पष्टीकरण हो जाता है। सभवत आख्यान शब्द के उक्त अर्थविस्तार से कुछेक लोगो को यह सदेह होगा कि 'फिर कहानी, कथा आदि का भेद कैसे जाना जा सकेगा?' यहाँ मैं यह कहना चाहूँगा कि जहाँ कथा, कहानी और उपन्यास मे भेद है, वही सभी मे किसी न किसी रूप मे कथा-तत्त्व का पाया जाना अवश्यम्भावी है। अतएव आख्यान के अर्थ-विस्तार को भी एक सीमित घेरे मे देखना चाहिए। यहाँ मैं यह भी स्पष्ट कर दूँ कि चरित, पुराण, काव्य, खण्डकाव्य, रासो-रासक और महाकाव्य तक को (यदि उनमे प्रेमकथा की प्रधानता है तो) प्रेमाख्यान या प्रेमाख्यानक कहने मे मुझे कोई सीमोल्लघन की बात दृष्टिगोचर नही होती। इससे कोई साहित्यिक गतिरोध भी उत्पन्न नही होता।

हिन्दी में हिन्दू और सूफी दो प्रकार के आख्यानक काव्य लिखे गये हैं। दोनो ही प्रकार के आख्यानकों के रचयिता भारतीय थे। अत उन

---

१ डा० आद्याप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्यकोश, भाग १, पृ० ८८ से उद्धृत

[illegible] ... [illegible] प्रेमाख्यानकों ... [illegible] कथमपि उचित नहीं है। [illegible] दृष्टि से उनमें कोई विशेष अन्तर भी दिखाई नहीं पड़ता। दोनों [illegible] से पूरी तरह प्रभावित हैं। पर साहित्य में इस तरह के वर्गीकरण चलते रहे हैं। स्वय शुक्ल जी ने 'हिन्दू हृदय' और 'मुस्लिम हृदय' की बात कही है। आगे चलकर हरिकान्त श्रीवास्तव ने भारतीय आख्यान काव्य परम्परा को हिन्दू और सूफी वर्गों में बाट दिया है। मैं भी सुविधा के लिए यह वर्गीकरण स्वीकार करके चला हू। वैसे मेरा उद्देश्य दोनों ही प्रकार के आख्यानकों के शिल्प पर अपभ्रंश का प्रभाव दिखाना ही है।

हिन्दू प्रेमाख्यानकों की श्रेणी में ढोला-मारू रा दोहा, बीसलदेवरासो, सदयवत्स-सार्वलिगा, लखमसेन-पद्मावतीकथा, सत्यवती की कथा, माधवानल-कामकन्दला ( गणपति, कुशललाभ, दामोदर और अज्ञात कवि द्वारा रचित ), प्रेमविलास, प्रेमलताकथा, रूपमजरी, उषा की कथा, वेलि कृष्ण-रुक्मिणी री, छिताईवार्ता, रसरतन, नल-दमयन्तीकथा, रुक्मिणीमगल, नलदमन, माधवानल नाटक, पुहुपावती, चदकुँवर री बात, नलचरित्र, विरहवारीश, नलोपाख्यान, मधुमालती, नल-दमयन्ती-चरित, कामरूप-चन्द्रकला की प्रेम कहानी, उषाहरण, उषाचरित, उषा की कथा ( कवि रामदासकृत ), रमणशाह-छबीली-भटियारी की कथा, कामरूप की कथा, रुक्मिणीमगल, रुक्मिणीपरिणय, नलदमयन्ती की कथा ( अज्ञात कवि ), प्रेमपयोनिधि, बात सायणी चारणी री और राजा चित्रमुकुट और रानी चन्द्रकिरण की कथा आदि प्रेमाख्यानक आते हैं।

इनमे से कतिपय प्रेमाख्यानको का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

### हिन्दू प्रेमाख्यानको का सक्षिप्त परिचय

**ढोला-मारू रा दोहा**[1]—यह लोक-काव्य है। इसके रचनाकाल के सबध मे एक मत नही है। डॉ० सत्येन्द्र इसका १००० से आरम्भ और सत्रहवी शताब्दी मे अन्तिम रूप मानते है।[2] डा० हरिकान्त श्रीवास्तव १००० से १६०८ स० इसका रचनाकाल मानते हैं।[3] डॉ० मोतीलाल मेनारिया स० १५३०,[4] डा० शम्भूनाथ सिंह १८५०[5] स० से पूर्व और डॉ० नामवर सिंह १५वी शताब्दी[6] इसका रचनाकाल मानते है। समय निर्धारण को मुख्य कठिनाई का कारण इसका किसी एक कवि की रचना का न होना ही रहा है। नि सन्देह इसकी कथा बडो सरस और मार्मिक है जो सक्षेप मे इस प्रकार है

नरवर के राजा नल को ढोला नामक एक सुन्दर पुत्र था। एक बार पूगल मे दुर्भिक्ष पडा। वहाँ के राजा पिंगल ने नरवर मे आकर शरण ली। पिंगल के मारवर्णा नाम की एक पद्मिनी कन्या थी। यद्यपि उस समय ढोला की अवस्था ३ वर्ष और मारवणी डेढ वर्ष की थी तथापि दोनो के अभिभावको ने उनको परिणयसूत्र मे बॉध दिया। कालान्तर मे सुकाल आने पर राजा पिंगल अपने पूगल देश लौट गया। पुत्री के छोटी होने के कारण, उसको भी साथ लेता गया। ढोला के युवक होने तक वह अपने पीहर मे ही थी। इधर ढोला का विवाह मालव की राजकुमारी मालवणी से हो गया। मारवणी के परिवार मे इस विवाह के समाचार से चिंता होना स्वाभाविक ही था। अतः पिंगल ने नल के पास सदेशवाहको को

---

१ स०—श्री रामसिंह, सूर्यकरण पारीक और नरोत्तम स्वामी, ना० प्र० सभा, काशी, ई० १९३४

२ डा० सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० २२६

३ डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ३४

४ श्री मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य

५ डा० शम्भूनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास, पृ० २२४

६ डा० नामवर सिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० २६०

भेजा । परन्तु मालवणी सन्देशवाहकों को ढोला से भेंट होने के पूर्व ही मरवा देती थी । एक बार किसी ने ढाढियों को दूत बना कर भेजा । मालवणी ने उन्हें दान जान कर नहीं मरवाया । ढाढियों से मारवणी का समाचार ज्ञात करके ढोला विरह में व्याकुल हो गया । ढोला मारवणी के पास जाने की तैयारी में था कि मालवणी को मालूम हो गया । वह चौकन्नी हो गई । एक दिन उपयुक्त मौके पर ढोला ऊँट लेकर चला । परन्तु दैवात् ऊँट के बोल उठने से वह जाग गई और ढोला को रोकने का असफल प्रयास किया । इस पर भी मालवणी ने सुग्गा को पढ़ाकर भेजा कि रास्ते में ढोला को सन्देश दो कि मालवणी मर गई । परन्तु ढोला ने इस समाचार को भी अनसुना कर दिया ।

प्रेमी को प्रेमिका के प्राप्त करने में यदि अनेक अकल्पित और दुःसाध्य बाधाओं का सामना न करना पड़े तो वह प्रेम ही क्या ? शायद इसीलिए ढोला के मार्ग में एक रोड़ा और आ टकराया । ऊमर सूमरा ने मारवणी से परिणय का प्रस्ताव पिंगल को भेजा । प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाने पर वह जल उठा । वह मौके की तलाश में रहने लगा । ऊमर सूमरा को जब यह पता चला कि ढोला अकेले ही जा रहा है तो उसने अपने भाग्य को सराहा । उसने ढोला से मिलकर घात करने का निश्चय किया । ढोला उसकी चाल में फँस गया । मारवणी को एक नर्तकी ने जो उसके पीहर की ही थी, उसे ऊमर सूमरा की चाल बता दी । मारवणी ने ऊँट को छडी मार कर भगा दिया, जिससे ढोला उसे पकडने आया तो उसने उसे रहस्य बता दिया । वे ऊँट लेकर भागे । ऊमर सूमरा ने उनका पीछा किया । ऊँट के पैर बँधे होने पर भी वह बडी तेजी से भाग रहा था । मार्ग में किसी चारण के ध्यान आकृष्ट करने पर, ऊँट पर बैठे ही बैठे उसने अपनी छुरी द्वारा ऊँट का बन्धन कटवाया । अब ऊँट और भी तेजी से भागा । ऊमर सूमरा हताश होकर लौट आया । नरवर पहुँचकर ढोला ने मारवणी और मालवणी दोनों को समझाकर एक कर लिया और सभी साथ-साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे ।

**वीसलदेवरासो**—वीसलदेवरासो के तीन संस्करण प्राप्त हैं ।[1] इसके

---

१ (क) सं०—सत्यजीवन वर्मा, का० ना० प्र० सभा से प्रकाशित, सं० १९८२
(ख) सं०—डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी-परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय
(ग) सं०—डा० तारकनाथ अग्रवाल, हिन्दी प्रचारक, वाराणसी, ई० १९६२

रचयिता नरपति नाल्ह नामक कवि हैं। राजमती का विरह-वर्णन इसमे वारहमासे के माध्यम से अधिक उभरा है। इसे प्रेमकथानक अथवा काव्य न मानने वालो का कारण युक्तियुक्त साथ ही सामयिक नही जान पडता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के लिए 'यह काव्यग्रन्थ नही, केवल गाने के लिए लिखा गया था।'[१] 'न तो इसमे कोई काव्यसौष्ठव है और न वर्णनो मे किसी प्रकार की रोचकता मिलती है।'[२] जान पडता है, वात कुछ दूसरे ढग की कह दी गई है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद का कथन है कि अनुभूतिरहित या हृदयहीन काव्य यह नही है।[३] डॉ० माताप्रसाद गुप्त इस रचना को महत्त्वपूर्ण मानते है। वीसलदेव के वियोग मे राजमती का वारहमासा है, वह ललित है किन्तु प्रयास के अनन्तर जो दोनो का मिलन कवि ने वर्णित किया है, वह भी बहुत सरस है।[४] ग्रथ के रचनाकाल के सम्बन्ध मे भी प्रमाणो की भिन्नता के कारण मत-वैभिन्य है। श्री सत्यजीवन वर्मा इसका रचनास० १२१२ मानते है। डॉ० तिवारी ने विजोल्या के शिलालेख का प्रमाण देते हुए विग्रहराज तृतीय को भोज के भाई उदयादित्य का समकालीन सिद्ध किया है। भोज की पुत्री राजमती का विवाह वीसलदेव तृतीय से सिद्ध किया है। उन्होने विग्रहराज का समय ११५० और ग्रन्थरचनास० १२७२ माना है।[५] डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने स० १४०० के आसपास रचनाकाल सिद्ध किया है।[६] अस्तु, इस विषय मे विस्तार आवश्यक नही है। ग्रन्थ की सक्षिप्त कथा इस प्रकार है

कवि कथा प्रारम्भ करने से पहले अपनी सुप्त काव्य शक्ति को पुन प्राप्त करने के लिए गणेशजी और सरस्वती की वदना करता है। धारा नगरी मे राजा भोज का राज था। इनके अस्सी सहस्र हाथी और ५ अक्षौहिणी सेना थी। पुत्री राजमती के विवाहयोग्य हो जाने के कारण अपनी रानी के प्रस्ताव पर राजा भोज ने ज्योतिषी को वर खोजने को

---

१ प० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०

२ डा० उदयनारायण तिवारी, वीरकाव्य, पृ० १९६

३ आ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दी-साहित्य का अतीत, पृ० ७६

४ डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी-साहित्यकोश, भाग २, पृ० ३६६

५ डा० उदयनारायण तिवारी, वीरकाव्य, पृ० १९४

६ डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी-साहित्यकोश, भाग २, पृ० ३६६

कहा । अजमेर के राजा से [illegible] । [illegible] राजद्वार पर पहुँचे । [illegible] वातावरण था ।

भोजराज [illegible] प्रथम खंड में राजा भोज ने अपने जामाता वीसलदेव को [illegible] दिया । दूसरे खंड में रानी सपादलक्ष देश, अर्थात् [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] देती है । तीसरे खंड में भोज राजमती के साथ [illegible] और [illegible] ( घोड़े ) मंडोवर का देश देता है । चौथे खंड में उसे [illegible] सागर और चित्तौड़ आदि मिलते हैं । इस प्रकार बहुत से सामान देकर भोज ने वीसलदेव को विदा किया । राजमती को हाथी पर बैठाकर वीसलदेव अजमेर की ओर गया । रास्ते में 'आनासागर' मिलता है । राजा अजमेर पहुँचकर सुख-भोग से रहने लगता है ।

मुख्य कथा अब प्रारम्भ होती है । वीसलदेव को अधिक धन मिलने से घमंड हो गया । वह एक दिन रानी राजमती से भी घमंड की बातें करने लगा । राजमती ने भी ताना मारा कि गर्व नहीं करना चाहिए, उडीसा के राजा तो तुमसे कई गुने अधिक धनी है । राजा को ठेस पहुँची । उन्होने रानी से पूछा कि तुम जैसलमेर की रहने वाली हो, तुम्हे उडीसा का कैसे पता चला ? इस पर राजमती अपने पूर्वजन्म की कहानी सुनाती है कि मै पूर्वजन्म मे हरिणी थी और उडीसा के जगलो मे रहती थी । एकादशी का व्रत निर्जल करती थी । एक दिन मुझे एक अहेरी ने वाण मारे और मैने जगन्नाथ जी के सामने अपने प्राण त्याग दिये । उनसे यह प्रार्थना भी की कि अब मेरा जन्म पूर्व देश मे न हो, क्योकि वहाँ के लोग खराब होते है और अच्छी वस्तुओ का भोग नही करते ।

वीसलदेव उडीसा जाने का दृढ निश्चय करता है । राजमती के अनेक प्रकार से समझाये जाने पर तथा अपनी भाभी द्वारा भी समझाये जाने पर वह उडीसा जाने का निर्णय अटल रखता है । वह ज्योतिषी से जाने का मुहूर्त्त पूछता है । परन्तु उस ज्योतिषी को रानी पहले ही मना लेती है कि मुहूर्त्त ४ माह बाद का निकाले । रानी ने सोचा था कि इस अवधि मे वह अपने पति को मना लेगी । किन्तु कोई लाभ नही हुआ । मुहूर्त्त आने पर वह यात्रा पर निकल पडा ।

इधर जैसे-जैसे दिन वीतते है, रानी की व्यथा वढती जाती है । वारहमासे द्वारा रानी की व्यथा का वर्णन कवि ने किया है । ११ वर्ष

वाद रानो एक दूत अपने पति के पास भेजती है। वह सातवे मास मे उडोसा पहुचता है। राजा से राजमती की शोचनीय दशा का वर्णन करता है। राजा आने के लिए वहाँ के राजा से कहता है। वहाँ की रानो कई शादियो का प्रलोभन देकर रोकने का असफल प्रयास करती है। वीसलदेव वहाँ एक योगी को रानी को अविलम्ब अपने पहुचने की सूचना देने के लिए राजी कर लेता है। योगी इवर से पहुँच रहा है और उधर राजमती की वाँई भुजा और वाँई आँख फडकने का शुभ शकुन होता है। योगो पहुचकर रानो को सूचना देता है कि तुम्हारा पति तीसरे दिन तक आ जायेगा।

योगी के कथनानुसार राजा तोसरे दिन पहुँच जाता है। रानी वहुत प्रसन्न होती है। अजमेर मे खुशियाँ मनाई जाती है। रानी एक वात से अधिक प्रसन्न है। वह कहती है कि पति की अनुपस्थिति मे उसे किसी प्रकार का कलक नही लगा। यद्यपि एक कुटनो ने उसे विचलित करने की चेष्टा की थी। वीसलदेव के आ जाने पर दोनो सुखपूर्वक रहने लगे। कवि अपने ग्रन्थ को इस शुभकामना के साथ समाप्त करता है कि जिस प्रकार राजमती रानी अपने राजा से मिली, इसी प्रकार इस ससार मे सभी मिले। यही ग्रन्थ समाप्त होता है।

**सदयवत्स-सावलिगा**—इसकी रचना सवत् १५०० मे श्री केशव द्वारा हुई।[1] डॉ० श्याम परमार ने 'सारगा-सदावृज' के परिचय मे लिखा है 'उत्तर भारत का यह कथा-गीत गुजरात मे 'सदैवत (सदयवत्स)-सावलिगा', छत्तीसगढ के गोडा मे 'सदाविरज-सारगा' तथा मालवा और राजस्थान मे 'सुदवुद-सारगा' नाम से प्रचलित है। जायसी ने इस प्रेम-कथा का उल्लेख किया है। अब्दुल रहमानरचित 'सदेशरासक' मे इसका उल्लेख आया है। छत्तीसगढ मे प्रचलित कथा उत्तर भारतीय रूप से तनिक भिन्न है। उसमे सारगा का नवलखा हार कही खो जाता है। सदाविरज अनेक कठिनाइयो का सामना करके उसे खोज लाता है और सारगा को प्रदान करता है। वस्तुत कहानी वहुत पुरानी है। राजस्थानी और मालवी मे इसके आधार पर अनेक 'ख्याल' और 'माच' ( लोक नाट्य ) की रचना हुई है।[2] इस कथा की लोकप्रियता के

१ डा० सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० २२९.
२ डा० श्याम परमार, हिन्दी-साहित्यकोश, भाग २, पृ० ५८८

हसराय की वाला को प्राप्त करने के लिए चन्द्रपाल, चन्द्रसेन, अजयपाल, धरपाल, हमीर, हरपाल, दडपाल, सहसपाल, विजयचन्द्र आदि ९९ राजाओ को सुरग वाले कुएँ मे डाल दिया। अव कुमारी के कथनानुसार दो राजाओ का लाना शेप था। अत उसी प्रयत्न मे योगी एक विजौरा नीवू लेकर लखनौती के राजा लखमसेन के पास पहुँचा। वहाँ पर आवाज लगाकर आकाश मे उड गया। प्रतिहार ने लखमसेन से कहा तो उन्होने योगी की खोज की। योगी आकर वह विजौरा नीवू देकर फिर गायव हो गया। इस चमत्कार से लखमसेन उसकी ओर आकृष्ट हो गया और अपना राजपाट छोडकर वन मे चला गया। वहाँ योगी से भेंट हुई। राजा को प्यास लगने पर योगी उसे उसी निर्मित कुएँ पर ले गया और धक्का देकर उसी मे गिरा दिया। लखमसेन को सुरग मे पडे ९९ अन्य राजाओ से योगी के छल का पता चल गया। उसने धीरे-धीरे सभी राजाओ को वाहर कर दिया। वह स्वय वहाँ रह गया। इस वात का पता योगी को भी चल गया। योगी शीघ्र ही सुरग पर पहुँचा और एक ५२ हाथ की शिला कुएँ पर ढक दी जिससे कुएँ मे अँधेरा हो गया। लखमसेन को वडी घुटन होने लगी और वह आत्महत्या की सोचने लगा। वह कुएँ से ईंटे उखाडने लगा। ईंटे उखाडते समय उसे कुछ प्रकाश दिखाई दिया। अतएव उसे आशा हो गई। उसने वही से मार्ग खोज निकाला और उससे वह एक सुन्दर तालाव पर पहुँच गया। वहाँ के सुन्दर दृश्यो का अवलोकन करता हुआ निकटवर्ती नगर मे पहुच गया। वहाँ उसने अपने को लखनौती के लखमसेन का पुरोहित वताया और एक व्राह्मण के घर मे रहने लगा। एक वार वह व्राह्मण उसे राजदरवार मे भी ले गया। वाद मे उसे वही पुरोहित भी नियुक्त करा दिया। इसी वीच पद्मावती को उसने देखा, पद्मावती ने भी उसे देखा। पद्मावती उस समय तक विवाह योग्य हो चली थी। अत उसका स्वयवर रचा गया। अन्य राजाओ के साथ ही लखमसेन व्राह्मण के वेप मे आया। राजकुमारी ने उसी को माला पहना दी। सभी लोग विगड गये। उसने अपनी वीरता का परिचय दिया। कनकावली के राजा वीरपाल से उसका घोर युद्ध हुआ। अन्त मे उसका वास्तविक परिचय मिल जाने के कारण पद्मावती का विवाह उसी के साथ सम्पन्न हुआ।

**माधवानल-कामकन्दलाप्रबन्ध**[1]—मध्यकालीन प्रेमाख्यानको मे कामकन्दला का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उस समय यह कथा इतनी अधिक लोकप्रिय थी कि कई कवियो ने इसे अपनी रचनाओ का विषय बनाया। जिस माधवानल-कामकन्दलाप्रबन्ध की यहाँ चर्चा की जा रही है, वह कविवर गणपतिकृत स० १५८४ की रचना है। इसका कथासार इस प्रकार है

सर्वप्रथम कवि ने रतिपति मदन की वदना की है तब फिर सरस्वती और गणेश की। अभिधेय, प्रयोजन, सबन्ध और कविपरिचय देने के बाद प्रबन्ध का प्रारम्भ किया है। सरस्वती नदी के तीर पर शुक शकर जी का तप करता है। काम का आह्वान करता है। काम से कर जोडकर प्रार्थना करता है कि 'कृपा करके मुझे दीजिए'। काम प्रश्न करता है 'क्या काम दूँ'। इसके बाद वेदव्यासवचन, काम-युद्धप्रयाण, कामप्रयोग और उसकी निष्फलता, रति-प्रोत्साहन तथा शुक-काम सवाद होता है। शुक काम को श्राप देता है। काम की कृपायाचना पर शापानुग्रह होता है। इसके बाद ब्रह्मशाप का माहात्म्य बतलाया गया है। माधव का जन्म होता है और यक्षिणी उसका हरण कर ले जाती है। कथा इस प्रकार आगे बढती है। पुष्पावती नगरी मे कामसेन नाम का नृप राज्य करता था। उस नगरी मे एक ब्राह्मण युवक रहता था जो मदन के समान सुन्दर था। उसके सौन्दर्य पर नगरागनाएँ मुग्ध हो उसके पीछे-पीछे हो लेती थी। नागरिको ने मिलकर राजा से इसका समाधान करने को कहा। राजा ने इसकी जाँच की तो पता चला कि उनकी स्वय की स्त्री की भी रुझान उधर होने लगी तो उसे देशनिकाला दे दिया।

माधवानल देशाटन करते हुए अमरावती पहुँचा। वहाँ के राजा को जब इसके असाधारण गुणो का पता चला तो राजा ने इसे अपने दरबार मे ससम्मान स्थान दिया। राजा की दरबारी नर्तकी जिसका नाम कामकन्दला था, सभा मे नृत्य कर रही थी। एक षट्पद ने गुजार के साथ नर्तकी का व्यवधान किया। फिर भी वह अबाधित नृत्य करती रही। माधवानल ने उसकी अत्यधिक प्रशसा की और उसे वही उपहार दे दिया जो राजा ने उसे ससम्मान भेंट किया था।

राजा अविलम्ब आक्रोशित हो उठा और उसने माधवानल को शहर

---

१ श्री एम० आर० मजूमदार द्वारा सपादित और गायकवाड ओरियण्टल सिरीज से प्रकाशित

छोड देने की आज्ञा दी। सुन्दरता उसके लिए अपराध बन गई थी। वह शहर छोडने से पहले कामकन्दला से मिला। कामकन्दला ने उसे अपने घर आमन्त्रित किया। दोनो ही उस मुलाकात मे एक-दूसरे के प्रति प्रेम मे आबद्ध हो गये। दोनो ने प्रेम-प्रतिज्ञाए की और दु खित हृदय दोनो एक-दूसरे से अलग हो गये।

माधव उज्जैन पहुँचा। वहाँ उसने अपने दु ख को महाकालेश्वर के मदिर की दीवाल पर लिख दिया। राजा विक्रम रात्रि मे शहर की जानकारी के लिए परिभ्रमण को निकला। वह मदिर गया तब वहाँ दीवाल पर माधव द्वारा लिखित लाइनो को पढा। राजा ने इन लाइनो के लेखक का पता लगाने का काम एक वृद्ध राज्य कर्मचारी को सौपा। माधव का पता लगा लिया गया और उसे राजा विक्रम के सामने पेश किया गया। विक्रम ने माधव के प्रेम को देख कामकन्दला को उसे दिलाने का निश्चय किया। और यह भी निश्चय किया कि यदि कामसेन कामकन्दला को नही देगा तो उससे युद्ध करके उसे लाया जायेगा।

विक्रम ने पहले कामकन्दला के प्रेम की परीक्षा लेने का विचार किया। वह छिपकर कामकन्दला के पास गया और अपने लिए उससे इच्छा व्यक्त की। उससे यह भी कहा कि माधव की मृत्यु हो गई है। इतना सुनते ही कामकन्दला अचेत होकर मरणासन्न हो गई। राजा को इसके प्रेम पर विश्वास हो गया। तब उसने वापिस होकर माधव की भी परीक्षा ली। माधव की भी वही दशा हुई।

विक्रम अपने इस कृत्य पर हार्दिक पश्चात्ताप करने लगे। वे इस सोच मे पड गये कि उन्हे एक स्त्रीहत्या और ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। इतने मे उनके एक मित्र वेताल की शक्ति ने परलोक से आकर इस सकट का निवारण किया। दोनो प्रेमियो को पुन मिला दिया। विक्रम ने उन दोनो की शादी खूब सजधज और धूमधाम से की। दोनो प्रेमी-प्रेमिका आनन्द और सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ जीवन यापन करने लगे।

इस काव्य की कतिपय अपनी विशेषताएँ हैं। प्रथम तो काव्य का आरम्भ कामदेव की स्तुति से किया गया है। प्रबन्ध के द्वितीय अग मे कला-अभिज्ञान, कामकन्दला का नखशिखान्त वर्णन, तृतीय अग मे पुष्पावती नगरी का विस्तृत वर्णन, चतुर्थ अग मे चमत्कार, माधववशी-

करण प्रयोग, पचम अग मे कामकन्दलानृत्य-प्रसग, वस्त्रपरिधान, केशप्रसाधन, केलियुद्ध, षष्ठ अग मे वेश्याव्यवसाय, द्वादशमासविरह-वर्णन, पद्मिनीचरित, शुभशकुनसूचक, सप्तम अग मे विकटमार्ग-वर्णन, महावन-प्रवेश, कामामृत-प्रयोग, माधव-कामकदला-मिलन और अष्टम अग मे मदनावाससामग्री-वर्णन और द्वादशमासभोग-वर्णन विशेष द्रष्टव्य तथा महत्त्वपूर्ण अश है।

**माधवानल-कामकन्दला**—यह अज्ञात कवि द्वारा रचित स० १६०० की रचना है। याज्ञिक सग्रह, लखनऊ मे इसकी प्रति सुरक्षित है।[1] इसमे माधव और कामकन्दला की प्रसिद्ध कथा वर्णित है।

जैसा कि लिखा जा चुका है कि किसी समय माधव और कामकन्दला की कथा अत्यधिक प्रचलित थी। इसीलिए कई कवियो ने अपने काव्यो का इसे उपजीव्य बनाया। गणपतिकृत और एक अज्ञात कविकृत उक्त कथा का परिचय अभी कराया गया है। कुशललाभकृत कामकन्दलाचउपई स० १६१३ मे लिखी गई।[2] दूसरी रचना एक सस्कृत मे मिलती है जो सस्कृत गद्य-पद्य मिश्रित है। इसके रचनाकार का नाम आनन्दधर है। कृति का माधवानलाख्यानम्, माधवानलनाटकम् और माधवानलकथा नाम दिया हुआ है।[3] रचनाकार ग्रन्थ-समाप्ति पर लिखता है कि जो इस कथा को सुनता है उसे कभी विरह-दुःख नही आ सकता।[4] स० १७३७ मे इसी कथा को लेकर दामोदर कवि ने भी माधवानल कामकन्दलाकथा लिखी।[5]

कविवर दामोदर विरचित कथा मे कहा गया है कि राजा गोविन्दचन्द्र की सम्राज्ञी माधव पर आसक्त हो गई। माधव से उसने प्रेम-

---

१ डा० शिवप्रसाद सिंह द्वारा सपादित रसरतन, पृ० ६७ (भूमिका) से उद्धृत

२ ये रचनाएँ गायकवाड ओरियण्टल सिरीज में प्रकाशित हैं

३ वही

४ आनन्दधर विरचित कामकन्दलाख्यानम्, पृ० ३७९

माधवानलसज्ञ हि नाटक शृणुयान्नर ।
न जायते पुनस्तस्य दुःख विरहसभवम् ॥२२३॥

५ गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज में प्रकाशित,

प्रस्ताव किया। माधव के अस्वीकार कर देने पर उसने राजा से कहकर (कि सारे नगर की स्त्रियाँ उसके पीछे पीछे घूमती है, उसका आचरण ठीक नही है आदि) माधव को देशनिकाला दिलवा दिया। माधव इधर-उधर भटकता फिरा। वह वीणा वादन मे प्रवीण था। कामावती नगरी के राजा कामसेन को अपने गुणो से प्रभावितकर उनके दरबार मे सम्मान पाता है। उनके यहाँ की वेश्या कामकन्दला से प्रेम करने पर वहाँ से भी निष्कासित होता है। उज्जैन पहुँचकर राजा विक्रम की सहायता से कामकन्दला को प्राप्त करता है और सुख के साथ भोग करता है।

इन रचनाओ के अतिरिक्त श्री योगेन्द्रप्रताप सिंह ने कुछ अन्य रचनाओ की सूचना दी है। वे लिखते है 'इनके अतिरिक्त अवधी मे रचित आलमकृत 'माधवानलभाषा' अधिक प्रसिद्ध हुई है। आलम के पश्चात् बोधा कवि ने भी सुभान नामक वेश्या को सम्बोधित करके खेतसिंह के मनोरंजनार्थ एक अन्य 'माधवानल-कामकन्दला' की रचना की थी। सन् १८१२ ई० मे हरिनारायण कवि द्वारा भी 'माधवानल-कामकन्दला' के प्रणयन का उल्लेख मिलता है। इन समस्त रचनाओ मे आलमकृत 'माधवानलभाषा' सर्वोत्तम कही जा सकती है। इसका रचनाकाल स० १६४० है'।[1]

बुद्धिरासो[2]—यह एक प्रेमकथा है। इसकी प्रति मेरे देखने मे नही आई। अत इसके विषय मे अधिक नही लिखा जा सकता। इसके विषय मे हिन्दी-साहित्यकोश मे जैसा लिखा है वह इस प्रकार है 'जल्ह की कृति बुद्धिरासो का रचनाकाल अनिश्चित है। कृति की हस्तलिखित प्रति सन् १६४७ ई० की लिखी हुई मिलती है। 'बुद्धिरासो' एक प्रेमकथा है, जिसमे चम्पावती नगरी के राजकुमार और जलधितरंगिनी नामक सुन्दरी के प्रेम-वियोग और पुनर्मिलन की सरस कथा है। हिन्दी की मैनासत जैसी प्रेमकथाओ के समान ही कथा की रूपरेखा है। कृति के जो उद्धरण प्रकाशित हुए है उनके आधार पर कृति की भाषा पृथ्वीराजरासो जैसे ग्रन्थो मे प्राप्त भाषा से बहुत भिन्न नही लगती। किन्तु पृथ्वीराजरासो

---

१ हिन्दी-साहित्यकोश, भाग २, पृ० ४१७

२, वही, पृ० ३६६-६७,

की भाषा की कृत्रिमता उसमे नही मिलती। दोहा, छप्पय, गाहा, पाघडी, मोतीदाम, मुडिल्ल आदि छन्दो का प्रयोग कृति मे हुआ है। कृति मे १४० छन्द है। कथा और काव्य की दृष्टि से कृति का जितना महत्त्व है उससे अधिक भाषा की दृष्टि से है। अपभ्रश के चिन्हो से मुक्त उसे राजस्थानी व्रजभाषा कहा जा सकता है।'

**मधुमालतीवार्ता**[1]—चतुर्भुजदास के इस ग्रन्थ के रचना-सवत् के विपय मे ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। इसे १८३७ स० का माना गया है। इसी कथा मे कुछ सशोधन करके माधवशर्मा ने भी इसी नाम की रचना की थी। मधुमालतीवार्ता मे विशेप द्रष्टव्य यह है कि इसमे जन्मान्तर की कथा का भी उल्लेख है, जो कि एक कथानक-रूढि है। अवान्तर कथाओ के माध्यम से कथा का विस्तार किया गया है। इसमे पशु-पक्षियो की कहानी को भी स्थान मिला है। यह कथा पूर्णरूपेण भारतीय है, किन्तु एक बात अवश्य ऐसी है जो खटकती है। वह यह कि मालती जब शिक्षाग्रहण करने गुरु के पास बैठती है तो पर्दा लगाया जाता है। यह पर्दे की प्रथा तो मुगलो की देन है और फिर गुरु के सामने पर्दा लगाकर पढने बैठना अटपटा लगता है। यह अवश्य ही विदेशी प्रभाव है। कवि ने अपनी रचना को कामप्रवन्ध कहा है।

**काम प्रबध प्रकास फुनि मधुमालती विलास।**
**प्रदुमन की लीला इह कहत चतुर्भुज दास॥ ६४७॥**

अतिम दोहे मे रचना की विशेषता पर भी कवि ने प्रकाश डाला है।

**राजा पढे सो राज गति मंत्री पढे ताहि बुद्धि।**
**कामी काम बिलास रस ग्यानी ग्यान ससुद्ध॥ ६४८॥**

कथा इस प्रकार है आरम्भ मे कवि गणेशजी की स्तुति करता है। लीलावती नामक एक सुन्दर देश था। वहाँ का राजा चन्द्रसेन बहुत वैभव वाला था। उसका तारनसाह नाम का एक बुद्धिमान मन्त्री था। राजा को चार रानियाँ थी। परन्तु मालती नामक मात्र एक कन्या सन्तान थी जो अत्यधिक सुन्दर थी। इसी प्रकार मन्त्री को भी एक पुत्र ही था जिसे वह मधु कहता था। जब मधु बडा हुआ तो वह मान-

---

१ चतुर्भुजदासकृत मधुमालतीवार्ता, डा० माताप्रसाद द्वारा सपादित और काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, स० २०२१

सरोवर पर जाने लगा। मालती भी वहाँ आती थी। मधु को देखकर मालती के मन मे उसके प्रति अनुराग हो गया। अन्य स्त्रियाँ भी जो मानसरोवर पर जल लेने आती थी उसपर मुग्ध होती थी।

तारनसाह ने अपने घर पर ही पुत्र की शिक्षा प्रारम्भ कर दी। राजा ने मालती की शिक्षा के लिए मन्त्री से सलाह ली तो उसने मालती को नंद के यहाँ ही पढाने को सलाह दी। मालती को जब नन्द पढाते थे, बीच मे एक पर्दा रहता था जिसकी ओट मे मालती बैठती थी। मधु नन्द के पास बैठता था।

एक दिन गुरुजी की अनुपस्थिति मे मालती ने पर्दा हटाकर मधु को देखा। वह तत्काल उसपर मुग्ध हो गई और अपना प्रेम प्रकट किया। मधु ने कहा कि मै मन्त्री का पुत्र हूँ, तुम राजा की कन्या। अत सम्बन्ध नही हो सकता। इस बात की पुष्टि मे उसने सिंहिनी और मृग को मार डालने की कथा का उल्लेख किया। अत हम लोगो मे भी वैषम्य के कारण सम्बन्ध कैसे हो सकता है। इसी तरह मृग के सिंहिनी से पूछने पर घूहड-काग विरोध की एक कथा सुनाई। इन कथाओ से मधु ने विषमता के सम्बन्ध दु खदायी होते हैं यह मालती को बताया। परन्तु मालती ने कथा मे सुधार करके बताया कि सिंहिनी ने अपने प्रेम को प्राण देकर भी निभाया। जब सिंह मृग के प्राण ले रहा था तब सिंहिनी मृग के सीगो पर जा पडी और मृग की मृत्यु से पहले ही अपने प्राण त्याग दिये। इस प्रकार सिंहिनी के प्रेम को सच्चा प्रमाणित किया।

इसके बाद मालती ने मधु को नृपति कुँवर कर्ण और पद्मावती की कथा सुनाई। नृपति कुँवर ने मन मे निश्चय कर रखा था कि जो स्त्री उससे प्रेम करने के उद्देश्य से आगे बढेगी वह उसी से प्रेम करेगा। उसने अपने इस हठ पर साठ विवाह किए। किन्तु एक भी स्त्री ने प्रथम मिलन पर प्रणयानुरोध नही किया। अत उसने सभी स्त्रियो को छोड दिया। उसके गुणो की प्रशसा सोरठ की राजकन्या पद्मावती तक पहुँची। उसने नृपति कुँवर से ही विवाह करने की प्रतिज्ञा की। उसे समझाया गया परन्तु वह नही मानी। विवाहोपरान्त पद्मावती भी पूर्व साठ पत्नियो के समान ही छोड दी जाती। परन्तु उसकी चैनरेखा नामक सखी ने समय पर सहायता की। उसने छिपकर एक गुलाबभरी पिचकारी पद्मावती को मारी, जिससे वह अचानक नृपति कुँवर के गले से लिपट

गई। नृपति ने इसे उसका प्रणय-निवेदन समझा और फिर केलि-क्रीडा की। मालती ने मधु से कहा कि आपने भी नृपति कुँवर जैसा हठ ठान रखा है। पुरुष को तो स्त्री के सकेत मात्र पर आगे बढना चाहिये। किसी प्रकार भी मालती का आग्रह मधु ने स्वीकार नही किया। वह बार-बार सम्बन्ध की विषमता को ही असमर्थता बताता। अन्त मे मालती के न मानने पर उसने नन्द के यहाँ पढना ही छोड दिया।

मधु अकेला ही गुलेल लेकर मानसरोवर पर जाता। परन्तु वहाँ भी नगर की स्त्रियाँ पानी भरने के मिस आने लगी। मालती को भी यह समाचार मिला। वह भी आने लगी। उसने यह सोचकर कि अकेले के कहने से मधु नही मानेगा उसने अपनी सखी जैतमाल को स्थिति से अवगत कराया। जैतमाल वहाँ पहुँची और मधुकर को लक्ष्य करके मधु को उसी की निष्ठुरता पर व्यग्य सुनाने लगी। इसी प्रकार उसने आगे चलकर मधु और मालती के पूर्वजन्म के सम्बन्धो का स्मरण कराया। उसने कहा आप दोनो मधुकर और मालती थे तथा मै सेवती थी। प्रथम हिमपात के कारण और फिर वन मे आग लगने से वह झुलस गई थी। मधुकर उसे छोडकर चला गया था। सेवती द्वारा सेवा किये जाने पर वह ठीक हुई परन्तु मधुकर के विरह मे उसने अपने प्राण तज दिये। इसके बाद जैतमाल ने समझाया कि वही मधुकर आप मधु और वही मालती मालती के रूप मे अवतरित हुई है। अत पूर्वभव का प्रेम निभाना चाहिये। मधु को पूर्वभव का तो स्मरण हो आया परन्तु उसने सम्बन्धवैषम्य की अपनी टेक को नही छोडा। इसी बीच जैतमाल ने सोलह श्रृगार से सजी मालती को मधु के सामने किया। मालती ने मोहन और वशीकरण मन्त्र का प्रयोग किया। मधु अब उसके वश मे हो गया। जैतमाल ने दोनो का गठबन्धन कर दिया।

वे दोनो मानसरोवर के पास की वाटिका मे जैतमाल के साथ ही रहने लगे। मालती ने इस बात को राजा तक पहुँचा दिया। राजा ने मालती की माँ कनकमाल से सारा वृत्तान्त कहा और उनको मरवाने के अपने निश्चय से उन्हे अवगत कराया। रानी ने यह सूचना गुप्तरूप से मालती के पास भेज दी। मालती ने मधु को कही चले चलने को कहा। मधु अपनी हठ पर अडा रहा कि वह अकेले अपनी गुलेल से सबको भगा देगा। मालती ने मधु के वहाँ से टस से मस न होने के निश्चय को

ब्रजेश्वर वर्मा ने इस कृति के विषय मे लिखा है 'रूपमजरी' एक छोटा सा कथा-काव्य है, जिसमे एक सुन्दर स्त्री के सौन्दर्य तथा लौकिक प्रेम को छोडकर कृष्ण के प्रति उसके 'जारभाव' के प्रेम तथा उसकी एक सखी इन्दुमती के साथ उसके सम्बन्ध का वर्णन है। काव्य की नायिका रूप-मजरी स्वय नन्ददास की मित्र रूपमजरी है और सखी स्वय नन्ददास हैं। यद्यपि रूपमजरी का कथानक लौकिक शृगार से सम्बद्ध है किन्तु उसमे नन्ददास ने अपने आध्यात्मिक भावो तथा प्रेमलक्षणा-भक्ति के अन्तर्गत परकीया प्रेम के आदर्श को स्पष्ट किया है। काव्यकला की दृष्टि से यह रचना उत्कृष्ट है।[1]

**बेलि कृष्ण-रुक्मिणी री**[2]—इसकी रचना स० १६३७ मे पृथ्वीराज राठौर ने की। इसकी मूलकथा का आधार भागवत है, जिसका उल्लेख लेखक ने स्वय किया है

**वल्ली तसु बीज भागवत वायो महि थाणो पृथुदास मुख।**
**मूल ताल जल अरथ मण्डहे सुथिर करणि चढ़ि छाँह सुख ॥२९१॥**[3]

भागवत की कथा और वेलि की कथा मे अन्तर है। कारण कि भागवत की कथा पूर्ण भक्तिपरक है और यह कथा प्रेमकथा है। इसमे षड्ऋतु-वर्णन और रुक्मिणी के सौन्दर्य के वर्णन अश वडे ही रोचक हैं। इस कृति की मुख्य विशेषता यह है कि रचयिता ने ग्रन्थ-रचना तथा अपने सम्बन्धो का खुलकर परिचय दिया है। भाषा के विषय मे भी कवि कहता है कि उसकी लेखनी और वाणी भाषा मे, सस्कृत और प्राकृत सभी मे एक समान चलती है।[4] आगे कहता है कि ज्योतिषी, वैद्य, पौराणिक, योगी, सगीतज्ञ, तार्किक, चारण-भाट तथा भाषा मे विचित्र रचना करनेवाले सुकवि जब एकत्रित होगे तब इसके पूरे अर्थ तक पहुँच

---

१ नददास, रूपमजरी, ब्रजेश्वर वर्मा—हिन्दी-साहित्यकोश, भाग २, पृ० २२६
२ पृथ्वीराज राठौर, स०—श्री कृष्णशकर शुक्ल, साहित्य निकेतन, कानपुर से प्रकाशित
३ वेलि क्रुसन रुक्मिणी रो, श्री कृष्णशकर शुक्ल द्वारा सपादित, साहित्य निकेतन, कानपुर, पृ० ११३
४ वही, पृ० ११४

सकते हैं।¹ अपनी रचना की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए कवि ने कृति को भागीरथी से भी बढ़कर कहा है। वह कहता है कि हे भागीरथी! तू गर्व मत कर। मेरी बात सुन। तू इसे क्या समझती है? चूँकि तू हर और हरि दोनों के आश्रित है, जो तैरना नहीं जानते उन्हें डुबा देती है। तू एक देश में ही प्रवाहित होती है। परन्तु मेरी वेलि ठीक इसके विपरीत काम अर्थात् सभी को पार कर देती है

वे हरि हर भजे अतारू बोडै ते ग्रब भागीरथी म तू।
एक देस वाहणी न आणा गुरुसरि सम सरि वेलि सू॥ २३०॥

रचना की कथा इस प्रकार है: विदर्भ देश के कुन्दनपुर नामक नगर में राजा भीष्मक राज्य करता था। उसके ५ पुत्र और लक्ष्मी के समान रुक्मिणी नामक कन्या थी। कन्या अति शीघ्र यौवन को प्राप्त हुई। उसके माता-पिता ने श्रीकृष्ण से शादी करने का निश्चय किया। रुक्मिणी अपने पूर्व जन्म की बात याद करके कृष्ण से ही विवाह करना चाहती थी। अतः वह सफलता के लिए महादेव और पार्वती का पूजन करने लगी। जब उसके भाई रुक्म को इस शादी के निश्चय का पता चला तो उसने गाय चरानेवाले कृष्ण से शादी करने का विरोध किया। अपने माता पिता की परवाह न करते हुए उसने शिशुपाल के पास तिलक लेकर पुरोहित को भेज दिया। शिशुपाल अन्य राजाओं के परिकर के साथ कुन्दनपुर की ओर रवाना हुआ। वहाँ उसके स्वागत की तैयारी होने लगी। रुक्मिणी इन सभी बातों से बहुत घबड़ाई। उसने नख की लेखनी और काजल की स्याही से पत्र लिखकर रास्ते में जाते हुए ब्राह्मण पथिक को देकर श्रीकृष्ण के पास भेजा। ब्राह्मण स्वयं चिंतित था क्योंकि समय इतना कम था कि मथुरा नहीं पहुँचा जा सकता था। वह कुन्दनपुर के बाहर एक वृक्ष के नीचे सो गया। प्रातःकाल जब उसकी आँख खुली तब उसने इस चमत्कार के रहस्य को जाना। कृष्ण के यहाँ जाकर पत्र दिया। श्रीकृष्ण अविलम्ब रथ लेकर चल पड़े। कुन्दनपुर पहुँचकर रुक्मिणी को सूचना भेजी। रुक्मिणी अपनी सखियों के साथ मन्दिर गई। उसके साथ जो सैनिक योद्धा गये थे वे उसके रूप को देखकर मूर्च्छित हो गये। इतने में श्रीकृष्ण ने आकाश मार्ग से अपना रथ पृथ्वी पर उतारा और रुक्मिणी का हाथ पकड़कर रथ में बिठाया तथा लेकर चल पड़े। इसके पूर्व

१ वही, पृ० ११६

रुक्मिणी को बहुत भय था कि कृष्ण आयेंगे या नही। परन्तु बाईं ओर से छीक का होना और इसी प्रकार के अन्य शुभ शकुन हुए तो उसे कुछ सान्त्वना हुई।

जब कृष्ण ने अपना रथ दौडाया तो चारो ओर से आवाज आई कि दौडो रे दौडो, माधव रुक्मिणी का हरण कर भाग रहा है। इस आवाज को सुनकर रुक्म के सैनिको ने पीछा किया। वे सैनिक कह रहे थे—रे ग्वाले! यह माखन की चोरी नही है। यह गूजरी नही है। इस प्रकार युद्ध हुआ। बलराम भी अपनी छोटी-सी सेना के साथ युद्ध मे पहुँच ही चुके थे। उन्होने शिशुपाल के छक्के छुडा दिये। रुक्मिणी का भाई रुक्म बडे दावे के साथ यह कहता हुआ आगे बढा कि अबला को पकडकर ले जा रहे हो, मेरा सामना करने पर पता चलेगा। कृष्ण को क्रोध आ गया परन्तु रुक्मिणी के मन का भाव समझकर उसे जान से नही मारा। नि शस्त्र करके उसके बाल मुडा दिए। रुक्मिणी का मन इससे खिन्न हुआ अत उसने उसके सर पर हाथ रख दिया तो फिर तुरन्त उसके सिर पर वैसे ही बाल आ गए।

उधर श्रीकृष्ण को जब द्वारिका पहुँचने मे देर हुई तो पुरजन चिन्तित हुए। इतने मे हाथ मे हरी डालियाँ लिए कुछ पथिको को आता देख लोग समझ गये कि कृष्ण आ रहे हैं। अत नगरी के एक ओर से नारियाँ और दूसरी ओर से पुरुष पंक्तिबद्ध हो श्रीकृष्ण के स्वागत मे आ रहे थे। ऐसा लगता था द्वारिकापुरी दोनो भुजाए फैलाये कृष्ण का आलिंगन करने को तैयार हो। जिस प्रकार समुद्र मे नदी प्रवेश करती है उसी प्रकार बलराम और कृष्ण ने द्वारिका मे प्रवेश किया।

वसुदेव-देवकी ने ज्योतिषी को बुलाकर विवाह की अन्य रस्मे पूरी की। इसके पश्चात् वर-वधू केलिगृह मे चले गये। केलिगृह का वर्णन कवि ने अपनी लेखनी से नही किया। वह बडी सूझ के साथ कहता है कि आगे की कथा देवो और ऋषियो ने भी नही जान पाई तो मैं उसका वर्णन कैसे कर पाता

एकन्त उचित क्रीडा चौ आरम्भ
दीठी सु न किहि देव दुजि।
अदिठ अश्रुत किम कहणो आवै,
सुखते जाणणहार सुजि॥ १७३॥

इस प्रकार कृष्ण ओर रुक्मिणी सुख के दिन बिताने लगे। इसके बाद षड्ऋतुओं के आगमन का सुन्दर वर्णन है। वसन्तु ऋतु मे कामदेव ने आकर रुक्मिणी के गर्भ मे वास किया। समय आने पर कृष्ण को प्रद्युम्न नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। आगे चलकर प्रद्युम्न को भी अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ जिसका विवाह बाणासुर की कन्या उषा से हुआ। अन्त मे कवि ग्रन्थ का उपसहार के साथ समापन करता है।

**छिताईवार्ता**[1]—ग्रन्थ के रचयिता है नारायणदास। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में कई प्रतियो मे भिन्न-भिन्न तिथियाँ लिखी होने के कारण मतभेद है। डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने इसका रचनाकाल स० १६४७ माना है।[2] परन्तु डा० माताप्रसाद गुप्त ने सप्रमाण इसका रचनाकाल स० १५०० तथा रतनरगकृत कृति का समय स० १५५० माना है, जो युक्तिसगत है।[3]

रचना कई दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। रचना मे कई स्थल ऐसे हैं जिनसे तत्कालीन वास्तुशिल्प[4], मूर्तिशिल्प[5] और चित्रशिल्प[6] के विषय मे जानकारी प्राप्त होती है। युद्ध के वर्णन मे उस समय की युद्धप्रणाली के साथ उस समय के युद्धास्त्रो का भी उल्लेख किया गया है। युद्ध का वर्णन साक्षात् युद्ध का दृश्य सामने ला देता है जैसे कि युद्धस्थल पर खडे सब देख रहे हो।[7] कथा इस प्रकार है

देवगिरि के राजा रामदेव पर अलाउद्दीन की सेना ने नुसरत खा के सेनानायकत्व मे आक्रमण किया। रामदेव ने नुसरत खा को सधिपत्र देकर युद्ध टाल दिया तथा उसी के साथ दिल्ली चला गया। बादशाह प्रसन्न हो गया और उसे ससम्मान महल मे स्थान दिया। रामदेव तीन वर्षों तक वही रहा।

---

१ डा० माताप्रसाद द्वारा सपादित, काशी ना०प्र० सभा से स० २०१५ में प्रकाशित

२ भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ३५

३ छिताईवार्ता मे डा० माताप्रसाद की भूमिका देखिए, पृ० २४-२६

४ वही, पद्य १०५ से ११३ तक और ३८२ से ३८६ तक और ३८९-९०

५ वही, पद्य ११४ से १२२ तक

६ वही, पद्य १२५ से १२८ तक

७ वही, पद्य ४९६ से ५०१ तक

इधर रामदेव की कन्या छिताई विवाह योग्य हो गयी थी। अत रानी ने रामदेव को इसकी सूचना देकर वुलाया। रामदेव ने अलाउद्दीन से देवगिरि आने की आज्ञा माँगी। वादशाह रामदेव की सेवा से प्रसन्न था। अत उससे कोई माँग पेश करने को कहा। रामदेव ने एक श्रेष्ठ चित्रकार माँगा जिसे वादशाह ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। रामदेव कुशल चित्रकार के साथ देवगिरि वापिस आ गया।

रामदेव ने चित्रकला प्रदर्शन के लिए एक राजभवन का निर्माण कराया जिसमे उस चित्रकार ने सुन्दर-सुन्दर चित्र वनाने प्रारभ किये। एक दिन छिताई उस भवन मे चित्र देखने आई। चित्रकार छिताई के सौन्दर्य को देखकर मूच्छित हो गया। उसके वाद वह छिताई की प्रतीक्षा मे रहा। पुन जव छिताई चित्रशाला मे आई तो चित्रकार ने उसे जिस रूप मे देखा उसी रूप मे कागज पर उतार लिया। कुशल चित्रकार ने छिताई का मुस्कराना, चलना, वैठना सव अकित कर लिया। एक वार पुन छिताई आई तो वह मृग शावको को हाथ मे हरे जौ खिला रही थी। उसकी इस मुद्रा को देखकर चित्रकार पुन॰ मूर्छित हो गया। जव उसे चेत हुआ तो उसने पुन इस मुद्रा को चित्रित कर लिया।

जव राजा का नवीन भवन वनकर तैयार हो गया तव उसने द्वारसमुद्र के राजा भगवान् नारायण के पुत्र सोरसी के साथ छिताई का विवाह निश्चित कर दिया। छिताई का विवाह सम्पन्न हो गया। छिताई अपने ससुराल चली गई। कुछ दिन वाद पिता के वुलावे पर अपने पति के साथ आई। वे दोनो सानन्द वहाँ रहने लगे।

सोरसी को शिकार खेलने का व्यसन पड गया था। रामदेव के मना करने पर भी वह नही माना। एक वार एक मृग के पीछे दौडते-दौडते पूरी रात वीत गई किन्तु वह मृग हाथ नही आया। मृग गहन जगल मे भर्तृहरि के आश्रम मे पहुँच गया। भर्तृहरि की समाधि टूट गई। उन्होने सोरसी को वहु विधि समझाया परन्तु वह नही माना। अत भर्तृहरि ने उसे स्त्री-वियोग का शाप दे दिया। सोरसी को अपने कृत्य पर पश्चात्ताप होने लगा। वह वापस देवगिरि आ गया।

इधर चित्रशाला का कार्य पूरा हो चुका था। अत वहुत सी भेट के साथ अलाउद्दीन के पास चित्रकार को भेज दिया। दिल्ली पहुँचकर सभी भेंट का सामान चित्रकार ने अलाउद्दीन के सामने प्रस्तुत किया। चित्र-

कार का चेहरा कुम्हलाया देख बादशाह ने कारण जानना चाहा। सभा समाप्त होने पर चित्रकार को बादशाह ने अलग महल मे बुलाया। चित्रकार ने छिताई का चित्र जब बादशाह को दिखाया तो वे मूर्च्छित हो गये। चेत आने पर उन्होने चित्र अपनी हिन्दुनी स्त्री हयवती को दिखाया। उसने मुग्ध होकर किसी भी प्रकार छिताई को सजीव देखने की इच्छा प्रकट की।

अलाउद्दीन स्वय विशाल सैन्यदल के साथ मार्ग मे मन्दिरो को ध्वस करके मस्जिदो का निर्माण करता हुआ देवगिरि पहुँचा। वहाँ उसने घेरा डाल दिया। सोरसी के नेतृत्व मे देवगिरि की सेना ने युद्ध किया। दोनो ओर की क्षति हुई।

अलाउद्दीन छ माह तक घेरा डाले रहा। रामदेव ने सोरसी से छिताई को लेकर अन्यत्र चले जाने का प्रस्ताव किया। वह इस बात पर तैयार नही हुआ। किन्तु वह द्वारसमुद्र से सैन्य सहायता लेने चला गया। जाते समय छिताई को अपना अगरखा ( वस्त्र ), कण्ठमाला तथा दक्षिणी जमघर चिह्नस्वरूप दे गया। सोरसी के जाते ही छिताई तपस्विनी का सा जीवन बिताने लगी।

इधर अलाउद्दीन को सदेह हुआ कि दुर्ग से सोरसी छिताई को लेकर तो नही निकल गया। उसने राघव चेतन को बुलवाकर अपना सदेश व्यक्त किया। उसने पद्मिनी को न पा सकने की भी बात दुहरायी। यदि उसे निश्चित पता लग जाये कि छिताई कहाँ है तो वह उसी स्थान पर आक्रमण करेगा।

राघव चेतन दो दूतियो के साथ वसीठ के रूप मे दुर्ग के अन्दर पहुच गया। बादशाह भी दुर्ग को अन्दर से देखने की इच्छा से राघव चेतन के अनुचर के रूप मे उसके साथ गया। दूतियाँ रनिवास की ओर चली गईं। राघव चेतन दरबार की ओर चला गया और बादशाह नगर की ओर चला गया। बादशाह देवगिरि के सुन्दर रामसरोवर के किनारे पहुचा। वह अपने साथ गुलेल तथा गोलियाँ लेता आया था उनसे पक्षियो का शिकार करने लगा। छिताई भी अपनी सखी मैनरेखा के साथ वहाँ पहुँची। उसे इस व्यक्ति पर सदेह हुआ अत अपनी सखी को उसका पता लगाने के लिए छोडकर चली गई।

मैनरेखा बादशाह के पास पहुँची और उसे गोलियाँ थमाने लगी। अब गोलियाँ समाप्त होते ही मैनरेखा ने बादशाह से कहा कि वह उसे

गुन समुद्र मंथान ग्यान मंथानिय ढुंढिय।
जेतु हेतु गहि हाथ रतन नवरस मथ कढ्ढिय ॥
वागेसुर परसाद प्रघट क्रम क्रम सब दिज्जहु।
अलप बुद्धि कह हेत धीर मुहि दोस न दिज्जहु ॥
गुरु नाम सुमर पोहकर सुकवि गरुव ग्रंथ आरंभ किय।
रस रचित कथा रसकनि रुचित रुचिर नाम रसरतन दिय ॥२०॥

वहि समुद्र चौदा रतन, मथे असुर सुर सैन।
इहि समुद्र नव रस रतन नाम धरो कवि तैन ॥ २१ ॥

भारतीय प्रेमाख्यानकों का अधिकाश मूल लोक-गीतो, मुहावरो, लोक-प्रचलित किंवदतियो अथवा दतकथाओ के आधार पर खोजा जा सकता है। रसरतन भी एक 'दतकथा' अर्थात् काल्पनिक कथा है। पुहकर ने इसे दतकथा के रूप मे स्वीकार किया है

पहले दतकथा हम सुनी। तिहि पर छंद वद हम गुनी ॥
श्रवनन सुनी कथा हम थोरी। कछुवक आप उकति तें जोरी॥आदि खड८९॥

रसरतन मे कथा की सरसता और रोचकता का पूरा-पूरा पता उसका पाठ करने से ही चलता है। रसरतन मे प्रेमाख्यानकों मे आने वाली कथानक रूढियो का भी प्रयोग हुआ है जिनका उल्लेख यथास्थान किया जायेगा। रसरतन की रचना का समय स० १६७३ है। कथा का साराश इस प्रकार है

पुहकर ने रसरतन मे अद्वितीय कथा-निर्माण किया है। कामकन्दला मे तो काम ने सिर्फ जन्म ही लिया था, यहाँ उसे वैरागर के राजा सोमेश्वर के पुत्र सूरसेन और चम्पावती नरेश को तनया रभावती का सयोग कराने के लिए स्वय दूत वनना पडा

नृप तनया रंभावती, सूर पृथ्वीपति पूत।
वरनो तिनको प्रेमरस, मदन भयो तह दूत ॥ आदि खड १०२ ॥

वैरागर के राजा सोमेश्वर पूर्व दिशा मे राज्य करते थे। सूर्योदय के कारण यह दिशा सर्व दिशाओ से महत्त्वपूर्ण है। राजा अतुल वैभवसपन्न था। परन्तु पुत्राभाव के कारण वह अत्यत मर्माहत था। एक वार वह अपनी रानियो के साथ काशी आया। यहाँ चिंतामणि पडित ने उन्हे

उसके वीणावादन से छिताई के आँसू बहने लगे। वे आँसू बादशाह के कंधो पर गिरे। सोरसी से बादशाह ने कुछ माँगने को कहा। उसने बादशाह से छिताई को माँगा। बादशाह ने छिताई की इच्छा जाननी चाही। छिताई ने सोरसी का वास्तविक परिचय कराया तो बादशाह ने उसका बडा सत्कार किया और एक पिता के रूप मे स्वयं छिताई को सोरसी के सुपुर्द किया।

बादशाह ने उन्हे विदा करते समय गुजरात का देश दिया। वे दोनो देवगिरि आये। वहाँ उनका बडा स्वागत-सम्मान हुआ। पुन वे द्वार-समुद्र पहुँचे। सोरसी के पिता भगवान् नारायण उन्हे देख अत्यधिक प्रसन्न हुए।

रसरतन[1]—ऐतिहासिक या साहित्यिक स्तर पर सभी प्रेमाख्यानको का अपना-अपना महत्त्व है। फिर भी पुहकरकृत रसरतन के विषय मे यह कहना आवश्यक है कि रसरतन हिन्दी प्रेमाख्यानको की परम्परा की एक मूल्यवान् कडी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसरतन का महत्त्व इन शब्दो मे स्वीकार किया था 'कल्पित कथा लेकर प्रबन्ध-काव्य रचने की प्रथा पुराने हिन्दी कवियो मे बहुत पाई जाती है। जायसी आदि सूफी शाखा के कवियों ने ही इस प्रकार की पुस्तके लिखी है, पर उनकी परिपाटी बिल्कुल भारतीय नही थी। इस दृष्टि से रसरतन को हिन्दी साहित्य मे विशेष स्थान देना चाहिए।'[2] परन्तु आश्चर्य होता है कि विशेष स्थान दिलाने की सिफारिश करके शुक्ल जी ने रसरतन पर इससे अधिक कुछ नही लिखा। बाद मे यत्किंचित् स्थानों पर इसकी चर्चा की गई। सन् १९५५ मे डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने अपने 'भारतीय प्रेमाख्यान काव्य' मे इस पर लिखा। इसके बाद १९६० मे डा० शिवप्रसाद सिंह द्वारा महत्त्वपूर्ण विस्तृत भूमिका सहित सम्पादित होकर यह ग्रन्थ प्रकाश मे आया है। कवि ने ग्रन्थ का नामकरण रसरतन इसलिए किया चूँकि उनका ग्रन्थ नवरसो से अलंकृत है। उन्होने गुणसमुद्र को ज्ञान की मथानी और प्रेम की डोरी से मथा तब उन्हे वह नवनीत प्राप्त हुआ

---

१ डा० शिवप्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित पुहकरकृत रसरतन, ना० प्र० सभा, काशी

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२८

गुन समुद्र मंथान ग्यान मथानिय ढुंढिय।
जेतु हेतु गहि हाथ रतन नवरस मथ कढ्ढिय ॥
वागेसुर परसाद प्रघट क्रम क्रम सव दिज्जह।
अलप वुद्धि कहं हेत धीर मुहि दोस न दिज्जह ॥
गुरु नाम सुमर पोहकर सुकवि गरुव ग्रंथ आरंभ किय।
रस रचित कथा रसकनि रुचित रुचिर नाम रसरतन दिय ॥२०॥

वहि समुद्र चौदा रतन, मथे असुर सुर सैन।
इहि समुद्र नव रस रतन नाम धरो कवि तैन ॥ २१ ॥

भारतीय प्रेमाख्यानको का अधिकाश मूल लोक-गीतो, मुहावरो, लोक-प्रचलित किवदतियो अथवा दतकथाओ के आधार पर खोजा जा सकता है। रसरतन भी एक 'दतकथा' अर्थात् काल्पनिक कथा है। पुहकर ने इसे दतकथा के रूप मे स्वीकार किया है

पहले दंतकथा हम सुनी। तिहि पर छंद वद हम गुनी ॥
श्रवनन सुनी कथा हम थोरी। कछुवक आप उकति तैं जोरी॥आदि खड८९॥

रसरतन मे कथा की सरसता और रोचकता का पूरा-पूरा पता उसका पाठ करने से ही चलता है। रसरतन मे प्रेमाख्यानको मे आने वाली कथानक रूढियो का भी प्रयोग हुआ है जिनका उल्लेख यथास्थान किया जायेगा। रसरतन की रचना का समय स० १६७३ है। कथा का साराश इस प्रकार है

पुहकर ने रसरतन मे अद्वितीय कथा-निर्माण किया है। कामकन्दला मे तो काम ने सिर्फ जन्म ही लिया था, यहाँ उसे वैरागर के राजा सोमेश्वर के पुत्र सूरसेन और चम्पावती नरेश को तनया रभावती का सयोग कराने के लिए स्वय दूत वनना पडा

नृप तनया रंभावती, सूर पृथ्वीपति पूत।
वरनो तिनको प्रेमरस, मदन भयो तह दूत ॥ आदि खड १०२ ॥

वैरागर के राजा सोमेश्वर पूर्व दिशा मे राज्य करते थे। सूर्योदय के कारण यह दिशा सर्व दिशाओ से महत्त्वपूर्ण है। राजा अतुल वैभवसपन्न था। परन्तु पुत्राभाव के कारण वह अत्यत मर्माहत था। एक वार वह अपनी रानियो के साथ काशी आया। यहाँ चितामणि पडित ने उन्हे

मनसा, वाचा, कर्मणा शिवसेवा करने को कहा। उनके ऐसा करने पर शिव प्रसन्न हुए और महारानी कमलावती ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। ज्योतिषियो ने जन्म-लग्न-विचार करके उसके सम्बन्ध मे भविष्यवाणी की कि राजकुमार बहुत गुणी होगा, चक्रवर्ती नरेश बनेगा, किन्तु तेरहवे वर्ष मे त्रिया-विरह से दु खी होगा। विरह मे ३ वर्ष तक इधर-उधर कष्ट झेलता हुआ भटकेगा। चौथे वर्ष प्रिया-सयोग होने के कारण सभी दु खो से छुटकारा पा सकेगा। इसके दो स्त्रियाँ होगी और चार पुत्र, जो कि पृथ्वी का शासन करेंगे। यह कुमार रूप मे काम, ज्ञान मे गोरख, दान मे बलि, साहस मे विक्रमादित्य, शस्त्र-प्रयोग मे अर्जुन, बल मे भीम, व्रत मे भीष्म, विद्या म भोज, सौन्दर्य मे चन्द्रमा और शौर्य मे सूर्य को तरह होगा। इसकी आयु पाँच कम सौ वर्ष की होगी। राजा ने पडितो को दान देकर विदा किया। कुमार का लालन-पालन राज-घरानो के अनुकूल होने लगा। १२ वर्ष मे उसने वेद, व्याकरणादि तथा अस्त्र-शस्त्रादि चौदह विद्याएँ सीख ली। जब १३वे वर्ष मे कुमार का प्रवेश होने लगा तो उसके अग अग मे तरुणाई फूट पडी। ज्योतिषियो की वाणी का स्मरणकर राजा ने तय किया कि कुमार से कोई प्रेम की बात न करे और न वह किसी तरुणी को देख सके।

गुर्जर देश की चम्पावती नगरी मे राजा विजयपाल का राज्य था। यह राजा भी सर्वसाधनसपन्न और सुखी था। उसके अन्त पुर मे अनेक रमणीक रमणियाँ थी। परन्तु सन्तान के न होने से सभी व्यर्थ थीं। एक बार राजा शोचनीय दशा मे बैठा हुआ था तो एक सिद्ध आया। राजा के अभिलाषा व्यक्त करने पर सिद्ध ने इन्हे चण्डी-पूजा करने का उपदेश दिया और भविष्यवाणी की कि तुम्हे एक कन्यारत्न को प्राप्ति होगी। समय आने पर महारानी पुष्पावती को स्वाति नक्षत्र मे कन्योत्पत्ति हुई। पडितो ने जन्म-लग्न देखकर भविष्यवाणी की कि यह बडी होनहार और भाग्यशालिनी पुत्री है। इसकी कहानी युगो तक चलेगी। ११वे वर्ष मे इसे पीडा होगी। वह रोग चौदहवे वर्ष मे दूर होगा। कन्या का लालन-पालन नृप ने बडे लाड-प्यार से किया। रभा के ११वे वर्ष मे प्रवेश करते ही उसके अग मे अचानक मन्मथ का प्रवेश हो गया। उसके प्रत्येक अग का सौन्दर्य बढने लगा। यौवन जल मे झाँकती कमलकली की भाँति फूटने लगा।

एक समय अपने पति की सेज पर सुख मे खोई रति ने पूछा—नाथ सारा त्रिभुवन तुम्हारे अधीन है, कोई भी तुम्हारे प्रेमपाश से मुक्त नही है। अत मुझे वताइये कि तीनो लोको मे कौन तरुण और तरुणी सर्वाधिक सुन्दर हैं। काम ने कहा कि यो तो वहुत सो मे ठीक-ठीक वता पाना कठिन है, फिर भी चपावत्ती नरेश की कन्या रभावती और वैरागर के राजा सोमेश्वर का पुत्र अद्वितीय है। काम की बात सुनकर रति ने हठ किया कि दोनो का सयोग करा दीजिये। काम ने उसके हठ को पूरा करने के लिए उसे वताया—'हे सुन्दरो! दर्शन तीन प्रकार के होते हैं स्वप्न, चित्र और प्रत्यक्ष।' तुम वैरागर जाकर रभा के वेश मे सूरसेन को दर्शन दो और मैं सूरसेन के वेश मे रभा को दर्शन दूँगा। रति ने ऐसा करके सूरसेन को प्रेम-समुद्र मे निमग्न कर दिया।

कामदेव चम्पावती रम्भा के शयनकक्ष मे गये। कामदेव ने रंभा पर उच्चाटन और मोहनशर का प्रयोग किया। अवला को अधीन वनाकर मदन अन्तर्धान हो गये। प्रात काल राजकुमारी की दशा देखकर सखियाँ तरह-तरह की शका करने लगी। कोई कहती हवा लगी है कोई कहती भूत का भय है। इसी प्रकार सभी परेशान थी। इतने मे आकाशवाणी हुई कि आस रखो, 'सूर विथाहर' होगे। रानी को खवर मिली। राजा-रानी बहुत दु खी हुए। वैद्य, सयानो के तरह-तरह के उपचार किये गए। कोई लाभ नही हुआ। मदनमुदिता नामक सखी ने रभा की स्वेद, स्तभ, रोमाच, वेपथु आदि स्मरदशाओ को देखकर उसे प्रेमपीडा होने का अनुमान किया। अपनी इस शका को उसने अन्य सखियो पर प्रकट किया। सभी सखियाँ रभा के पास गईं। मदनमुदिता ने छलपूर्वक नलदमयती, कामकन्दला, उषाअनिरुद्ध की कथा सुनाई। अन्तिम कथा को सुनकर रम्भा आकृष्ट हुई। मदनमुदिता ने कसम दिलाकर मन मे पैठे चोर का नाम पूछ लिया। रम्भा के कुछ ही दिनो मे जव काम की दसवी दशा निधन समीप आने लगी तव लाचार हो मदनमुदिता ने रानी को वता दिया। मुदिता की राय मानकर रानी ने राजा से छिपाकर अनेक चित्रकार राजकुमारो का चित्र लाने के लिए भेजे।

इधर रम्भा अपने प्रिय की आशा लगा रही थी। उधर सूरसेन विना जल की मछली के समान तडफ रहे थे। उन्हे दिन, रात, सूर्य-चन्द्र किसी की पहचान नही रही। जिस दिन से उन्होने रम्भा को स्वप्न मे देखा था

उसी दिन से विरहवृक्ष अकुरित हो गया था। उनके विरह को दूर करने के विभिन्न उपाय किये जा चुके थे, परन्तु सभी असफल सिद्ध हुए। इसी बीच वैरागर मे वुद्धिविचित्र नामक चित्रकार देश-देशान्तरो का भ्रमण करता हुआ पहुँचा। नगर मे प्रवेश करते हुए उसे शकुन हुए। वह राज-भवन के पुजारी देवदत्त के यहाँ ठहरा। उन्ही के माध्यम से राजकुमार से मिला और उनसे राजकुमारी की सही-सही स्वप्न आदि की बातें बताई। राजकुमार ने भी चित्रकार को स्वप्न की बात सुनाई। तब चित्रकार ने रम्भा का ७ सखियो के साथ वाला चित्र दिखाया। वह चित्र पहचान गया और उसे हृदय से लगाकर शान्ति पाता तथा नैनो से अलग नही कर पाता। चित्रकार ने राजकुमार को बातो की गोपनीयता की शपथ दिलाई। राजकुमार ने रम्भा के लिए एक पत्र और अँगूठी चित्रकार के हाथ भेज दी। चित्रकार को भी बहुत से उपहार भेट कर विदा किया। रम्भा के स्वयवर मे आने की बात चित्रकार ने राजकुमार से समझा दी।

वुद्धिविचित्र चपावती पहुचकर मत्री सुमतिसागर से मिला। मुदिता ने चित्र, पत्र और मुद्रिका राजकुमारी के पास भेज दिए। रानी को जब यह खुशखबरी मिली उसने राजा को सुता-स्वयवर करने की सलाह दी। स्वयवर की विधिवत् तैयारी होने लगी। राजभवन और उसके सामने अनेक साज-सामान एकत्र होने लगा।

इधर रभा की सखियाँ प्रिय को रिझाने, वशीभूत करने और स्वय के शृगार के नवीन ढग रभा को सिखाने लगी। लज्जा, पतिसेवा आदि की दीक्षाएँ मिली। मदन के प्रमुख स्थान और उन्हे उद्दीप्त करने की विधियाँ बताई गई। कोककला का पूरा ज्ञान कराया गया। चौरासी मुद्राएँ सखियो ने बताई। प्रिय के अप्रिय वचनो को भी सह जाने की सलाह दी गई। इस प्रकार सखियो ने उसे अनेक शिक्षाओ से अवगत कराया।

सूरसेन ने विजयपाल द्वारा आयोजित स्वयवर मे जाने की इच्छा मत्री स व्यक्त की। मत्री ने राजा को सूरसेन को चपावती भेजने के लिए तैयार कर लिया। वैशाख कृष्णा पचमी तदनुसार पुष्य-नक्षत्र गुरुवार के दिन विजययात्रा का निश्चय हुआ। पुत्र को विदा करते समय रानी कमलावती का कठ भर आया।

सूरसेन की सेना चली। सेना मे हाथी-घोडे आदि सभी अच्छी नस्ल के थे। इसका वर्णन कवि ने आलकारिक भाषा मे विस्तृत रूप से किया है। सूरसेन अपनी सेना के साथ विस्तृत मार्ग तय करके मानसरोवर के तट पर पहुचे। वहाँ का दृश्य बडा मनोरम और सुहावना था। सूरसेन ने वही रात्रि-विश्राम का निश्चय किया। उसी दिन अर्द्धरात्रि के बाद अप्सराएँ वही जलक्रीडा करने आईं। सभी अप्सराएँ सुन्दर आभूषणो से युक्त थी। चादनी रात का सुहावना मौसम था। ये अप्सराएँ रभा की सलाह से क्रीडा-कमलो से खिलवाड करती रही। मदिर के वहाँ उन्होने देखा कि एक सुन्दर युवक एक बहुमूल्य पलग पर सोया हुआ है। सूरसेन के रूप को देखकर अप्सराओ को अपनी अभिशप्ता सखी कल्पलता की याद आई जो इन्द्र के शाप से पृथ्वी पर आ गई थी। उन्होने सोचा कि यदि कल्पलता का विवाह इस सुन्दर युवक से हो जाय तो उसका अभिशाप वरदान मे बदल जायेगा। इसी उद्देश्य से अप्सराओ ने पलग उठाया और ब्रह्मकुण्ड की ओर ले चली। कल्पलता के पास पहुँचकर अप्सराओ ने उसको उस युवक से गधर्व-रीति से विवाह करने पर राजी कर लिया। शीघ्र ही कल्पलता का शृगार करके उससे युवक को जगवाकर आरती उतरवाई। सखियाँ उन दोनो को केलिक्रीडा करने के लिए छोड-कर हट गईं। सूरसेन ने इसे रभा समझा। क्योकि जो जिसकी आखो मे बसता है उसे वही दिखाई पडता है। दोनो आलिगन-पाश मे बध गये। इस स्थान पर दोनो की सुरति-केलि का वर्णन कवि पुहकर ने कामशास्त्र के आचार्य के रूप मे ही किया है। सुरति के बीच मे कल्पलता की 'चतुराई' से सूरसेन को सन्देह हुआ कि यह रभा नही है। कुमार ने उसका परिचय पूछा। कल्पलता ने बताया कि वह इन्द्रसभा की एक अप्सरा है। एक नृत्य मे बाधा के कारण नल ने उसे मर्त्यलोक मे आने का शाप दे दिया। परन्तु उसने दया करके कहा कि तेरा पति एक नरेश होगा, मेरी कृपा से सुख-भोग मे कमी नही होगी। बाद मे कुमार के अनुरोध पर कल्पलता ने अप्सराओ का नृत्य दिखलाया। एक दिन सोये हुए कुमार के गले मे रत्न-जटित 'उरवसी' मे रभा का चित्र देखकर उसका भेद पूछा। कुमार ने बात छिपा ली। कुछ समय बाद कुमार को रभा की याद सताने लगी। वह एक साधु-मण्डली के पास चम्पावती का मार्ग पूछने के लिए गया। मार्ग का पता चला कि वह विकट मार्ग है। परन्तु कुमार योगी का वेश बना,

उसी दिन से विरहवृक्ष अकुरित हो गया था। उनके विरह को दूर करने के विभिन्न उपाय किये जा चुके थे, परन्तु सभी असफल सिद्ध हुए। इसी बीच वैरागर मे बुद्धिविचित्र नामक चित्रकार देश-देशान्तरो का भ्रमण करता हुआ पहुँचा। नगर मे प्रवेश करते हुए उसे शकुन हुए। वह राज-भवन के पुजारी देवदत्त के यहाँ ठहरा। उन्ही के माध्यम से राजकुमार से मिला और उनसे राजकुमारी की सही-सही स्वप्न आदि की बातें बताई। राजकुमार ने भी चित्रकार को स्वप्न की बात सुनाई। तब चित्रकार ने रम्भा का ७ सखियो के साथ वाला चित्र दिखाया। वह चित्र पहचान गया और उसे हृदय से लगाकर शान्ति पाता तथा नैनो से अलग नही कर पाता। चित्रकार ने राजकुमार को बातो की गोप-नीयता की शपथ दिलाई। राजकुमार ने रम्भा के लिए एक पत्र और अँगूठी चित्रकार के हाथ भेज दी। चित्रकार को भी बहुत से उपहार भेट कर विदा किया। रम्भा के स्वयवर मे आने की बात चित्रकार ने राजकुमार से समझा दी।

बुद्धिविचित्र चपावती पहुचकर मत्री सुमतिसागर से मिला। मुदिता ने चित्र, पत्र और मुद्रिका राजकुमारी के पास भेज दिए। रानी को जब यह खुशखबरी मिली उसने राजा को सुता-स्वयवर करने की सलाह दी। स्वयवर की विधिवत् तैयारी होने लगी। राजभवन और उसके सामने अनेक साज-सामान एकत्र होने लगा।

इधर रभा की सखियाँ प्रिय को रिझाने, वशीभूत करने और स्वय के शृगार के नवीन ढग रभा को सिखाने लगी। लज्जा, पतिसेवा आदि की दीक्षाएँ मिली। मदन के प्रमुख स्थान और उन्हे उद्दीप्त करने की विधियाँ बताई गईं। कोककला का पूरा ज्ञान कराया गया। चौरासी मुद्राएँ सखियो ने बताईं। प्रिय के अप्रिय वचनो को भी सह जाने की सलाह दी गई। इस प्रकार सखियो ने उसे अनेक शिक्षाओ से अवगत कराया।

सूरसेन ने विजयपाल द्वारा आयोजित स्वयवर मे जाने की इच्छा मत्री स व्यक्त की। मत्री ने राजा को सूरसेन को चपावती भेजने के लिए तैयार कर लिया। वैशाख कृष्णा पचमी तदनुसार पुष्य-नक्षत्र गुरुवार के दिन विजययात्रा का निश्चय हुआ। पुत्र को विदा करते समय रानी कमलावती का कठ भर आया।

भी आकर्षक था। मडप मे लगातार नरेश आ-आकर अपना स्थान ग्रहण कर रहे थे। सभी नरेशो के बीच सूरसेन सूर्य के समान तेजवान् था। कुमारी ने मडप मे प्रवेश किया और अनेक नरेशो के सामने से होती हुई वह सूरसेन तक पहुँचकर रुक गई और गले मे जयमाला डालकर पैरो पर झुक गई। यह विवाह बडे उल्लास और आनन्द के साथ सम्पन्न हुआ।

चम्पावती नरेश ने सूरसेन से प्रार्थना की कि सूरसेन रम्भा को पुत्र प्राप्ति तक चम्पावती मे रहे। विजयपाल ने अपना राज्य रम्भा के होने वाले पुत्र के नाम सकल्प कर दिया। मन्त्री ने राजा की आज्ञा मानकर सूरसेन से चम्पावती रहने का आग्रह किया। रम्भा को रात्रि के समय छलपूर्वक सूरसेन के पास चित्रशाला मे पहुचा दिया। उसके मनोरथ पूर्ण हुए। सूरसेन ने कल्पलता से विवाह की बात छिपा ली।

उधर कल्पलता विरह से तडप रही थी। यही कवि ने बारहमासे का सुन्दर चित्रण किया है। सभी सुहावने महीने बीतते गये पर कल्पलता का प्रिय नही आया। अन्त मे उसने विद्यापति नाम के शुक को अपना विरह बताकर चम्पावती भेजा। ऐसे विलक्षण शुक को रम्भा ने अपने बाग मे देखकर पकड लिया और सोने के पिंजरे मे बन्द करके दूध-भात खिलाया। शुक के रहस्य को रम्भा ने सूरसेन से जान लिया और कल्पलता को शीघ्र ले आने का आग्रह किया। कुमार अपनी सेना लेकर ब्रह्मकुड की ओर चल पडा। साथ मे परिचारिकाएँ और रम्भा भी थी। मायानगर की सीमा पर पहुँचते ही मदन ने मार्ग रोका। अत युद्ध हुआ। युद्ध मे विजय हुई। उसमे कटे हुए मुण्डो की माला सूरसेन ने शिव को पहनाई। कल्पलता की और रम्भा की भेट दो बहनो के समान हुई। समय से रम्भा को पुत्रोत्पत्ति हुई। जिसकी खुशी मे याचक भी अयाचक बन गये, इतना दान दिया गया।

उधर पुत्र के पास न होने से राजा सोमेश्वर और रानी कमलावती की बुरी दशा थी। वे बार-बार कलियुग को कोसते जिसमे बेटे जन्मदाता माँ-बाप को भूलकर पत्नी के ही हो जाते है। उन्होने पुरोहित-पुत्र पुरुषोत्तम को चम्पावती से सूरसेन को लाने के लिए भेजा। सूरसेन माँ-बाप की खबर पाते ही अविलम्ब अपनी रानियो के साथ वैरागर के लिए चल पडा। कुछ आवश्यक जनो को साथ लिया और दहेज आदि का सामान पीछे आने को छोड़ दिया। सूरसेन अपने माँ-बाप के घर पहुँच गया। माँ

वीणा बजाता हुआ कठिन मार्ग पर शकर का ध्यान करता हुआ चपावती की ओर चला।

इधर प्रात काल वैरागर के मन्त्री गुनगभीर ने कुमार को शैया के साथ लापता पाया तो उनकी सारी गम्भीरता समाप्त हो गई। सभी विह्वल हो उठे। मत्री ने चित्ररेखा और मधुमालती की कथा सुन रखी थी। अत उन्होने सोचा—हो न हो शैया को कोई अप्सरा उडा ले गई हो। उन्होने सेना को चपावती को ओर बढने का आदेश दिया।

बहुत दिनो तक पथ-पीडाओ के झेलने के बाद कुमार एक अद्भुत-अनुपम बाग मे पहुचे। वहाँ एक सुन्दर तालाब था। उसमे सुन्दरियाँ जल भर रही थी। उसी स्थान पर सूरसेन ने अपनी वीणा बजाई, जिससे समस्त स्त्रियाँ, जीव-जन्तु इकट्ठे हो गये एव मुग्ध हो उठे। सूरसेन ने चम्पावती नगर मे प्रवेश किया। उनके आने की सूचना नगर मे पहले ही फैल चुकी थी। वे शिवमन्दिर मे पहुँचे और शिव की स्तुति की।

इधर लग्न का समय आ पहुँचा परन्तु सूरसेन का कोई पता नही। देश-देश से कुमारी के स्वयवर के लिए भूपति आने लगे। रम्भा को चिन्ता हो चली। सूरसेन की वीणा का नगर में शोर था। रम्भा की सखी गुनमजरी इस रहस्यमयी योगी का रहस्य जानने आई जिससे योगी ने एक विरह की गाथा कही। गुनमजरी ने अन्त पुर जाकर सारा भेद मदनमुदिता को बताया। रम्भा की आज्ञा से मदनमुदिता योगी से मिलने गई। कुमार ने बुद्धिविचित्र का पता पूछा और रम्भा से मिलने की इच्छा व्यक्त की। मुदिता ने रम्भा को आश्वस्त किया कि सेना पीछे आ रही है। रम्भा विवाह के पूर्व शिवयाचना के लिए शिवमन्दिर पहुँची। चम्पावती की सेना रम्भा के साथ गई और मन्दिर के चारो तरफ खडी रही। सूरसेन और रम्भा प्रथम मिलन के अवसर पर एक-दूसरे को अवाक् देखते रह गये। रम्भा लौटी तो कुमार बेहोश हो गया। मदनमुदिता ने उसे सब काम सावधानी से करने की सलाह दी। वह लौटकर वैरागर से आने वाली अपनी सेना से मिला। चम्पावती नरेश ने अपने मन्त्री को बुलाकर सूरसेन और उनकी सेना को उचित स्थान देने को कहा।

शुभ दिन पर मडप की रचना कराकर विजयपाल ने स्वयवर के लिए मडप मे आगमन का सभी नरेशो को निमन्त्रण दिया। रम्भा की सखियो ने रम्भा को बहुविध सजाया-सवारा। उसका रूप अप्सराओ से

भी आकर्षक था। मडप मे लगातार नरेश आ-आकर अपना स्थान ग्रहण कर रहे थे। सभी नरेशो के बीच सूरसेन सूर्य के समान तेजवान् था। कुमारी ने मडप मे प्रवेश किया और अनेक नरेशो के सामने से होती हुई वह सूरसेन तक पहुँचकर रुक गई और गले मे जयमाला डालकर पैरो पर झुक गई। यह विवाह बडे उल्लास और आनन्द के साथ सम्पन्न हुआ।

चम्पावती नरेश ने सूरसेन से प्रार्थना की कि सूरसेन रम्भा को पुत्र प्राप्ति तक चम्पावती मे रहे। विजयपाल ने अपना राज्य रम्भा के होने वाले पुत्र के नाम सकल्प कर दिया। मन्त्री ने राजा की आज्ञा मानकर सूरसेन से चम्पावती रहने का आग्रह किया। रम्भा को रात्रि के समय छलपूर्वक सूरसेन के पास चित्रशाला मे पहुचा दिया। उसके मनोरथ पूर्ण हुए। सूरसेन ने कल्पलता से विवाह की बात छिपा ली।

उधर कल्पलता विरह से तडप रही थी। यही कवि ने बारहमासे का सुन्दर चित्रण किया है। सभी सुहावने महीने बीतते गये पर कल्पलता का प्रिय नही आया। अन्त मे उसने विद्यापति नाम के शुक को अपना विरह बताकर चम्पावती भेजा। ऐसे विलक्षण शुक को रम्भा ने अपने बाग मे देखकर पकड लिया और सोने के पिंजरे मे बन्द करके दूध-भात खिलाया। शुक के रहस्य को रम्भा ने सूरसेन से जान लिया और कल्पलता को शीघ्र ले आने का आग्रह किया। कुमार अपनी सेना लेकर ब्रह्मकुड की ओर चल पडा। साथ मे परिचारिकाएँ और रम्भा भी थी। मायानगर की सीमा पर पहुँचते ही मदन ने मार्ग रोका। अत युद्ध हुआ। युद्ध मे विजय हुई। उसमे कटे हुए मुण्डो की माला सूरसेन ने शिव को पहनाई। कल्पलता की और रम्भा की भेट दो बहनो के समान हुई। समय से रम्भा को पुत्रोत्पत्ति हुई। जिसकी खुशी मे याचक भी अयाचक बन गये, इतना दान दिया गया।

उधर पुत्र के पास न होने से राजा सोमेश्वर और रानी कमलावती की बुरी दशा थी। वे बार-बार कलियुग को कोसते जिसमे बेटे जन्मदाता माँ-बाप को भूलकर पत्नी के ही हो जाते है। उन्होने पुरोहित-पुत्र पुरुषोत्तम को चम्पावती से सूरसेन को लाने के लिए भेजा। सूरसेन माँ-बाप की खबर पाते ही अविलम्ब अपनी रानियो के साथ बेरागर के लिए चल पडा। कुछ आवश्यक जनो को साथ लिया और दहेज आदि का सामान पीछे आने को छोड़ दिया। सूरसेन अपने माँ-बाप के घर पहुँच गया। माँ

वीणा बजाता हुआ कठिन मार्ग पर शकर का ध्यान करता हुआ चपावती की ओर चला।

इधर प्रात काल बैरागर के मन्त्री गुनगभीर ने कुमार को शैया के साथ लापता पाया तो उनकी सारी गम्भीरता समाप्त हो गई। सभी विह्वल हो उठे। मत्री ने चित्ररेखा और मधुमालती की कथा सुन रखी थी। अत उन्होने सोचा—हा न हो शैया को कोई अप्सरा उडा ले गई हो। उन्होने सेना को चपावती की ओर बढने का आदेश दिया।

बहुत दिनो तक पथ-पीडाओ के झेलने के बाद कुमार एक अद्भुत-अनुपम बाग मे पहुचे। वहाँ एक सुन्दर तालाब था। उसमे सुन्दरियाँ जल भर रही थी। उसी स्थान पर सूरसेन ने अपनी वीणा बजाई, जिससे समस्त स्त्रियाँ, जीव-जन्तु इकट्ठे हो गये एव मुग्ध हो उठे। सूरसेन ने चम्पावती नगर मे प्रवेश किया। उनके आने की सूचना नगर मे पहले ही फैल चुकी थी। वे शिवमन्दिर मे पहुँचे और शिव की स्तुति की।

इधर लग्न का समय आ पहुँचा परन्तु सूरसेन का कोई पता नही। देश-देश से कुमारी के स्वयवर के लिए भूपति आने लगे। रम्भा को चिन्ता हो चली। सूरसेन की वीणा का नगर में शोर था। रम्भा की सखी गुन-मजरी इस रहस्यमयी योगी का रहस्य जानने आई जिससे योगी ने एक विरह की गाथा कही। गुनमजरी ने अन्त पुर जाकर सारा भेद मदनमुदिता को बताया। रम्भा की आज्ञा से मदनमुदिता योगी से मिलने गई। कुमार ने बुद्धिविचित्र का पता पूछा और रम्भा से मिलने की इच्छा व्यक्त की। मुदिता ने रम्भा को आश्वस्त किया कि सेना पीछे आ रही है। रम्भा विवाह के पूर्व शिवयाचना के लिए शिवमन्दिर पहुँची। चम्पावती की सेना रम्भा के साथ गई और मन्दिर के चारो तरफ खडी रही। सूरसेन और रम्भा प्रथम मिलन के अवसर पर एक-दूसरे को अवाक् देखते रह गये। रम्भा लौटी तो कुमार बेहोश हो गया। मदनमुदिता ने उसे सब काम सावधानी से करने की सलाह दी। वह लौटकर बैरागर से आने वाली अपनी सेना से मिला। चम्पावती नरेश ने अपने मन्त्री को बुलाकर सूरसेन और उनकी सेना को उचित स्थान देने को कहा।

शुभ दिन पर मडप की रचना कराकर विजयपाल ने स्वयवर के लिए मडप मे आगमन का सभी नरेशो को निमन्त्रण दिया। रम्भा की सखियो ने रम्भा को बहुविध सजाया-सवारा। उसका रूप अप्सराओ से

भी आकर्षक था। मडप मे लगातार नरेश आ-आकर अपना स्थान ग्रहण कर रहे थे। सभी नरेशो के बीच सूरसेन सूर्य के समान तेजवान् था। कुमारी ने मडप मे प्रवेश किया और अनेक नरेशो के सामने से होती हुई वह सूरसेन तक पहुँचकर रुक गई और गले मे जयमाला डालकर पैरो पर झुक गई। यह विवाह वडे उल्लास और आनन्द के साथ सम्पन्न हुआ।

चम्पावती नरेश ने सूरसेन से प्रार्थना की कि सूरसेन रम्भा को पुत्र प्राप्ति तक चम्पावती मे रहे। विजयपाल ने अपना राज्य रम्भा के होने वाले पुत्र के नाम सकल्प कर दिया। मन्त्री ने राजा की आज्ञा मानकर सूरसेन से चम्पावती रहने का आग्रह किया। रम्भा को रात्रि के समय छलपूर्वक सूरसेन के पास चित्रशाला मे पहुचा दिया। उसके मनोरथ पूर्ण हुए। सूरसेन ने कल्पलता से विवाह की वात छिपा ली।

उधर कल्पलता विरह से तडप रही थी। यही कवि ने बारहमासे का सुन्दर चित्रण किया है। सभी सुहावने महीने वीतते गये पर कल्पलता का प्रिय नही आया। अन्त मे उसने विद्यापति नाम के शुक को अपना विरह वताकर चम्पावती भेजा। ऐसे विलक्षण शुक को रम्भा ने अपने वाग मे देखकर पकड लिया और सोने के पिंजरे मे वन्द करके दूध-भात खिलाया। शुक के रहस्य को रम्भा ने सूरसेन से जान लिया और कल्पलता को शीघ्र ले आने का आग्रह किया। कुमार अपनी सेना लेकर व्रह्मकुड की ओर चल पडा। साथ मे परिचारिकाएँ और रम्भा भी थी। मायानगर की सीमा पर पहुँचते ही मदन ने मार्ग रोका। अत युद्ध हुआ। युद्ध मे विजय हुई। उसमे कटे हुए मुण्डो की माला सूरसेन ने शिव को पहनाई। कल्पलता की और रम्भा की भेंट दो वहनो के समान हुई। समय से रम्भा को पुत्रोत्पत्ति हुई। जिसकी खुशी मे याचक भी अयाचक वन गये, इतना दान दिया गया।

उधर पुत्र के पास न होने से राजा सोमेश्वर और रानी कमलावती की वुरी दशा थी। वे वार-वार कलियुग को कोसते जिसमे वेटे जन्मदाता माँ-वाप को भूलकर पत्नी के ही हो जाते है। उन्होने पुरोहित-पुत्र पुरुषोत्तम को चम्पावती से सूरसेन को लाने के लिए भेजा। सूरसेन माँ-वाप की खवर पाते ही अविलम्ब अपनी रानियो के साथ वैरागर के लिए चल पडा। कुछ आवश्यक जनो को साथ लिया और दहेज आदि का सामान पीछे आने को छोड़ दिया। सूरसेन अपने माँ-वाप के घर पहुँच गया। माँ

का आँचल दूध से भीग गया। सूरसेन ने स्वयं के और रानियो के लिए एक भव्य प्रासाद का निर्माण कराया। सूरसेन समस्त राजाओ को जीत चक्रवर्ती हुए। कुमार के चार लडके थे। जब सूरसेन ने ३० वर्ष तक युवराज पद सभाला तो सोमेश्वर की मृत्यु हो गई। इससे उन्हे बहुत दु:ख हुआ। किसी प्रकार धैर्य धारण किया। रम्भा ने अपने पुत्र चन्द्रसेन को चम्पावती से बुला लिया। एक बार एक नटमण्डल ने एक खेल रचाया। यह खेल २२ खडो के महल मे रचाया गया। इस खेल को देख कर सूरसेन को वैराग्य हो गया और वे पडित चिन्तामणि तथा अपनी रानियो के साथ काशी चले गये।

**मृगावती**—इस नाम की कई रचनाएँ लिखी गईं। जिस रचना का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है, वह मेघराज प्रधान की कृति है। इसका रचनाकाल स० १७२३ है। डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने इसका रचना-काल स० १६०६ सम्भवतः प्रमाणाभाव के कारण ही लिखा होगा।[1] कुतुबनकृत मृगावती का सम्पादन डा० शिवगोपाल मिश्र ने किया है। उसकी भूमिका मे उन्होने मृगावती नाम की आठ विभिन्न लेखको की रचनाओ का उल्लेख किया है।[2] प्रस्तुत कृति के विषय मे जो उन्होने लिखा है, यहाँ मै वैसा ही उद्धृत कर रहा हूँ

'मेघराज प्रधानकृत स० १७२३ मे ओडछा के राजा सुजान सिंह के भतीजे अर्जुन सिंह की आज्ञा के अनुसार मेघराज ने मृगावती कथा लिखी। इसकी एक प्रति बूँदी के राजकीय पुस्तकालय मे है और एक दूसरी प्रति की सूचना भी उदयशकर शास्त्री ने दी है जो स० १८०६ की चैत्र सुदी २ को लिखी है (देखिए—साप्ताहिक 'आज' २३ मार्च, १९५८)।'[3]

**प्रेमपयोनिधि**—कवि मृगेन्द्र द्वारा रचित इस रचना का प्रणयन स० १९१२ मे हुआ था। रचना के अन्तर्गत वे सभी विशेषताएँ मौजूद है जो एक प्रेमाख्यान मे होनी चाहिए। जगह-जगह अद्भुत चमत्कार की बातें प्रस्तुत की गई हैं। समुद्र मे तूफान से नौका का टूटना, शुक आदि पक्षियो

---

१ डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ४१

२ कुतुबनकृत मृगावती, डा० शिवगोपाल मिश्र द्वारा सम्पादित, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित, भूमिका, पृ० ६.

३ वही

का कथानक मे भाग लेने जैसी अनेक कथानक रूढियो का भी प्रयोग हुआ है। कथा इस प्रकार है

प्रजापालक एव धर्मात्मा राजा प्रभाकर सुन्दरनगर मे राज्य करते थे। सन्तान न होने के कष्ट से दु.खी थे। भगवान् के भजन-पूजन से उन्हे एक पुत्ररत्न हुआ। ज्योतिपियो ने लग्न देख भविष्यवाणी की कि यह वालक वहुत प्रतापी राजा होगा। पन्द्रह वर्प की आयु मे प्रेम-पीडा के कारण घर छोड देगा। इवर-उधर मार्ग मे कठोर कष्ट होगे। वाद मे ३ विवाह करके घर लौट आयेगा।

पिता ने इसीलिए १३ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते कुमार की शिक्षा समाप्त करा दी और विवाह कर दिया। इसकी पत्नी चन्द्रप्रभा नामक एक रूपवती राजकुमारी थी। इन दोनो का जीवन वडे आनन्द के साथ वीतने लगा। एक दिन दोनो नगर मे घूमते-घूमते 'गुदडी' वाजार की ओर निकल गये। वहाँ एक कोने मे वहुत भीड जमा थी। राजकुमार कुतूहलवश उधर देखने गया तो देखा एक आदमी एक सुन्दर तोते को वेच रहा है। कुमार ने तोता खरीद लिया और चन्द्रप्रभा के साथ घर वापिस आ गया।

राजकुमार तोते को अपने शयनागार मे ही रखता था। एक दिन चन्द्रप्रभा ने खूव शृङ्गार किया और अपने रूप के विपय मे उसने सखियो से पूछा, सखियो ने प्रशसा की। लेकिन चन्द्रप्रभा और कुछ सुनना चाहती थी। वह अपने रूप पर मुग्ध हो रही थी। इससे वह तोते के पिंजरे के पास गई और उससे पूछा कि "क्या तुमने मुझ-सी सुन्दरी को कही देखा है?" तोते ने कोई उत्तर नही दिया। उसने फिर वही प्रश्न दोहराया। तोता फिर चुप ही रहा। चन्द्रप्रभा ने पुन. वही प्रश्न किया। इस बार तोते ने नम्रता से कहा कि "किसी को गर्व नही करना चाहिए क्योकि रावण का भी गर्व टूट गया था, तुम्हारा क्या?" वह इस उत्तर से आग-वबूला हो उठी। उसका चेहरा क्रोध से लाल था। इतने मे राजकुमार आ गया और उसने चन्द्रप्रभा से उसके क्रोध का कारण पूछा। चन्द्रप्रभा कुछ नही वोली। तोते ने सारी वात यथावत् सुना दी और कहा—इसी पर यह क्रुद्ध है। उसने राजकुमार को वताया कि उत्तर देश मे कनकपुर नाम का एक सुन्दर नगर है। वहाँ पहुचने मे १ वर्ष लगेगा। उस नगर की राजकुमारी ससार की सवसे सुन्दर स्त्री है। उसका नाम 'ससिकला'

है। चन्द्रप्रभा तो उसके सामने कुछ भी नही है। इतना सुनते ही चन्द्रप्रभा पिंजरे को उठाकर ले गई। उस दिन से कुमार ससिकला के विरह से सन्तप्त रहने लगा।

एक दिन तोते से मार्गदर्शन कराने की प्रार्थना की। इस पर प्रेम-मार्ग की कठिनाई का तोते ने उपदेश दिया। किन्तु राजकुमार मानने को तैयार नही हुआ। दूसरे दिन राजकुमार तोते को साथ ले ससैन्य कनक-पुर की ओर चल पडा।

तीन दिन के बाद वह एक सुन्दर वन मे पहुँचा। मृगो को देखकर कुमार के मन मे मृगया का विचार आ गया। उसने अपना घोडा मृग के पीछे दौडा दिया। शाम हो गई परन्तु मृग हाथ नही आया। कुमार को प्यास लगी। वह सामने ही एक झोपडी मे गया। वहाँ एक सन्यासी ध्यानस्थ था। इसके पहुँचने पर उसने अपनी आँखे खोली और इससे वहाँ आने का कारण पूछा। राजकुमार ने सारी घटना बता दी। सन्यासी ने राजकुमार को आँख मिलाने को कहा। राजकुमार ने जब आँख मिलाई तो उसमे कनकपुर, ससिकला आदि साक्षात् हुए। कुमार ससिकला का रूप देख मूच्छित हो गया। जब उसे चेत हुआ तो उसने अपने को वही पाया जहाँ से वह चला था। परन्तु वहाँ उसके साथी नही मिले।

दूसरे दिन कुमार अकेला ही कनकपुर की ओर चला। गर्मी के कारण वह एक सरोवर मे स्नानहेतु प्रविष्ट हुआ। उसमे घुसते ही उसे ऐसा लगा कि कोई नीचे की ओर खीच रहा है। नीचे वह जमीन पर पहुँच गया। वहाँ उसने एक सुन्दर फुलवारी देखी। उसमे एक महल बना था। वह महल की ओर बढने लगा तो उसे सुन्दरियाँ दृष्टिगोचर हुईं। उनमे से एक सुन्दरी मणिजटित सिंहासन पर बैठी थी।

कुमार के पहुँचते ही सुन्दरी ने कुमार का स्वागत किया और उसे सिंहासन पर बिठाया। उसे सुस्वादु भोजन कराया। अपने महल मे ले जाकर उसे बताया कि वह जादूगर महिपाल की बेटी है। उसने यह भी बताया कि वह बहुत दिनो से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। कुमार ने ससिकला के प्रति अपना अनुराग बताया और जाने की अनुमति चाही। सुन्दरी ने कुमार से एक दिन रुक जाने को कहा। वह रुक गया। दूसरे दिन जब वह जाने लगा तो उसने जादू से भस्म करने की धमकी दी। अत वह नही गया, वही रहने लगा। महिपाल-सुता ने काफी दिन बाद

कुमार को एक गुटिका दो और कहा कि मै प्रतिदिन रात को लौटती हूँ। आप अकेले रहते हैं अतः इस गुटिका को लेकर कही भी घूम सकते हैं। कुमार एक दिन वहाँ से निकल घरमपुर नगर पहुँचा। इस नगर मे उसकी भेंट वहाँ की राजकुमारी सूरजप्रभा से हो गई। वह उसे अपने महल मे ले गई। दूसरे दिन उससे छुटकारा पा वह कनकपुर की ओर चला। १४ दिन वाद वह कनकपुर पहुँचा। वहाँ उसे पता चला कि ससिकला को कुछ लोग मन्त्रवल से उठा ले गये हैं। कुमार ने उसे खोजने का सफल प्रयास किया। इस प्रकार दोनो मिले और दोनो का विवाह हुआ। कुमार घर को लौटा तो उसने रास्ते मे सूरजप्रभा को भी साथ ले लिया। मार्ग मे उसकी भेंट मत्रीसुत से हो गई। मत्रीसुत दोनो राजकुमारियो को पाने का षड्यन्त्र रचने लगा। एक वार दोनो मित्र घूमने निकले तो एक मृत वन्दर मिला। कुमार ने अपना मन्त्रवल दिखाने के लिये वन्दर के शरीर मे प्रवेश किया। मत्रीसुत ने धोखा किया। वह कुमार के शरीर मे प्रविष्ट हो गया और अपने शरीर को काट डाला। कुमार के वेश मे राजकुमारियो के पास गया। परन्तु राजकुमारियो को शक हो गया। इधर उस वुद्धिमान् वन्दर की चर्चा सव जगह हो रही थी। सूरजप्रभा उस वन्दर के पास गई तो वन्दर (कुमार) ने उसे पहचाना। दूसरे दिन सूरजप्रभा एक मरा तोता ले गई और वन्दर के प्राण तोते मे लेकर घर आ गई। तोते ने मत्रीसुत को अपना परिचय दिया। वह घवडाया। सूरजप्रभा ने मन्त्रवल से मत्रीसुत के प्राण निकाल दिये और तोते के प्राण उसमे डाल दिये।

कुमार दोनो रानियो को साथ ले घर लौटा। रास्ते मे महिपाल-सुता का घर मिला। महिपाल ने अपनी लडकी का अपमान करने के कारण राजकुमार से युद्ध किया। महिपाल हार गया। यही चन्द्रप्रभा द्वारा भेजा हुआ उसे एक तोता मिला। उसने चन्द्रप्रभा के विरह की दशा का वर्णन किया। कुमार जहाज पर चढकर घर वापिस आ रहा था कि समुद्र मे भयकर तूफान आ गया और जहाज टूट गया। कुमार की चीत्कार पर सिन्धुपुरुष ने प्रकट होकर उसे सान्त्वना दी और उसकी दोनो रानियो को यक्षिणी की सहायता से खोजकर कुमार को सौंप दिया। इस प्रकार कुमार अपनी पत्नियो के साथ घर पहुँचा।

**रुक्मिणीपरिणय**[1]—इसके रचयिता श्री रघुराज सिंह जूदेव है। रचना-

---

१ स०—प्र०—गगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर, कल्याण-मुवई, स० १९८१

काल स० १९०७ है। काव्य की दृष्टि से यह कोई महत्त्वपूर्ण कृति नही है। यह श्रीमद्‌भागवत के आख्यानो के आधार पर लिखी गई रचना प्रतीत होती है। प्रथम खड मे रुक्मिणीपरिणय का सक्षिप्त परिचय मात्र है। इसके बाद जरासधवध, कालिवध आदि की कथा कई अध्यायो मे दी गई है। सातवे अध्याय मे कृष्ण और बलराम के विवाह का नारद-उग्रसेन द्वारा वार्तालाप कराया गया है। इसके बाद नारद रुक्मिणी के पिता भीमसेन के पास जाते है और उनसे श्रीकृष्ण के रूप-गुणो की प्रशसा करते हैं। यह कथा विस्तार से कही गई है जिससे रुक्मिणी के हृदय मे कृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है। नारद इसी प्रकार द्वारिकापुरी पहुँचकर कृष्ण से रुक्मिणी के गुणो की चर्चा करते है जिसे सुनकर कृष्ण के हृदय मे रुक्मिणी को व्याह लाने की इच्छा होती है। कृष्ण उसे विवाहने जाते हैं। सभी समस्याओ पर विजय पा वे रुक्मिणी का परिणय करके ले आते हैं। रुक्मिणी की अनेक सखियो के साथ रास का भी वर्णन किया गया है।

इस प्रकार हिन्दू प्रेमाख्यानको की एक लम्बी परम्परा रही है। मध्ययुगीन हिन्दू प्रेमाख्यानको की परम्परा ( स० १०००–१९१२ ) मे मृगेन्द्र के प्रेम-पयोनिधि को अन्तिम कृति माना जा सकता है।[1]

## सूफी प्रेमाख्यानक

सूफी प्रेमाख्यानको के अन्तर्गत निम्नलिखित रचनाएँ परिगणित की जा सकती है

| रचना | रचयिता | रचनाकाल |
|---|---|---|
| चन्दायन | दाऊद दलमई | १३७९ ई० |
| मृगावती | कुतुबन | १५०३–४ ई० |
| पद्मावती | जायसी | १५४० ई० |
| मधुमालती | मझन | १५४५ ,, |
| रतनावती | जान | १६३४ ,, |
| रतनमजरी | ,, | |
| कामलता | ,, | १६२१ ,, |
| मधुकरमालती | ,, | १६३४ ,, |
| कथा मोहनी | ,, | |

---

१ डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० २१

| रचना | रचयिता | रचनाकाल |
|---|---|---|
| ग्रन्थ लैलै-मजनूँ | जान | |
| रूपमजरी | ,, | |
| कथा कलन्दर तथा तमीम-अमारी आदि | ,, | १६४५ ई० |
| ज्ञानदीप | शेख नवी कृत | १६१९ ई० |
| इन्द्रावती | नूरमुहम्मद | ११७८ हि० सन् |
| पुहुपावती | हुसेन अली | ११३८ हि० सन् |
| प्रेमचिन्गारी | नजफ अली | १८०९ ई० |
| भाषा प्रेमरस | शेख रहीम | १९१५ ई० |
| कथा कामरूप | कवि अज्ञात | |
| चित्रावली | उसमान | १६१३ ई० |
| पुहुप-वरिषा | जान | १६२१ ई० |
| छीता | ,, | १६३६ ई० |
| कनकावती | ,, | १६१८ ई० |
| कवलावती | ,, | |
| नलदमयन्ती | ,, | १०७२ हि० सन् |
| कलावती | ,, | १०८३ ,, |
| कथा विजरखाँ साहिजादे वा देवल दे की चौपाई | ,, | |

चन्दायन[1]—चन्दायन मौलाना दाऊद की रचना है। इसका रचनाकाल सन् १३७९ ई० आँका गया है। सूफी प्रेमाख्यानको मे सर्वाधिक प्राचीन कृति चन्दायन ही है। इसे प्रकाश मे लाने का पूरा-पूरा श्रेय डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त को है। उन्होने चन्दायन के अनुशीलन मे चन्दायन पर हुए अद्यतन कार्यों का ब्योरा सप्रमाण प्रस्तुत किया है[2] जो अत्यन्त महत्त्व का है। उन्हे इस बात की टीस थी कि इतने समय बाद तक यह कृति प्रकाश मे क्यो नही आई। वे लिखते है—'१९२८ ई० से लेकर १९५६ ई० तक

१ डा० परमेश्वरीलाल गुप्त द्वारा सपादित, हिन्दी ग्रथ रत्नाकर, बबई स प्रकाशित।

२ विस्तार के लिए देखिये—अनुशीलन, वही, पृ० १-१८

सूफी साहित्य और प्रेमाख्यानक काव्यो को लेकर शोध का ढिंढोरा तो खूब पिटा, पर हिन्दी साहित्य के विद्वानो और अनुसन्धित्सुओ की जानकारी इस बात तक ही सीमित रही कि दाऊद ने चन्दायन नामक कोई प्रेमाख्यानक काव्य लिखा था। उसकी एक प्रति उन्हे ज्ञात भी हुई तो उसकी ओर समुचित ध्यान ही नही दिया गया। लोग रामकुमार वर्मा की धुरी पर चक्कर काटते रहे।'[1]

चन्दायन मे अपने परवर्ती काव्यो मे पाई जानेवाली सभी विशेषताएँ मिलती है। इसकी अपनी विशेपता यह है कि कथा का प्रारम्भ नायिका के जन्म से होता है। दाऊद ने प्रेमाख्यानको मे पाये जानेवाले कथा-अभिप्रायो का भी प्रयोग किया है। इसकी रचना लोककथा के आधार पर ही हुई। दाऊद के समय मे लोरक-चदा की लोक-कथा काफी प्रचलित थी। रचना सभी दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। कथा इस प्रकार है

ईश्वर-मुहम्मदादि की स्तुति के उपरान्त कवि ने गोवर महर नामक स्थान के सरोवर, मन्दिर, खाई, दुर्ग, नगर निवासियो, सैनिको, बाजार-हाट, राजदरबार और महल आदि का वर्णन किया है। राय मेहर के ८४ रानियाँ थी जिनमे फूलारानी नामक महारानी थी।

राय मेहर के घर चाँद नामक कन्या उत्पन्न हुई। खूब खुशियाँ मनाई गई। जब तक चाँद १२ महीने की ही हो पाई थी कि द्वारसमुद्र, मारवाड, गुजरात, तिरहुत, अवध और बदायूँ तक उसकी प्रशसा फैल गई। जब चाँद ४ वर्ष की हुई तो जीत के अनुरोध पर उसके बेटे बावन से सहदेव ने चाँद का विवाह रचा दिया। विवाह की १२ वर्ष की लम्बी अवधि बीत गई। चाँद का यौवन फूट पडा। परन्तु उसका पति उसकी सेज पर नही आया। वह विलाप करने लगी। उसकी ननद ने विलाप सुनकर अपनी माँ से कहा। चाँद की सास से उसकी कहासुनी हो गई और चाँद अपने पिता के यहाँ से आदमी बुलाकर पीहर चली गई। वहाँ उसे स्नानादि कराके उसका शृगार किया गया। चाँद की सखियो ने उससे पति-प्रसग की बाते पूछी। इस पर उसने अपनी कामव्यथा कह सुनाई।

एक बार गोवर मे वज्रयानी साधु आया। वह गाता हुआ नगर मे भिक्षाटन कर रहा था। चाँद ने अपने झरोखे से उसे देखा। साधु की दृष्टि

---

१ वही, पृ० ७

झरोखे मे खड़ी चाँद पर पडी तो वह देखते ही मूच्छित हो गया। लोगो के पूछने पर उसने चाँद से अपनी आसक्ति की बात बताई। परन्तु सहदेवराय के भय से वह नगर छोडकर चला गया। वाजिर एक माह इधर-उधर घूमने के बाद एक नगर मे पहुंचा। वहाँ वह चाँद के विरह के गीत गा रहा था, जिन्हे सुनकर वहाँ के राजा रूपचन्द ने उसे बुलाया। रूपचन्द के पूछने पर वाजिर ने अपना स्थान उज्जैन बताया। उसने चाँद के दर्शन और उसके वियोग की बात भी राजा को बताई। राजा ने जिज्ञासावश चाँद के विषय मे विस्तार से जानना चाहा। तब वाजिर ने चाँद की माँग, केश, ललाट, भौह, नेत्र, नासिका आदि प्रत्येक अग के सौन्दर्य का सविस्तार वर्णन किया।

चाँद के रूपसौन्दर्य का वर्णन सुनकर रूपचन्द ने सेनापति को सेना तैयारकर गोवर नगर की ओर कूच कर देने को कहा। कवि ने सेना के हाथी-घोड़ो आदि का वर्णन करने के बाद लिखा है कि राजा को मार्ग मे अपशकुन हुए, परन्तु वह गोवर नगर को घेरने तक आगे बढता रहा। उसने जाकर नगर घेर लिया। रूपचन्द की सेना के आ जाने से नगर मे खलबली मच गई। सहदेव ने अपने दूत भेजकर आक्रमण का कारण पुछवाया। दूतो ने आकर बताया कि वह चाँद से विवाह करना चाहता है। सहदेव ने अपने मन्त्रियो के परामर्श से युद्ध ठान दिया क्योकि उसके पास भी अश्व, अश्वारोही, हाथी आदि कम नही थे। दूसरे दिन युद्धारम्भ हो गया। युद्ध की भयानकता देखकर भाट ने सहदेव को सलाह दी कि सहायता के लिए लोरक को बुला लीजिए क्योकि रूपचन्द के योद्धा शक्तिशाली हैं। राजा की आज्ञा से भाट ही लोरक को लेने गया। लोरक के आते समय उसकी पत्नी मैना उसके सामने खडी हो गयी और युद्ध मे जाने से रोकने लगी। उसे आश्वासन दे लोरक अजयी से युद्ध-कौशल की शिक्षा ले महर के पास पहुचा। महर ने उसे तीन पान के बीडे दिये और कहा कि विजयी होने पर वह उसे तीन सुसज्जित घोडे देगा।

लोरक ने अपनी सेना को लेकर युद्ध किया। युद्ध मे उसकी विजय हुई। युद्ध की जीत पर महर ने लोरक को पान का बीडा दिया और हाथी पर बैठाकर उसका जुलूस निकाला। चाँद अपनी दासी बिरस्पत के साथ धौरहर के ऊपर जुलूस देखने गई। वह लोरक को देखते ही विकल होकर मूच्छित हो गई। बिरस्पत ने चाँद के मन की बात पूरी कर देने को कहा।

दूसरे दिन चाँद ने विरस्पत से कहा कि जिसे मैंने कल देखा था उसे मेरे घर बुलाओ या मुझे उसके घर ले चलो। विरस्पत ने लोरक को नागरिक-ज्योनार मे बुलाने को कहा। चाँद ने अपनी मनोती को बात गढकर पिता से ज्योनार कराई। ज्योनार के व्यजनो, पशु-पक्षियो के शिकार आदि का वर्णन किया गया है। चाँद ज्योनार के समय धौरहर पर खडी देख रही थी। लोरक ने उसे देखा और खाना-पीना भूल गया।

वह अपने घर जाकर चारपाई पर पड गया। उसकी माँ विलाप करने लगी। सयाने, वैद्यादि बुलाये गये। पर उसे कोई रोग नही निकला। वह कामविद्ध था। विरस्पत ने लोरक की माँ का विलाप सुना तो वह उसके घर पहुँची और रोने का कारण पूछा। कारण जानकर वह लोरक के पास गई। उसने लोरक से कहा—मै चाँद की धाय हूँ। बुलाने पर आई हूँ। आँख खोलकर अपनी बात कहो। चाँद के नाम से लोरक उठकर बैठ गया। उसने बात कहने मे लज्जा का अनुभव किया। इससे उसकी माँ वहाँ से हट गई। लोरक ने विरस्पत से चाँद को मिलाने की विनय की। उसने कहा—जोगी-वेश मे भभूत लगाकर मदिर मे बैठना, वही वह आयेगी तब दर्शन कर लेना। वह उसकी माँ को समझाकर चली गई।

लोरक जोगी बनकर १ वर्ष तक मदिर की सेवा मे लगा रहा और प्रेम की कामना करता रहा। दीवाली के अवसर पर चाँद सखियो के साथ मदिर आई। रास्ते मे उसका हार टूट गया। सखियाँ उसके मोतियो को इकट्ठा करने लगी। विरस्पत ने चाँद से मदिर मे चलकर विश्राम करने को कहा। चाँद और विरस्पत मदिर गईं। विरस्पत ने मदिर मे झाँक-कर कहा कि आजकल मदिर मे एक भगवत आये हुए है, जाकर दर्शन कर लो, सारे पाप भाग जायेगे। चाँद योगी को देखते ही बाहर निकल आई और योगी की स्थिति बताई। सखियाँ हार लेकर आ गईं। वह हार पहन घर चली आई। चेत आने पर लोरक विलाप करने लगा। उधर चाँद ने विरस्पत से लोरक से भेंट कराने को कहा। विरस्पत ने मदिरवाले योगी लोरक की बात बताई तो चाँद को उससे बात न करने का दुःख हुआ। विरस्पत लोरक से योगीवेश त्यागकर घर जाने को कह आई। उसने वैसा ही किया। अब दोनों एक-दूसरे से मिलने को छटपटाते थे परन्तु कोई उपाय नही था।

चाद ने पुन विरस्पत को लोरक के पास भेजा। विरस्पत ने चाँद के धौरहर का मार्ग लोरक को दिखा दिया। लोरक ने एक पाट और

उसका रस्सा खरीदा। उसमे बीच-बीच मे गाँठ लगाकर ऊपर एक अकुरी बाँध ली। रात मे महल की ओर चला। भादो की अँधेरी रात मे उसे कुछ नही दिखाई पड रहा था। बिजली चमकी तो चाँद का दरवाजा उसे दिखा। चाँद ने लोरक को देखा। वह प्रसन्न हुई। लोरक ऊपर रस्सा फेंकता, चाँद उसे मजाक करने को बार-बार नीचे डाल देती। बाद मे लोरक ऊपर पहुँचा। उसके साथ रातभर केलि की। प्रात चाँद ने देर हो जाने के कारण उसे चारपाई के नीचे छिपा दिया। शाम को अँधेरा होते ही उसे पुन मिलने का वायदा करके विदा किया। लोरक घर पहुँचा तो मैना का सन्देह दूर करने को उसने कहा—राजा का रास देखने मे ही रात बीत गई।

इधर महर और महरि को ज्ञात हो गया कि रात्रि मे महल मे कोई पुरुष आया था। भृत्यो द्वारा सारे नगर मे बात फैल गई। मैना को भी पता लगा। वह लोरक से क्रुद्ध हो गई। पण्डित ने चाँद को बताया कि वह असाढी के पर्व पर होम-जापकर सोमनाथ की पूजा करे तो मनोकामना पूरी होगी। उसने वैसा ही किया और लोरक को पतिरूप मे प्राप्त करने की मनौती मानी। मैना भी दर्शन करने गई। मैना की उदासी का कारण चाँद ने हँसकर पूछा। इस पर दोनो मे मारपीट शुरू हो गई। लोरक ने आकर बीच-बचाव किया। मैना ने घर आकर चाँद की शिकायत महरि के पास भेजी जिससे वह लज्जित हुई।

चाँद की सब बात खुल जाने के कारण वह मरने की सोच रही थी। उसने विरस्पत द्वारा लोरक के पास सदेश भेजा कि वह रात में उसे भगाकर ले जाय, नही तो वह सुबह कटार मारकर मर जायेगी। लोरक समझाने से भगाने को तैयार हो गया। रात्रि मे दोनो आभरण, मानिक, मोती के साथ भागे। लोरक और चाँद ने अपने दोनो हाथो मे अस्त्र लिये। दोनो काले कपडे पहनकर चल दिये। गोवर से दस मील दूर लोरक का भाई कँवरू रहता था अत वे वहाँ से कतराकर चलने लगे। लोरक के भाई ने उसे देख लिया और उसके पीछे भागा। लेकिन चाँद को पीछे-पीछे आते देख वह ठिठक गया। उसने उन दोनो की भर्त्सना की।

वे तेजी से भागते हुए रात होने पर गगा के किनारे पेड के नीचे सो गये। सुवह लोरक छिपा रहा। चाँद किनारे पर खडी हो नौका की प्रतीक्षा करने लगी। नाविक आया और उसे नौका मे बैठाकर ले चला।

हूँ, नगर देखने आया हू। यदि तुम दूध लेकर बाग मे आओ तो लोरक मिलेगा। सुबह होते ही मैना अपनी दस सहेलियो के साथ दूध-दही बेचने चली। लोरक ने चॉद को पहले ही मैना को इशारे से बता दिया और उसे चौगुने पैसे, सोना आदि से दही खरीदने को कहा। चाँद ने वैसा ही किया। चॉद ने सभी अहीरिनो का सिंदूर भरा। मैना ने ऐसा करने से रोक दिया। उसने अपने पति का हरदी मे चले जाने का दुख प्रकट किया। लोरक ने मैना से छेडछाड की तो वह बिगड गई और घर चली आई।

दूसरे दिन पुनः सब दही बेचने गईं। चॉद ने मैना को अन्दर बुलाया और लोरक की करनी पूछने लगी। मैना ने सब पहली कहानी बता दी और यह भी कहा कि कही चाँद मिले तो उसका मुँह काला कर दूँ। वे दोनो झगड गईं। बीच मे लोरक आकर प्रकट हो गया। मैना प्रसन्न हो उठी।

नगर मे ऐसा शोर हो गया कि मैना आगन्तुक के साथ रहती है। इस पर अजयी उससे लडने आया। उसने खाँडा चलाया जो बीच मे ही टूट गया। लोरक को पहचान वह गले लिपट गया। लोरक घर आया, खोलिन के पैर छुए और उसने दोनो बहुओ का स्वागत किया। लोरक ने अपनी माँ से पूछा कि पीछे कैसे रही। माँ ने बताया—पीछे बावन आया था और मैना को गाली दी। मौकर भी अपनी सेना लेकर आया। कवरू ने उसका सामना किया। परन्तु अकेला होने से मारा गया। माँ ने कहा—तुम्हारे पीछे रात-दिन जागती-रोती रही हूँ।

**मृगावती**[1]—इस कृति के रचयिता कुतुवन है। मृगावती नाम से कई रचनाएँ प्राप्त है जिनका उल्लेख मेघराज प्रधानकृत मृगावती का विवरण प्रस्तुत करते समय किया जा चुका है। सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य मे जब तक चन्दायन प्रकाश मे नही आई थी तब तक यही प्राचीन कृति मानी जाती थी। मृगावती की कथा संस्कृत, जैन-बौद्ध ग्रन्थो मे पाई जाती थी। कुतुवन ने दाऊद की परम्परा का ही निर्वाह किया। मृगावती मे अन्तर्कथाएँ भी आई हैं जो उसके परवर्ती प्रेमाख्यानको मे भी रूढ हुई हैं। इसमे पुरुष-नारी दोनों पात्रो की बहुलता है। कथा इस प्रकार है

---

१ डा० शिवगोपाल मिश्र द्वारा सम्पादित, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित

अतुल वैभव-सम्पन्न तथा धर्म मे रुचि रखने वाला एक राजा पुत्रोत्पत्ति न होने के कारण अत्यन्त दु खी था। भगवान् की मनसा, वाचा, कर्मणा पूजा करने पर राजा को पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। पण्डितो ने कुमार को तीव्र भाग्यशाली बताया। परन्तु आगे चलकर इसे स्त्री-वियोग होगा। राजा ने खूब दान दिया। उसके लालन-पालन की भरपूर व्यवस्था की। १० वर्ष की अवस्था तक आते ही वह वडे-वडे ग्रन्थ समझने लगा। शिकार भी खेलने लगा।

एक दिन राजकुमार आखेट करने गया। वहाँ वह एक सप्तरंगी मृगी को देखकर मोहित हो गया। मृगी पास के एक मानसरोवर मे कूद गई। राजकुँवर ने अपना घोडा वृक्ष मे बाँध, वस्त्र उतारकर सरोवर मे मृगी को खोजा। पता नही लगने पर वृक्ष के नीचे आकर उसकी याद मे विलाप करने लगा। उसके साथी उसे खोजते-खोजते उस वृक्ष के नीचे आये। राजकुमार से उसके रुदन का कारण जानकर साथियो ने भी मृगी को खोजा परन्तु असफल रहे। राजकुमार की चिट्ठी लेकर वे घर लौट गये। राजकुमार वही रहा।

दो प्रहर के भीतर ही राजा ससैन्य वहाँ पहुँच गया। राजकुमार ने राजा से प्रार्थना की कि उसके लिए वही एक महल वनवा दिया जाय। राजा ने वैसा ही किया। चित्रशाला मे अनेक प्रकार के चित्र निर्मित किये गये। कुमार इसी महल मे विरह मे पडा रहता। दैवात् उसकी धाय वहाँ पहुँची। सारा वृत्तान्त जानकर कुमार को वताया कि प्रत्येक एकादशी को मृगावती यहाँ स्नान करने आती है। यदि उसी समय उमके वस्त्र चुरा ले तो वह मदा उसी के पास रहेगी।

राजकुमार ने धाय की वात मान ली। मृगावती भी राजकुमार पर आसक्त थी। वह एकादशी के दिन अपनी सखियो के साथ स्नानार्थ वहाँ पहुँची। राजकुमार धाय के वताये मन्त्रानुसार वहाँ पहले से वैठा ही था। जव सभी जल मे उतर गईं तो राजकुमार ने चीर चुरा लिये। सखियाँ जो पहले से ही आशंकित थी मृगावती को छोड पक्षी वनकर उड गईं। मृगावती मानसरोवर के अन्दर वस्त्ररहित रह गई।

मृगावती की अनुनय पर भी राजकुमार ने वस्त्र नही दिये। उसने एक दूसरा वस्त्र लाकर दिया। फिर उससे अपने विरह की दशा कह सुनाई। भोग-विलास से पहले ही मृगावती ने कुमार से उसकी सखियो

को आने देने की और कुमार ने उससे जीवनभर प्रेम मे अनुरक्त रहने की प्रतिज्ञाएं ली।

राजकुमार ने पिता को इसकी सूचना दी। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक दोनो का विवाह सम्पन्न कर दिया। वे सानन्द रहने लगे। कुछ समय बाद मृगावती के पास धाय को छोडकर राजकुमार पिता से मिलने गया। मृगावती ने चोर प्राप्त कर लिए और धाय से यह कहकर उड गई—'मेरे पिता का नाम रूपमुरारि और स्थान कचनपुर है। राजकुमार ने मुझे बडी सरलता से पा लिया, इसलिए मेरे महत्त्व को नही जानता। मै जा रही हूँ, किन्तु वह मुझसे अवश्य मिले।'

राजकुमार वापिस आया तो धाय को विलखते देखा। वह मृगावती को न देख मूर्च्छित हो गिर पडा। फिर योगी का वेश धारण करके खोजने चल पडा। मार्ग मे एक राजा मिला जिसने उसके योग का कारण पूछा। उसने सारी कथा कह सुनाई। उसे दया का सचार हुआ। अत जगम को बुलाकर कचननगर का मार्ग दिखाने को उसके साथ भेज दिया। उसने समुद्र के किनारे लाकर खडा कर दिया और कहा—यही घाट है। एक नौका पर योगी चढकर चला।

समद्र मे तेज लहर से नाव लपेट मे आ गई। उसी समय एक भयकर सर्प दिखाई पडा। राजा ने प्राणरक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। उसी समय दूसरा सर्प भी आ गया और दोनो आपस मे लड गये। नाव भी किसी प्रकार किनारे लगी। फिर उसने एक वाटिका मे प्रवेश किया जहाँ उसे एक अपूर्व भवन दिखाई पडा। भवन के अन्दर एक राघववशी राजा देवराय की कन्या रूपमनि थी जिसे एक वर्ष पूर्व राक्षस उठा लाया था।

प्रथम वह उसकी सेज पर जाना नही चाहता था परन्तु उसके अनुरोध पर वह उसकी सेज पर बैठ गया। तभी सात सिर और चौदह भुजाओ वाला राक्षस दिखाई पडा। रूपमनि भयभीत हुई परन्तु राजकुमार ने अपने चक्र से उम राक्षस का वध कर दिया।

रूपमनि उसकी इस वीरता पर मुग्ध हो गई। राजकुमार ने उसे अपना पता बताया। योगी होने का कारण भी बताया। उसी समय रूपमनि का पिता अपनी पुत्री की खोज मे आ पहुँचा। राजकुमार की शूरता देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। राजकुमार से अपनी कन्या से

विवाह करने का प्रस्ताव रखा और आधा राज्य देने को कहा। उसने आनाकानी की, फिर मानना पडा। दोनो का विवाह हुआ। राजकुमार रूपमनि की सेज पर कभी नही सोया। वह एक दिन अवसर पाकर मृगावती की खोज मे निकल गया। काफी कठिनाई के बाद उसे एक गडरिया मिला। गडरिये ने राजकुमार को स्थान तक न पहुँचाकर अपने कमरे मे वन्द कर लिया। वहाँ और भी अनेक वदी थे। वह प्रतिदिन एक आदमी को भूनता था और खा जाता था। एक दिन युक्ति से गडरिये को वकरियो के साथ कुमार वाहर निकल आया।

भागकर जा रहा था कि उसे एक भवन दिखाई पडा जहाँ वह छिप गया। चार पक्षी आये जो स्त्रीरूप मे वदल गये। उन्होने शृगी वजाई तो चार मोर आये जो मनुष्य वन गये। वहाँ से वह भागा। मृगावती की खोज करने लगा। एक दिन कुमार एक वृक्ष के नीचे वैठा था। उस पर वैठे एक पक्षी ने कहा—'एक कुवर मृगावती से अनुरक्त है। उसके लिए उसने इतने कष्ट सहे है किन्तु अव दोनो के मिलन का समय निकट है।' इतना कहकर पक्षी उड गया। आगे चलकर वह कचनपुर नगर मे पहुँच गया। उसने किंगरी वजाना प्रारभ किया, सभी लोग दौडे आये। रानी ने इस योगी को वुला भेजा।

मृगावती ने उसे तुरन्त पहचान लिया। फिर भी सप्रभुता के मद मे वह उसका परिचय पूछती है। राजकुवर के सही-सही वतला देने पर वह तिलमिला उठती है, फिर उसे वस्त्र पहनाकर मदिर ले जाती है और राजा वना देती है। एक दिन मृगावती वाहर गई तो राजकुवर से कहती गई कि इस कोठरी को मत खोलना। उसने मना करने पर भी कुतूहलवश उसे खोल दिया। उसमे एक वन्दी था जो मुक्त होने पर राजकुमार को आकाश मे लेकर उड गया और उसे मार डालने को कहा।

मृगावती वापिस आई तो वहाँ राजकुमार नही था। सब जगह खोजा गया। परन्तु राजकुमार उस मायावी का अन्त करके स्वय ही लौटा।

उधर रूपमनि के दिन विरह मे वीत रहे थे। एक टाडा से उसने रो-रोकर अपनी दशा राजकुमार से कह देने को कहा। दूलभ कचनपुर पहुँचा। राजकुमार उससे मिलने आया। राजकुमार सभी समाचारो से अवगत हुआ। अपने पिता का पत्र मृगावती को सुनाया। राजकुमार ने आधा राजपाट अपने वडे पुत्र को देकर मृगावती और छोटे पुत्र के साथ

चन्द्रगिरि के लिए प्रस्थान किया। रास्ते मे वह रूपमनि से मिला। रूपमनि के पिता ने खूब स्वागत-सत्कार किया। रूपमनि को साथ लेकर वह चल पडा।

राजकुमार को आखेट का शौक था। एक बार एक बहेलिये ने उसे वन मे एक सिह के आने की सूचना दी। राजकुमार जगल मे जाकर सोते सिंह को जगाने लगा। सिह ने जागकर राजकुमार को समाप्त कर दिया। मृगावती और रूपमनि सती हो गईं। नगरवासियो ने कनेराय को सिंहासन पर बैठाया।

**पद्मावती अथवा पदमावत**[1]—पद्मावती हिन्दी-सूफी-साहित्य के प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी की रचना है। रचनाकाल के विषय मे प्राय मतभेद रहा है। यह सन् १५४० ई० की रचना है। हिन्दी के सूफी-साहित्य पर अबतक जितना भी काम हुआ है उसमे से अधिक भाग जायसी को ही मिला है। पद्मावती की 'सर्वप्रथम उल्लेखनीय चर्चा फ्रेंच लेखक गार्सां द तासी ने अपनी पुस्तक **इस्तार दल लितरेत्यूर एन्दूई ए ऐन्दुस्तानी** के द्वितीय भाग मे की थी।'[2] इसका पहला सुसम्पादित सस्करण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रन्थावली' के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कराया। अबतक पद्मावती की टीका-व्याख्याएँ और सुसम्पादित सस्करण कई स्थानो से प्रकाशित हो चुके हैं। डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल ने पदमावत को सजीवनी व्याख्यासहित सम्पादित किया है।[3]

सूफी-साहित्य का महत्त्वपूर्ण प्रेमाख्यान जायसी की इस रचना को कहा जा सकता है। यही कारण है कि सन् १८८१ ई० से लेकर इसके अनेक सस्करण अबतक सपादित होकर प्रकाश मे आये हैं

१ नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से १८८१ ई० मे प्रकाशित
२. स०–प० रामजस मिश्र, चन्द्रसभा प्रेस, काशी, ई० १८८४
३ बगवासी फर्म द्वारा प्रकाशित, ई० १८९६

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 'जायसी-ग्रन्थावली' ना० प्र० सभा से प्रकाशित
२ प० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्यकोश, भाग २, पृ० २९१.
३ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत, साहित्य सदन चिरगाव, झाँसी से प्रकाशित

४ स०—मौलवी अलीहसन, कानपुर से प्रकाशित
५ दि पद्मावति आफ म० मु० जायसी, ई० १९११-१२ मे ग्रियर्सन और सुधाकर द्विवेदी द्वारा सपादित, रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल
६ जायसी ग्रन्थावली, स०—प० रामचन्द्र शुक्ल, प्र० म० ई० १९२४, द्वि० स० ई० १९३५ मे ना० प्र० सभा काशी से प्रकाशित
७ पदमावत पूर्वार्द्ध, स०—लाला भगवानदीन, प्रका०—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, ई० १९२५
८ सक्षिप्त पदमावत, स०—डा० श्यामसुन्दरदास, ई० १९२६
९ पदुमावति, श्री सूर्यकान्त शास्त्री, लाहौर, ई० १९३४
१० पदुमावति, दी लिंग्विस्टिक स्टडी आफ दि सिक्स्टीन्थ सेन्चुरी हिन्दी, डा० लक्ष्मीधर ( केवल १०६ छन्द ), लदन, ई० १९४९
११ जायसी ग्रन्थावली, स०—डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग, ई० १९५१
१२ पदमावत सजीवनी व्याख्यायुक्त, स०—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, चिरगाव, झासी से ई० १९५५ मे प्रकाशित[१]

यह अपनी प्रेम-परम्परा के लिए प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ मे ऋतुवर्णन, समुद्र-वर्णन, प्रकृतिवर्णन, युद्ध-वर्णन, विरह-वर्णन और सुस्वादु-वर्णन आदि विस्तार के साथ वर्णित हैं। इनके अतिरिक्त कथा मे रहस्यवाद एव आध्यात्मिक पक्ष तथा सूफी सिद्धान्तो का भी प्रतिपादन किया गया है। कथा मे शुक, सिहलद्वीप, योगी, वारहमासा, स्वप्नदर्शन आदि अनेको कथानक-रूढियो का प्रयोग खूब किया गया है जिनका परवर्ती प्रेमाख्यान साहित्य पर पूर्ण प्रभाव पडा—इसमे सन्देह नही। पद्मावती नाम की वहुत सी रानियो का उल्लेख साहित्य मे मिलता है। परन्तु जिस पद्मावती का वर्णन जायसी ने किया है वह अद्वितीय है। कथासार इस प्रकार है .

सिहलद्वीप के राजा गदर्भसेन और चम्पावती की कन्या पद्मावती परमसुन्दरी थी। उसके योग्य वर नही मिल रहा था। पद्मावती के पास एक हीरामन तोता था जो अत्यधिक वाक्पटु और पण्डित था। एक दिन

---

१ जायसीकृत चित्ररेखा, स०—डा० शिवसहाय पाठक के प्राक्कथन से उद्धृत, पृ० ४९-५०

तोता पद्मावती के वर के विषय मे वार्तालाप कर रहा था तो राजा ने इसे सुन लिया। राजा ने क्रुद्ध हो उसे मरवाने को कहा। इस बार वह बचा लिया गया। परन्तु भविष्य के भय की आशका से वह उड गया। उडकर जगल मे पहुँचा, वहाँ किसी बहेलिये ने उसे पकड लिया। तोते को बहेलिये ने ब्राह्मण के हाथो बेच दिया। ब्राह्मण ने उसे चित्तौर के राजा रतनसेन को एक लाख रुपये मे बेच दिया। रतनसेन का तोते से बहुत प्रेम बढ गया। एक दिन राजा रतनसेन आखेट मे गया हुआ था। उसकी रानी नागमती ने तोते से सगर्व पूछा—'तोते सच-सच कहो, क्या मेरे समान इस ससार मे कोई अन्य सुन्दरी है ?' हीरामन ने सिंहलद्वीप की राजकुमारी की प्रशसा कर दी। अत रानी क्रोधित हो गई और उसे अपनी चेरी से मरवाने को कहा। चेरी रानी के कहने से उसे ले गई परन्तु राजा के भय से मारा नही, छिपाकर रख लिया। राजा ने आखेट से लौटने पर तोते के लिए पूछा। राजा को क्रोधित होते देख चेरी ने उनके सामने तोता रख दिया।

राजा ने हीरामन से सारी बात पूछ ली। हीरामन से पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर राजा मूर्च्छित हो गया। हीरामन के बहुत समझाने पर भी राजा को धैर्य नही हुआ और वह सिंहलद्वीप जाने को उद्यत हुआ। हीरामन के कहने पर राजा ने योगी का वेश बनाया। राजा के साथ मे १६ सहस्र राजकुमार भी यात्रा पर चले। सबका पथप्रदर्शन हीरामन तोता कर रहा था।

रतनसेन मार्ग की आपदाओ को झेलता हुआ कलिंग देश पहुँचा। कलिंग से जहाजो मे बैठकर सिंहलद्वीप की ओर सोलह सहस्र योगी राजकुमारो के साथ रतनसेन चल पडा। सात समुद्रो को पार करके वह सिंहलद्वीप पहुँचा। हीरामन तोते ने सभी को शिवमदिर मे ठहरा दिया। रतनसेन से उसने कहा कि वसन्तपञ्चमी के दिन पद्मावती यहाँ पूजन करने आती है अत तबतक यही ठहरना होगा। हीरामन पद्मावती के पास चला गया।

हीरामन ने पद्मावती से रतनसेन के विषय मे सब कुछ बताया। वह उसके लिए विकल हो गई। वसन्तपञ्चमी को वह मदिर गई और ...न को देखा। रतनसेन पद्मावती को दे... ...ी मूर्च्छि... ह मूर्च्छित रतनसेन के पास गई और चन्द ... ...के सीन...

लिखकर चली आई कि तूने अभी भिक्षा के योग्य योग नही सीखा है, जब समय आया तो तू सो गया।

रत्नसेन को जब चेत हुआ तो वह जल मरने को उद्यत हुआ। परन्तु उसके प्रेम को सच्चा जानकर शिव-पार्वती ने साक्षात् उपस्थित होकर उसे आश्वस्त किया और एक सिद्धि-गुटिका प्रदान की। इस गुटिका की शक्ति से राजा ने योगियो के साथ गढ मे प्रवेश किया। गधर्वसेन ने रत्नसेन को पकडकर फाँसी पर लटका देने की आज्ञा दी। एक योगी को आपत्ति मे देख पार्वती और शिव भाट-दम्पति के रूप मे आये और रत्नसेन राजा को पद्मावती के योग्य वर कहकर गधर्वसेन से कहा कि वह पद्मावती का विवाह इससे कर दे। गधर्वसेन के क्रोधित होने पर योगी भी क्रोधित हो गये। किसी प्रकार गधर्वसेन ने शिव को पहचान लिया और उनके पैरो पर गिरकर क्षमा माँगी। पद्मावती का विवाह रत्नसेन से सम्पन्न हुआ।

इधर सिंहलद्वीप मे रत्नसेन सानन्द रहने लगा। उधर नागमती की वियोग मे दुर्दशा हो रही थी। उसके वियोग से पशु-पक्षी भी व्याकुल थे। एक दिन एक पक्षी ने रानी से उसकी व्यथा सुनी और उसका सदेश लेकर सिंहलद्वीप पहुँचा। पक्षी से चित्तौड और नागमती का दु ख सुनकर रत्नसेन बहुत दु खित हुआ। कुछ समय बाद वह पद्मावती और अपार धनराशि को लेकर चल पडा।

जिन जहाजों से वे लोग आ रहे थे, समुद्र मे तूफान आ जाने के कारण सब छिन्न-भिन्न हो गये। सब सम्पत्ति, मित्रादि समुद्र के गर्भ मे समाहित हो गये। पद्मावती बहकर समुद्र की कन्या लक्ष्मी के पास पहुच गई। लक्ष्मी ने जब पद्मावती की कथा सुनी तो उसने अपने पिता से सभी को खोज लाने की प्रार्थना की। समुद्र ने सबको मिला दिया। वे सभी चित्तौड वापिस आ गये। नागमती पति को पाकर अति प्रसन्न हुई।

राजा रत्नसेन के दरबार मे राघवचेतन नामक एक पडित था। उसने एक बार यक्षिणी की सिद्धि से राजा को गलत तिथि मे द्वितीया बताकर सिद्ध कर दिया। बाद मे भेद खुलने पर राजा ने उसे देश-निकाला दे दिया। उसने पद्मावती को देखा और उस पर मुग्ध हो गया। बाद मे धन पाने की लालसा से उसने अलाउद्दीन के समीप जाकर पद्मावती के रूप की प्रशंसा की।

अलाउद्दीन ने पद्मावती को पाने की इच्छा से एक दूत चित्तौड भेजा। रतनसेन ने साफ मना कर दिया। अलाउद्दीन सेना लेकर आ धमका। आठ वर्ष तक वह गढ को न जीत सका। अन्त मे उसने एक चाल चली। उसने सन्धिपत्र लिखकर गढ मे प्रवेश किया। वहाँ दर्पण मे पद्मावती के रूप को देखकर वह मूच्छित हो गया। पुन राजा जब उसे गढ-द्वार तक छोडने आया तो उसने उसे बन्दी बना लिया। वह राजा को दिल्ली ले गया और जेल मे डाल दिया।

सभी रानियाँ दु खी थी। राजा देवपाल ने अवसर देखकर पद्मावती के पास दूतियो द्वारा घृणित प्रस्ताव भेजा, जिसमे वह असफल रहा। पद्मावती ने गोरा-बादल से मिलकर एक युक्ति सोची। उसने सोलह सौ पालकियो को सजवाकर उनमे राजपूतो को सवार करा दिया। पालकी उठाने वाले भी राजपूत ही थे। वह दिल्ली पहुँची। बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। रानी की प्रार्थना पर उसने राजा रतनसेन के बधन काट दिये। उसे बादल और कुछ वीरो के साथ चितौड भेज दिया गया। उधर गोरा ने वीरता के साथ अलाउद्दीन की सेना का सामना किया। परन्तु सभी मारे गये।

चित्तौड आने पर जब रतनसेन ने देवपाल का घृणित कार्य सुना तो उसने देवपाल पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध मे देवपाल और रतनसेन दोनो ही मारे गये। नागमती और पद्मावती दोनो ही अपने पति के साथ सती हो गईं। तदनन्तर अलाउद्दीन अपनी सेना के साथ चित्तौड पर चढ आया। बादल ने उसका सामना किया परन्तु उसके साथ समस्त राजपूत काम आ गये। स्त्रियो ने भी आत्मदाह कर लिया। अलाउद्दीन ने जब गढ मे प्रवेश किया तो सर्वत्र उसे राख की ढेरियाँ ही दिखाई पडी।

**चित्ररेखा**[1]—पदमावत के रचयिता जायसी की ही यह रचना है। चित्ररेखा भी एक प्रेम-कथा है। विषय की दृष्टि से यह एक छोटी रचना है। प्रारम्भ मे कवि पदमावत की शैली मे ही जगत् के सर्जनहार की स्तुति करता है। इसके बाद मुहम्मद साहब, चार यार, पैगम्बर आदि

---

१ जायसीकृत चित्ररेखा, स०—शिवसहाय पाठक, प्रका०—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, ई० १९५९

का बखान कर अपनी लघुता का प्रदर्शन करता है। इसके बाद कथा चलती है, जो इस प्रकार है

गोमती नदी के तट पर चन्द्रपुर नामक एक रमणीक नगर था। वहाँ का राजा चन्द्रभानु था। नगर के सभी मदिर मुक्ता-माणिको से जडे थे। वहाँ की स्त्रियाँ स्वर्ग की अप्सराओ के सामान थी। राजा की अतीव सुन्दरी ७०० रानियाँ थी। महिषी का नाम रूपरेखा था। उसके गर्भ से एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। ज्योतिषियो ने उसका नाम चित्ररेखा रखा और उसे चन्द्रमा के समान, पर निष्कलक बताया। रूप, गुण और शील मे उसके समान अन्य कोई भी नही होगा, यह कन्नौज की रानी होगी—आदि अनेक भविष्यवाणियाँ की गईं। धीरे-धीरे चाँद की कला के समान वह बढती गई। दसवें वर्ष के आते-आते उसका बदन पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा प्रकाशित हुआ। उसके केश भ्रमर, सर्प और शेषनाग जैसे काले हो गये। उस गौरागी की ज्योति शरद् की पूर्णिमा जैसी थी। नेत्र खजन के समान थे। भौहे धनुष और बरौनी बाणो के समान तथा पलके तलवार के समान हो गई थी।

जब वह सयानी हुई तो राजा चन्द्रभानु ने ब्राह्मणो को वर की खोज मे भेजा। ब्राह्मणो ने सैकडो स्थानो पर वर को देखा परन्तु उपयुक्त वर कही नही मिला। अन्त मे वे सिहल के राजा सिघनदेव के यहाँ आये। सिघनदेव के एक लडका था जोकि कुबडा था। ब्राह्मण परेशान हो चुके थे अत उन लोगो ने अच्छा राजपाट देखकर वही 'बरच्छा' दे दिया। उन लोगो ने निश्चय कर लिया कि विवाह के समय दूसरा वर दिखा देगे और विवाह होने के बाद देखा जायेगा। पुरोहितो ने स्वस्तिपाठ के साथ कुबडे को टीका लगा दिया। लग्न निर्धारित किया गया तो ज्योतिषियो ने राहु और चन्द्रमा का योग बताया और कहा कि यह विवाह नही होगा।

इधर कन्नोज नगर के राजा कल्याणसिंह थे। उनके पास अपार सेना, धन-सम्पत्ति थी। परन्तु पुत्र के अभाव से अत्यधिक दुखी थे। उन्होने घोर तप किया, जिसके फलस्वरुप उन्हे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पण्डित और सामुद्रिक ज्योतिषी आदि पधारे। उन्होने कुमार को बत्तीस लक्षणो से युक्त, भाग्यवान् और सब प्रकार से उत्तम बतलाया। कुमार का

नाम प्रीतम कुँवर रखा गया। पण्डितो ने कुँवर को अल्पायु बतलाया। कुमार अपनी अवस्थानुसार बढने लगा। दस वर्ष की अवस्था मे ही कुमार ने अपनी सेना एकत्रित करके शत्रु पर चढाई कर दी। पिता कल्याणसिंह ने पुत्र की योग्यता पर प्रसन्न होकर सब राजपाट का भार पुत्र को ही सौप दिया। राजकुमार की योग्यता से उसके माता-पिता को इतना हर्षातिरेक हुआ कि वे कुँवर का व्याह रचाना भी भूल गये। पण्डितो की बताई गई आयु मे सिर्फ ढाई दिन जब शेष रह गये तब सभी करुण क्रन्दन करने लगे। उन्हे पश्चात्ताप हुआ कि पुत्र का विवाह भी नही किया और वश का सूर्य अस्त होने लगा।

प्रीतम कुँवर ने माता-पिता को समझाया तथा घोडे पर सवार होकर काशी की ओर मुक्ति पाने के लिए प्रस्थान किया। उसके प्रस्थान करते ही कन्नौज नगर उजाड हो गया। माता-पिता की दशा शोचनीय हो गई।

चन्द्रपुर नगर मे चित्ररेखा के विवाह की तैयारी हो रही थी। उस नगर के समीप पहुँचते-पहुँचते धूप के कारण कुँवर ने एक वृक्ष की छाया मे विश्राम किया। काल के भय से उसे नीद आ गई। सिघनदेव उसी राह से अपने कुबडे बेटे का विवाह करने आ रहा था। सयोगवश वह भी उसी छाया मे विश्राम करने के लिए रुका जहाँ कि पहले से ही प्रीतम-सिंह विश्राम कर रहा था। सिघनदेव देखते ही समझ गया कि प्रीतमसिंह किसी राजा का पुत्र है। उसके रूप को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और वही समीप मे बैठकर उसको पखे से हवा करने लगा। इतने मे प्रीतमसिंह चौककर उठ गया। जब वह चलने लगा तो सिघनदेव ने उसके पैर पकड लिये और उसकी जाति कुल तथा उदासी का कारण पूछा। उसकी बाते सुनकर सिघनदेव ने अपनी समस्या बताई और आग्रह किया कि मेरे कुबडे बेटे के स्थान पर तुम आज रात विवाह कर लो, कल काशी चले जाना।

सिघनदेव ने उसे बीडा दिया। प्रीतमसिंह को वर के वेश मे लाया गया। वह अपने मन मे काशी जाने की बात सोच रहा था। राजा चन्द्रभानु के अगवानी करने वाले लोगो ने जब दूल्हे को देखा तो वे सब प्रसन्न हुए। बारात धूम-धाम से चन्द्रभानु के द्वार पर पहुँची। सखियो ने बारात और दूल्हे को देखकर चित्ररेखा से बडी-बडी बाते

कही। विवाह सम्पन्न हुआ। सात खण्ड के धौरहरे मे उन दोनो को सुलाया गया।

प्रीतम कुँवर को अपने स्वर्गारोहण की चिन्ता लगी थी। अत वह दुलहिन की ओर पीठ करके चुपचाप चिन्ता मे निमग्न रहा। कुमारी सो गई। जब पिछला पहर हुआ तब राजकुमार ने उस राजकुमारी के अचल-पट पर लिखा—'मैं कन्नौज के राजा का वेटा हूँ। जो विधाता ने लिख दिया है वह मिटाया नही जा सकता। मेरी आयु मात्र बीस वर्ष की थी। वह पूर्ण हो गई। कल दोपहर के पूर्व मैं काशी म मोक्ष प्राप्त करूँगा। तुम्हारे लिए यह झखना हुआ और मुझे यह दोष लगा।' इतना लिखकर प्रीतम कुँवर घोडे पर सवार हो काशी की ओर चल पडा।

प्रात काल जब सखियाँ चित्ररेखा के समीप गई तो देखा कि वह सोई हुई है। उसके सभी साज-सिंगार अछूते हैं। सखियो ने कुमारी को जगाया और उसके कात के विषय मे पूछा कि वह किधर है? तुम्हारे अग अनालिंगित ही लगते हैं, इसका क्या कारण है? सखियो के वार-वार पूछे जाने पर चित्ररेखा ने कहा—'मुझे कुछ भी ज्ञात नही। मुझे तो उनके दर्शन भी न हुए। केवल 'पीठ' मिली। मैंने तो उनके रूप को भी नही देखा।' अचानक उसकी दृष्टि अपने अचल पर पडी। उसने वह लिखा हुआ पढकर सब बाते जान ली और स्वय भी चिता मे जलने का निश्चय किया। इसके वाद उसने अपना सिधोरा निकाला। सिंदूर लगाकर अचल की गाँठ को हृदय से लगाकर उसने कहा कि यह गाँठ प्रीतम ने लगाई है अत इसी के साथ मैं स्वर्ग जाऊँगी। वही उनसे मिलूँगी।

प्रीतम कुँवर ने काशी पहुँच कर मरने की तैयारी की। उसने दान देना प्रारम्भ किया। दान लेने वालो मे महर्षि व्यास जी भी खडे हो गये। कुवर ने व्यास जी को भी मुट्ठी भर कर कहा—'गुसाई! आप भी लीजिये।' और दान दिया। व्यास जी के मुख से निकल पडा–'चिरजीव होओ'। राजकुमार ने आश्चर्य प्रकट किया। तब व्यास जी ने समझा। फिर भी व्यास जी ने अपना आशीर्वाद ब्रह्मा की ओर से ही वताया। कुमार की आयु की अवधि वढ गई। राजकुवर ने व्यास जी के चरणो मे प्रणाम किया। उसे चित्ररेखा की याद हो आई और वह वहाँ से तुरन्त घोडे पर चढकर चल पडा।

इधर चित्ररेखा चिता मे जलने को उद्यत थी। ठीक उसी समय उसे प्रीतम कुवर दिखाई पडे। उसने लज्जावश अपना सिर ढक लिया और चिता से उतर राजमन्दिर मे चली गई। सखियो ने पुन' उसे सजाया। चारो ओर आनन्द-सा छा गया। जायसी ने 'प्रेम' की प्रसिद्ध गाथा से कथानक को अन्तिम रूप दिया

**कोटिक पोथी पढि मरे, पण्डित भा नहिं कोइ।**
**एकै अच्छर पेम का, पढे सो पण्डित होइ॥**

**मधुमालती**[1]—मधुमालती नाम की कथा एक प्रख्यात कथा रही है। इस नाम की रचना का उल्लेख हमे जायसी के पदमावत, उसमानकृत चित्रावली और बनारसीदास के अर्द्ध-कथानक आदि मे मिलता है। अब यह अलग प्रश्न है कि वह मझनकृत मधुमालती थी अथवा कोई अन्य। अस्तु, मझनकृत मधुमालती जायसी के बाद की रचना है। इसका रचना-काल सन् १५४५ है। जायसी ने जिस मधुमालती का उल्लेख किया है वह कोई दूसरी रचना रही होगी। इसकी कथा पूर्ण काल्पनिक है। अन्य प्रेमाख्यानको की भाँति इसमे भी अन्तरकथाएँ, बारहमासे आदि का वर्णन किया गया है। रचना की कहानी बडी रोचक है। अप्सराओ का मनोहर को ले जाना, योगी का वेश, नौका का टूटना आदि अनेक कथानक-अभिप्रायो का भी प्रयोग मिलता है। कथा इस प्रकार है

कनैगिरिगढ नामक सुन्दर नगर मे सूरजभान राजा राज्य करता था। उसके कोई सन्तान नही थी। इसी बीच कोई तपस्वी वहाँ आया। राजा ने तपस्वी की बारह वर्ष सेवा की। फलत राजा को पुत्रोत्पत्ति हुई। ज्योतिपियो ने लग्न विचारकर उसका नाम मनोहर रखा। इसको चौदह वर्ष ग्यारह महीने का होने पर प्रेम-वियोग होगा और एक वर्ष तक भटकेगा। पाँचवें वर्ष मे उसने विद्या आरम्भ की। बारह वर्ष मे समस्त विद्याओ मे पारगत हुआ। राजकुमार जब बारह वर्ष का हुआ तो राजा ने उसका राजतिलक कर दिया और स्वय तपस्या को चला गया।

---

[1] (क) डा० शिवगोपाल मिश्र द्वारा सम्पादित, हिन्दी प्रचारक, वाराणसी, ई० १९५७
(ख) डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, ई० १९६१

मनोहर को सगीत से बडा प्रेम था। एक दिन कुछ परदेशी नृत्य करने वाले आये। मनोहर बारह बजे तक नृत्य देखता रहा। जब वह गाढ निद्रा मे सो गया तो अप्सराएँ उसके रूप को देखकर उसके अनुकूल कन्या राजकुमारी मधुमालती के पास उसे शय्यासहित महासरनगर उठा ले गईं। मधुमालती शयन कर रही थी। उसी की शय्या के पास इसकी शय्या डाल दोनो के रूप निखरने लगी। बाद मे अप्सराओ के चले जाने पर दोनो की नीद खुली। वे दोनो एक-दूसरे पर मोहित हो गये। दोनो अपना-अपना प्रेम एक-दूसरे पर प्रकट करते है और एक-दूसरे का परिचय प्राप्त करते है। कुमार की प्रेमवार्ता सुन मालती को अपने पूर्वजन्म की बात स्मरण हो आई। दोनो बाते करते-करते एक ही सेज पर सो जाते है। अप्सराएँ मनोहर को उसके घर पहुँचा देती है। इधर सखियो ने मधुमालती की दशा देखी तो सब समझ गईं। मधुमालती ने भी उनसे कुछ छिपाया नही। मनोहर और मधुमालती एक-दूसरे के वियोग से व्याकुल रहने लगते है। मनोहर अपनी धाय से अपने प्रेम की बात बतलाता है। बाद मे किसी की बात न मानकर वह योगी के वेश मे मधुमालती की खोज मे चल पडता है। वह समुद्र मे नौका द्वारा यात्रा करता है। तूफान आने से नौका टूट जाती है। सभी साथी बिछुड जाते है। एक लकडी के तख्ते पर बैठकर मनोहर एक जगल के किनारे पर पहुँचता है।

जगल मे एक सेज पर उसे एक सुन्दर युवती दिखाई दी। राजकुमार के पूछने पर वह अपना नाम प्रेमा बतलाती है। चित्रविश्रामपुर के राजा चित्रसेन की वह कन्या है। वह बतलाती है कि एक बार वह अपनी सखियो के साथ खेल रही थी कि एक राक्षस उसे उठा लाया। जगल मे एक वर्ष से उसने किसी मनुष्य को नही देखा। प्रेमा की कहानी से मनोहर को यह भी पता चलता है कि मधुमालती उसके बचपन की सखी है। प्रेमा के दिये हुए अस्त्र से मनोहर राक्षस को मारता है। प्रेमा को साथ ले वह चित्रविश्रामपुर पहुँच जाता है। उसके पिता मनोहर का स्वागत करते है। एक विशेष तिथि को मधुमालती अपनी मा के साथ प्रेमा के घर आया करती थी। मधुमालती इस बार प्रेमा के प्रयत्न से मनोहर से मिलती है। मधुमालती की मा को पता चल जाता है तो वह उसे शाप

दे डालती है। शाप के कारण मधुमालती पक्षी बनकर उड जाती है। पक्षी के रूप मे उडती हुई वह मानगढ के कुवर ताराचन्द को देखती है। ताराचन्द को वह अपनी कहानी बतलाती है। ताराचन्द मनोहर से उसे मिला देने की प्रतिज्ञा करता है। उसे पिंजडे मे साथ लेकर ताराचन्द अपने साथियो के साथ महासरनगर पहुँचता है। मधुमालती के माता-पिता को जब यह पता लगता है तो वे उसे शापमुक्त करते है। ताराचद से मधुमालती के विवाह का उन लोगो ने प्रस्ताव किया तो ताराचन्द मधुमालती को अपनी बहन बता देता है। मधुमालती की मा सब समाचार प्रेमा के पास पहुँचाती है। अपनी मा से छिपाकर अपनी एक वर्ष की पक्षीरूप की व्यथा को लिखकर प्रेमा के पास भेजती है। यह सब वर्णन बारहमासे के रूप मे है। सयोग से इसी समय मनोहर योगी के वेश मे प्रेमा के नगर मे पहुँचता है। प्रेमा और मनोहर का सदेश पाकर मधुमालती के माता-पिता उसे साथ ले प्रेमा के नगर पहुँचते है। मनोहर और मधुमालती का विवाह होता है। प्रेमा और ताराचन्द का विवाह हो जाता है। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद दोनो दम्पति अपने-अपने घरो को लौट जाते हैं।

अन्त मे मझन लिखते है कि प्रेम की शरण मे जाकर ही कोई काल की चपेट से बच सकता है। प्रेम की शरण-शाला ऐसा स्थान है जहाँ अमृत शोभित होता है और जब तक काव्य-शरीर बना रहता है, प्रेमी का नाम भी इस ससार मे बना रहता है।

चित्रावली[1]—कवि उसमानकृत चित्रावली का रचनाकाल सन् १६१२ है। अन्य सूफी प्रेमाख्यानको की भाँति ही कवि ने घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया है। यौगिक क्रियाएँ, जैसे—लुक अजन लगाकर गायब हो जाना आदि का भी प्रयोग किया है। आश्चर्य तत्त्वो की भी कवि ने योजना की है, जैसे—देव का राजकुमार सुजान को लेकर चित्रसेन के राज्य रूपनगर उड जाना और पुन उसे सुबह तक लाकर मढी मे सुला देना। कुछ आश्चर्यजनक घटनाएँ भी है, जैसे—अजगर सुजान को निगल जाता है। परन्तु सुजान को विरहज्वाला थी, इससे अजगर का पेट जलने लगा

१ चित्रावली, सम्पा०—जगमोहन वर्मा, प्र०—ना० प्र० सभा, काशी

और उसने सुजान को उगल दिया। ऐसे कार्यो से कथा रोचक बन पडी है। कथा इस प्रकार है

नेपाल के राजा धरनीधर नि सन्तान थे। शिव से याचना करने पर उन्हे सुजान नामक पुत्र पैदा हुआ। उसने कुछ काल मे ही सब विद्याएँ सीख ली। उसे मृगया का बहुत शौक था। एक दिन सदल-बल वह आखेट से लौट रहा था। आँधी आ जाने से वह मार्ग भूल गया और एक देव की मढी मे जाकर सो गया। वह देव अपने दूसरे देव मित्र के साथ रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की वर्षगाठ का महोत्सव देखने गया। सोये हुए सुजान को भी वह अपने साथ लेता गया। देवो ने राजकुमार को चित्रसारी मे सुला दिया। जागने पर चित्रसारी मे चित्रावली के चित्र को देखकर वह उस पर मोहित हो गया। उसने वहाँ रखे हुए रग और तूलिका से अपना चित्र बनाया और उसे राजकुमारी के चित्र के बराबर टाग कर सो गया। देव लौटते समय उसे लेते गये। प्रात जागने पर रात की घटना से वह विकल हो गया। इसी समय उसे खोजते-खोजते कुछ लोग वहाँ आये और उसे लिवाकर चले गये।

चित्रावली का वियोग राजकुमार को असह्य हो गया। उसके मित्र सुबुद्धि ने एक युक्ति बताई। उसी के अनुसार दोनो मित्र उसी मढी मे रहने लगे और दानसत्र खोल कर चलाने लगे। उधर चित्रावली ने जब राजकुमार का चित्र देखा तो वह भी विरह मे विकल हो गई। एक कुटीचर ने राजकुमार के चित्र की सूचना रानी को दे दी। रानी ने इस चित्र को धुलवा दिया। इधर एक नपुसक भृत्य राजकुमार को रूपनगर ले गया। वहाँ शिवमदिर मे चित्रावली और राजकुमार ने एक-दूसरे को देखा। जो कुटीचर चित्रावली ने निकाल दिया था उसने राजकुमार को अधा कर दिया और उसे गुफा मे छोड दिया। वहाँ उसे एक अजगर निगल गया। परन्तु उसकी विरहाग्नि से दग्ध हो अजगर ने उसे उगल दिया। एक वनमानुप ने उसे अजन दिया जिससे उसे दिखाई देने लगा। थोडी देर बाद उसे एक जगली हाथी ने पकड लिया। परन्तु एक वृहद् पक्षी उसे आकाश मे ले उडा जिससे हाथी ने उसे छोड दिया और वह एक समुद्र मे गिर गया। वहाँ से निकलकर वह सागरगढ पहुँचा और कवलावती की पुष्प वाटिका मे विश्राम करने लगा। वहाँ राजकुमारी उसे

देखकर मोहित हो गई। घर पहुँचकर उसने उसे भोजन पर बुलाया और हार की चोरी लगाकर उसे बन्दी बना लिया।

कवलावती के सौन्दर्य पर मुग्ध हो सोहिल नाम के राजा ने सागरगढ पर आक्रमण कर दिया। सुजान ने अपने पराक्रम से उसे परास्त कर दिया। उसने कवलावती से परिणय कर लिया। परन्तु यह निश्चय किया कि चित्रावली के मिलने तक वह सयम से रहेगा। वह राजकुमारी के साथ गिरनार-यात्रा पर निकला। सयोग से चित्रावली ने जो योगी भेजा था वह भी गिरनार पहुचा। राजकुमार का सदेश लेकर वह चित्रावली के पास लौट गया। पुन योगी के वेश मे वह राजकुमारी का एक पत्र लेकर सागरगढ आया और राजकुमार को अपने साथ रूपनगर ले गया। कथक द्वारा सोहिल के युद्ध की गाथा सुनकर राजा को चित्रावली के विवाह की चिन्ता हुई। उसने चारो दिशाओं मे राजकुमारो के चित्र लाने को चार चित्रकार भेज दिये। सुजान के पास जो दूत राजकुमारी ने भेजा उसकी सूचना रानी को मिल गई। वह सुजान को रास्ते मे बैठाकर नगर मे आ रहा था कि बन्दी बना लिया गया। इससे विलम्ब हुआ और राजकुमार पागल की तरह चित्रावली का नाम ले-लेकर पुकारने लगा। राजा ने उसका वध करने को एक हाथी भेजा जिसे उसने मार डाला। राजा स्वय उसे मारने को उद्यत हुआ कि चित्रकार ने सुजान का चित्र दिया और बताया कि इसी ने सोहिल को मारा था। राजा ने चित्र से राजकुमार को पहचाना और उसे अपने महल मे ले आया। चित्रावली का पाणिग्रहण उसके साथ हुआ।

सागरगढ से सुजान के जाने के बाद कवलावती दु खी रहने लगी। उसने हसमित्र को दूत बनाकर रूपनगर भेजा। उसने भ्रमर की अन्योक्ति से राजकुमार को सूचना दी। उसे कवलावती का स्मरण आ गया और वह चित्रावली को लेकर सागरगढ आया। वहाँ से कवलावती को लेकर वह समुद्री मार्ग से नौका द्वारा नेपाल की ओर रवाना हुआ। समुद्र मे तूफान आने से नौका टूट गई। किसी प्रकार कठिनाइयो को पार करके वह नेपाल पहुँचा। वहाँ राजा ने उसे सारा राजपाट सौंप दिया। उसने दोनो रानियो के साथ बहुत समय तक राज्य किया।

देखकर मोहित हो गई। घर पहुँचकर उसने उसे भोजन पर बुलाया और हार की चोरी लगाकर उसे बन्दी बना लिया।

कवलावती के सौन्दर्य पर मुग्ध हो सोहिल नाम के राजा ने सागरगढ पर आक्रमण कर दिया। सुजान ने अपने पराक्रम से उसे परास्त कर दिया। उसने कवलावती से परिणय कर लिया। परन्तु यह निश्चय किया कि चित्रावली के मिलने तक वह सयम से रहेगा। वह राजकुमारी के साथ गिरनार-यात्रा पर निकला। सयोग से चित्रावली ने जो योगी भेजा था वह भी गिरनार पहुचा। राजकुमार का सदेश लेकर वह चित्रावली के पास लौट गया। पुन योगी के वेश मे वह राजकुमारी का एक पत्र लेकर सागरगढ आया और राजकुमार को अपने साथ रूपनगर ले गया। कथक द्वारा सोहिल के युद्ध की गाथा सुनकर राजा को चित्रावली के विवाह की चिन्ता हुई। उसने चारो दिशाओं मे राजकुमारो के चित्र लाने को चार चित्रकार भेज दिये। सुजान के पास जो दूत राजकुमारी ने भेजा उसकी सूचना रानी को मिल गई। वह सुजान को रास्ते मे बैठाकर नगर मे आ रहा था कि बन्दी बना लिया गया। इससे विलम्ब हुआ और राजकुमार पागल की तरह चित्रावली का नाम ले-लेकर पुकारने लगा। राजा ने उसका वध करने को एक हाथी भेजा जिसे उसने मार डाला। राजा स्वय उसे मारने को उद्यत हुआ कि चित्रकार ने सुजान का चित्र दिया और बताया कि इसी ने सोहिल को मारा था। राजा ने चित्र से राजकुमार को पहचाना और उसे अपने महल मे ले आया। चित्रावली का पाणिग्रहण उसके साथ हुआ।

सागरगढ से सुजान के जाने के बाद कवलावती दु खी रहने लगी। उसने हसमित्र को दूत बनाकर रूपनगर भेजा। उसने भ्रमर की अन्योक्ति से राजकुमार को सूचना दी। उसे कवलावती का स्मरण आ गया और वह चित्रावली को लेकर सागरगढ आया। वहाँ से कवलावती को लेकर वह समुद्री मार्ग से नौका द्वारा नेपाल की ओर रवाना हुआ। समुद्र मे तूफान आने से नौका टूट गई। किसी प्रकार कठिनाइयो को पार करके वह नेपाल पहुँचा। वहाँ राजा ने उसे सारा राजपाट सौप दिया। उसने दोनो रानियो के साथ बहुत समय तक राज्य किया।

**प्रेमाख्यानको मे संकेतित प्रेमाख्यान**

उक्त प्रेमाख्यानक काव्यो मे से कतिपय ऐसे भी आख्यानक काव्य है जिनमे कथा-परम्परा का उल्लेख किया गया है। जायसी ने अपनी रचना पद्मावती मे कुछ कथाओ का उल्लेख किया है

विक्रम धसा प्रेम के वारा। सपनावति गएउ पातारा॥
मधु पाछ मुगधावति लागी। गगनपूर होइगा वैरागी॥
राजकुंवर कंचनपुर गएऊ। मिरगावति कहं जोगी भयऊ॥
साध कुवर खडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू॥
प्रेमावति कहुँ सुरसर साधा। उषा लगि अनिरुध वर बाँधा॥[1]

जायसी की उक्त सूची से यह तो निश्चितप्राय है कि उनके ग्रन्थरचना-काल मे (१) स्वप्नावती, (२) मुग्धावती, (३) मृगावती, (४) मधुमालती, (५) प्रेमावती और (६) उषा-अनिरुद्ध की कथाएँ लिखी जा चुकी थी।

१७वी शताब्दी के कवि बनारसीदास ने अपने आत्मचरित मे इस आशय की सूचना दी है

तव घर मे बैठे रहे जाहिं न हाट बाजार।
मधुमालती मिरगावती पोथी दोइ उदार॥
ते वाचहि रजनी समे आवहि नर दस बीस।
गावैं अरु वातें करहिं नित उठि देहिं असीस॥[2]

इस प्रकार इन्होने दो पोथियो का उल्लेख किया है।

उसमान ने अपने काव्य चित्रावली मे मिरगावती, पदमावती और मधुमालती इन तीन का वर्णन किया है

मृगावती मुख रूप वसेरा। राजकुवर भयो प्रेम अहेरा॥
सिहल पदुमावति मोरूपा। प्रेम कियो हे चितउर भूपा।
मधुमालति होइ रूप देखावा। प्रेम मनोहर होइ तह आवा॥[3]

इसके वाद रसरतनकार ने भी कतिपय प्रेमकथाओ का उल्लेख किया है

---

१ प० रामचन्द्र शुक्ल, जायसी-ग्रन्थावली, पृ० १००

२ बनारसीदास, अर्ध कथानक, स०—नाथूराम प्रेमी, हि० ग्र० र० बम्बई, ई० १९५७

३ उसमान कृत चित्रावली, स०—जगमोहन वर्मा, पृ० १३

दमयन्ती–नल प्रीति कहानी, भावति सरस मधुर मुख बानी।
बहुत आनन्द प्रेम गुन गावै, एक-एक अच्छर समुझावै॥
माधव काम की कीर्ति बखानी, जिहि सुनि मन बिसरावै रानी।
उषा कथा जबै अनुसारी, तब चितई भरि नैन कुमारी॥[1]
चित्ररेख अनुरुद्ध को लाई, जब ऊषा मनमथ्थ सताई।
मधुमालति सो कुँवर मिलावा, सो कविता गुन गाननि गावा॥[2]

( चपा० ७८ )

चित्रित सकल प्रेमरस प्रीती, माधौ कामकन्दला रीति।
अग्निमित्र यौरावत धाता, भरतरि प्रेम पिंगला राता॥

( स्वय० २३३-३४ )

इन विभिन्न प्रेमाख्यानको की उल्लिखित कथाओ मे से मात्र दो मृगावती और मधुमालती की ही उपलब्धि हुई है। शेष उल्लिखित कथाए हिन्दी मे प्राप्त नही है। इन कथाओ के विषय मे पीछे लिखा गया है।

कथाकाव्यो के शिल्पगत विकास की दृष्टि से उन पर विचार करने के बाद पता चलता है कि लगभग सभी प्रेमाख्यानो ने अपने पूर्ववर्ती प्रेमाख्यानो के पथ का अनुगमन किया है। कथाविन्यास, चरित्र, कथोद्देश्य, वस्तुवर्णन, नगरवर्णन, हाटवर्णन, सरोवर-वर्णन, युद्ध-सामग्रीवर्णन और प्रसाधन-सामग्री-वर्णन आदि मे प्राय एक जैसी वर्णन-परिपाटियाँ देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए शायद ही कोई प्रेमाख्यानक ऐसा हो जिसके नायक-नायिका के माता-पिता को सन्तान न होने का दुख न रहा हो। बाद मे शिव-पार्वतीस्तुति अथवा योगी आदि की इष्टसिद्धि से सतान की प्राप्ति और उस सन्तान के भविष्य की ज्योतिषियो द्वारा घोषणा। भविष्य की घोषणा मे प्राय प्रेम-विरह की घटना का समावेश, किसी दैवी सहायता का होना आदि बाते आवश्यक रूप से मिलेगी। इन उदाहरणो को खोजने के लिए किन्ही विशिष्ट काव्यो का नामोल्लेख करना इसलिए आवश्यक नही है कि यह तथ्य सभी प्रेमाख्यानको ( अपवाद-स्वरूप एक दो को छोडकर ) की थाती है।

---

१ पुहकरकृत रसरतन, स०—डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० १३८
२. वही, पृ० १९१

प्रेमाख्यानकों में एक बात और देखने को मिलती है वह है नायक का योगीवेश धारण करना। जैसे—छिताईवार्ता में सोरसी योगी बनता है, चन्दायन का नायक लोरक, पदमावत में रतनसेन, मधुमालती में मनोहर, चित्रावली में सुजान और मृगावती का नायक ये सभी अपनी प्रेमिकाओं की प्राप्ति के लिए योगी बनते हैं। पुहकर, नारायणदास, दाऊद, कुतुबन, मझन और उसमान आदि सभी ने नायिकाओं का शिख-नख वर्णन किया है, जिसमें केश, ललाट, भृकुटि, नासिका, नयन, कपोल, अधर, दंतपंक्ति, कर्ण, ग्रीवा, वक्षस्थल, कुच, कटि, नितम्ब आदि सभी का विशद वर्णन है। नायिका के विरह-वर्णन को चमत्कारिक और गंभीर करने के लिए सभी ने षड्ऋतुओं या बारहमासे की पद्धति अपनाई है। विरहिणी नायिका अपना सन्देश किसी पक्षी द्वारा (जैसे—नागमती के विरह का संदेश सिंहल लेकर एक पक्षी जाता है) अथवा शुक द्वारा अथवा बनजारों की टोली आदि से नायक के पास भेजती है। उस संदेश की उपेक्षा कोई भी नायक नहीं करता। किन्हीं-किन्हीं कथाओं के कथानकों में अथवा कथानक-अभिप्रायों में काफी साम्य भी देखा गया है। इन सबसे यह प्रमाणित हो जाता है कि हिन्दी प्रेमाख्यानक अपने पूर्ववर्ती साहित्य के विकसित रूप हैं।

दमयन्ती–नल प्रीति कहानी, भाषति सरस मधुर मुख बानी।
बहुत आनन्द प्रेम गुन गावै, एक-एक अच्छर समुझावै॥
माधव काम की कीर्ति बखानी, जिहि सुनि मन बिसरावै रानी।
उषा कथा जबै अनुसारी, तव चितई भरि नैन कुमारी॥[1]
चित्ररेख अनुरुद्ध को लाई, जब ऊषा मनमथ्थ सताई।
मधुमालति सो कुँवर मिलावा, सो कविता गुन गाननि गावा॥[2]
(चपा० ७८)

चित्रित सकल प्रेमरस प्रीती, माधौ कामकन्दला रीति।
अग्निमित्र यौरावत धाता, भरतरि प्रेम पिंगला राता॥
(स्वयं० २३३-३४)

इन विभिन्न प्रेमाख्यानको की उल्लिखित कथाओ मे से मात्र दो मृगावती और मधुमालती की ही उपलब्धि हुई है। शेष उल्लिखित कथाए हिन्दी मे प्राप्त नही है। इन कथाओ के विषय मे पीछे लिखा गया है।

कथाकाव्यो के शिल्पगत विकास की दृष्टि से उन पर विचार करने के बाद पता चलता है कि लगभग सभी प्रेमाख्यानो ने अपने पूर्ववर्ती प्रेमाख्यानो के पथ का अनुगमन किया है। कथाविन्यास, चरित्र, कथोद्देश्य, वस्तुवर्णन, नगरवर्णन, हाटवर्णन, सरोवर-वर्णन, युद्ध-सामग्रीवर्णन और प्रसाधन-सामग्री-वर्णन आदि मे प्राय एक जैसी वर्णन-परिपाटियाँ देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए शायद ही कोई प्रेमाख्यानक ऐसा हो जिसके नायक-नायिका के माता-पिता को सन्तान न होने का दु ख न रहा हो। बाद मे शिव-पार्वतीस्तुति अथवा योगी आदि की इष्टसिद्धि से सतान की प्राप्ति और उस सन्तान के भविष्य की ज्योतिषियो द्वारा घोषणा। भविष्य की घोषणा मे प्राय प्रेम-विरह की घटना का समावेश, किसी दैवी सहायता का होना आदि बातें आवश्यक रूप से मिलेगी। इन उदाहरणो को खोजने के लिए किन्ही विशिष्ट काव्यो का नामोल्लेख करना इसलिए आवश्यक नही है कि यह तथ्य सभी प्रेमाख्यानको (अपवाद-स्वरूप एक दो को छोडकर) की थाती है।

---

१ पुहकरकृत रसरतन, स०—डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० १३८
२. वही, पृ० १९१

प्रेमाख्यानको मे एक बात और देखने को मिलती है वह है नायक का योगीवेश धारण करना। जैसे—छिताईवार्ता मे सोरसी योगी बनता है, चन्दायन का नायक लोरक, पदमावत मे रतनसेन, मधुमालती मे मनोहर, चित्रावली मे सुजान और मृगावती का नायक ये सभी अपनी प्रेमिकाओ की प्राप्ति के लिए योगी बनते है। पुहकर, नारायणदास, दाऊद, कुतुबन, मझन और उसमान आदि सभी ने नायिकाओ का शिख-नख वर्णन किया है, जिसमे केश, ललाट, भृकुटि, नासिका, नयन, कपोल, अधर, दतपक्ति, कर्ण, ग्रीवा, वक्षस्थल, कुच, कटि ,नितम्ब आदि सभी का विशद वर्णन है। नायिका के विरह-वर्णन को चमत्कारिक और गभीर करने के लिए सभी ने षड्ऋतुओ या बारहमासे की पद्धति अपनाई है। विरहिणी नायिका अपना सन्देश किसी पक्षी द्वारा ( जैसे—नागमती के विरह का सदेश सिहल लेकर एक पक्षी जाता है ) अथवा शुक द्वारा अथवा बनजारो की टोली आदि से नायक के पास भेजती है। उस सदेश की उपेक्षा कोई भी नायक नही करता। किन्ही-किन्ही कथाओ के कथानको मे अथवा कथानक-अभिप्रायो मे काफी साम्य भी देखा गया है। इन सबसे यह प्रमाणित हो जाता है कि हिन्दी प्रेमाख्यानक अपने पूर्ववर्ती साहित्य के विकसित रूप है।

•

## अध्याय ३

# हिन्दी प्रेमाख्यानकों का शिल्प

'शिल्प' कला का अविभाज्य अग है जो कलाकार की अमूर्त भावना को साकार रूप प्रदान करता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी से मैंने शिल्प-विपय की जानकारी के लिए अपनी जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने बताया कि शिल्प एक ऐसा प्राणतत्त्व है जिसे तथाकथित वस्तु से अलग करके नही देखा जा सकता। मतलब यह कि जिस वस्तुविषय का शिल्प है, यदि वह उस वस्तुविषय से पृथक् कर दिया जाय तो पूर्वोक्त वस्तु या विषय निष्प्राण हो जाएगा। यो तो कला मे शिल्प का विकास सैद्धान्तिक पक्ष से पृथक् माना जा सकता है, परन्तु व्यवहार मे उसे अभिव्यक्ति से पृथक् नही किया जा सकता। माध्यम के उपयोग की महत्ता पर अधिक जोर दिया जा सकता है, उसे कलात्मक कथ्य के स्वरूप से पूर्णतया अलग नही किया जा सकता। इस प्रकार जहाँ कला-वैशिष्ट्य का सैद्धान्तिक अध्ययन हो सकता है वहाँ 'अच्छी तकनीक' या शिल्प की परिभाषा 'वह योग्यता' होगी जो पूर्व निर्धारित अभिव्यक्त प्रभाव की प्राप्ति के लिए किसी माध्यम मे प्रयोग की गई हो।[1]

---

1 The development of technique in the arts is theoretically, but not practically separable from the development of expression While facility in the use of a medium may be stressed in education and developed by practice, it can never be completely divorced from the character of an artistic statement Thus while virtuousity may be theoretical studies, "good technique" must be defined in practice as the ability to emplov a medium adequately to achieve a predetermined expressive effect

Encyclopaedia of the Arts, p 999, edited by Dagobert Runes and H G Schrickles, Peter Owen, London, 1965

एक साधारण-सा उदाहरण लेकर इस कथन को स्पष्ट किया जा सकता है—बढई जब एक कुर्सी बनाता है तब उसके मस्तिष्क मे कुर्सी का पूर्व-निर्धारित ढाँचा ( स्ट्रक्चर ) रहता है और उसी के अनुसार वह काष्ठ की पट्टियो को छीलकर उन्हे ढाँचे के अनुसार जोड देता है। निर्मित कुर्सी के आकार मे निर्माता ने जो शिल्प गढा है उसे कुर्सी से अलग नही किया जा सकता। हाँ, कुर्सी के ढाँचे को अलबत्ता अलगाया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार रचनाकार, कलाकार और कथाकार अपनी-अपनी अनुभूतियो से अपनी कृतियो की तो रचना करता ही है, शिल्प और विधा की भी सर्जना करता है। टाल्स्टाय का कथन है—'प्रत्येक महान् कलाकार आवश्यक रूप से अपनी विधा ( फार्म ) का भी निर्माता होता है।'[1] 'फार्म' अथवा विधा का स्वरूप कैसा है ? यह एक अलग प्रश्न है। रचनाकार, कलाकार या कथाकार अपने 'फार्म' का निर्माता तो होता है परन्तु 'फार्म' का सुगठन एव उसकी सुडौलता आदि आवश्यक गुण निर्माता की क्षमता और व्यक्तित्व पर निर्भर करते है। यही कारण है कि 'फार्म' परम्परा ( ट्रेडीशन ) से जुडा नही रहता, वह पीढी दर पीढी बदलता रहता है।'[2] कलाकार सदैव नये शिल्प की तलाश मे रहते है और उनका यह प्रयत्न तबतक चलता रहेगा जबतक कि वे अपने कार्य से सन्तुष्ट नही हो जाते।[3] स्टीवेन्सन के मत से भी 'सच्चा कलाकार प्रत्येक नये विषय के साथ अपने ढग ( मेथड ) को अलगाता जायगा।'[4] यही नही, उपन्यासो की शिल्प-विधि के सम्बन्ध मे स्काट जेम्स ने जो मत व्यक्त किया है उसे यहाँ उद्धृत किया जा सकता है। स्काट जेम्स का मत है कि साधनापूर्वक लिखा प्रत्येक उपन्यास शिल्प-शैली मे अपनी पृथक् समस्या उपस्थित करता है।[5] प्रत्येक उपन्यास जो उपन्यास कहलाने के योग्य

---

1 "That every great artist necessarily creates his own form also"—Novelist on the Novels, p 265

2 "Form is not tradition It alters from generation to generation"—E M Forster, Two Cheers for Democracy, p 103

3 "Artists always seek a new technique and will continue to do so as long as their work excites them"—Ibid

4 "With each new subject the true artist varies his method"—Novelist on the Novels, p 82

5 "Every carefully written novel presents its own separate problem in method and technique"

है, अपने पृथक् नियम रखता है।[1]

भावात्मक क्रान्ति लाने के लिए अभिनव शिल्प अथवा तकनीक की अपेक्षा होती है। जब संसार को जानने के परम्परागत मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं तब व्याख्या करने के रूढ़िवादी ढंग भी अमान्य हो जाते है।[2] इसी कारण डा० रूथ के मत से 'कला को नित्य नया होते रहना चाहिए। उसका रचनात्मक प्रभाव अभिनव आश्चर्यकारी तत्त्वों पर निर्भर करता है। एक बार प्रस्तुतीकरण की नवीनता जहाँ धूमिल हुई नहीं कि पाठक उसे छोड़ अपने दैनिक कार्यों में संलग्न हो जाता है।'[3] उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कलाकार अपने युग के अनुरूप अभिनव शिल्प को हमेशा तलाश करते रहते हैं। यह अभिनवता क्या परम्परा से पूर्णतः विच्छिन्न होकर ही आती है? ऐसा नहीं होता है। क्योंकि परम्परा और अतीत पर्यायवाची नहीं है। परम्परा का अर्थ ही है अपने से भिन्न के साथ सम्बद्ध होती हुई प्रक्रिया। यानी परम्परा हमेशा अपने को युगानुरूप बदल लेती है जबकि अतीत किसी खास कालखण्ड में सीमित होकर रुक जाता है। परम्परा गतिशील प्रक्रिया है, वह पुराने से अनावश्यक को छोड़कर और नये से जीवंत को पकड़कर अपना संतुलन बनाये रहती है। शिल्प के साथ भी ऐसा ही होता है। कोई शिल्प अयातत नया नहीं हो सकता। तकनीक अथवा रचना-विधान नये हो सकते है, परन्तु वे कहीं न कहीं परम्परा से सूत्रबद्ध अवश्य दृष्टिगोचर होंगे। यदि कथाकार अथवा रचनाकार को ऐसा कुछ कहना है जो पहले नहीं कहा गया था तो संभवतः वह अपने प्रयोग के लिए ठीक ढंग और विषय

---

1 Writers at Work, p 37

2 A revolution in sensibility demands new techniques When traditional ways of knowing the world collapse, traditional forms of expression are invalidated —A Walton Litz, Art of James Joyce, p 53

3 Art must always be renewed Its creative influence depends on surprise When once the freshness of the presentment has faded, the reader relapses into his daily habits —Dr H V Routh, English Literature and Ideas in the Twentieth Century, p 2

नही पा सकेगा ।'[1] जान वेन का यह कथन पूर्णत सत्य प्रतीत होता है । हिन्दी प्रेमाख्यानको के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि पूर्ववर्ती अपभ्रंशादि मे रचित प्रेम-काव्यो से हिन्दी के प्रेमाख्यानक ने शिल्प-शैली और ढंग मे बहुत कुछ लिया है । इस सन्दर्भ मे भाषा, काल और रचनाकार की रुचि का प्रभाव तो स्वीकार करना ही होगा । स्पष्टतया यो कहे कि हिन्दी-प्रेमाख्यान के शिल्प पर अपभ्रंश कथाकाव्यो का प्रभाव अवश्य पडा परन्तु वे हू-बहू उन्ही की नकल नही हैं ।

शिल्प शब्द के लिए शिथिल ढग से कौशल, स्थापत्य, तकनीक, ढग, रीति, शैली, विधान, विषय और आकृति ( कण्टेण्ट्स एण्ड फार्म्स ) आदि शब्द भी प्रयुक्त किये जाते हैं । विचारणीय यह है कि शिल्प शब्द के प्रचलित अर्थ क्या हैं ? किसी भी कथा, कहानी, नाटक या उपन्यास को श्रेष्ठतम करार देने मे उसका प्रभावोत्पादक शिल्प ही मुख्य होता है । उपन्यासो के शिल्प-विधान पर विचार प्रकट करते हुए मेण्डिलो लिखते है कि जितने जीवत उपन्यास है उतनी ही तकनीकें है । वास्तव मे किसी को उपन्यास की तकनीक की अपेक्षा उपन्यासो की तकनीको पर चर्चा करनी चाहिये ।[2] असल मे शिल्प को सब कुछ मानने वालो की सख्या कुछ कम नही है । मार्क शोरर का कथन है कि जब हम शिल्प की चर्चा करते है तब हम लगभग प्रत्येक वस्तु ( रचना ) की चर्चा करते है ।[3] इसी प्रत्येक वस्तु मे रचना का दृष्टिकोण भी सम्मिलित है और वह शिल्पविधि मे जुडकर उसे व्यापक बनाता है । 'औपन्यासिक गठन मे

---

1 If he has something to say that has not been said before, it is very unlikely that he will find, ready for use, exactly the right form and content in step —John Wain, Essays on Literature & Ideas, p 3

2. There are thus as many techniques as there are living novels Indeed one should not talk of the technique of the novel, but of techniques of novels —Time and the Novel, p 234–235

3 When we speak of technique, then, we speak of nearly everything —Technique as Discovery, Forms of Modern Fiction, p 9

दृष्टिकोण शिल्प का मूलभूत सिद्धान्त है। एक या दूसरे दृष्टिकोण को ग्रहण करने मे विषयवस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण, विस्तार सभी कुछ सीमा तक निश्चित होते है।'[१]

ल्यूबक ने रचना के रूपाकार ( फार्म ) को रचनाकार के विचारो या उद्देश्यो का साधन माना है।[२] शिल्प का अर्थ करते हुए प० सीताराम चतुर्वेदी लिखते है—'किसी भी कलाकृति मे विशेष सौन्दर्य उत्पन्न करने का जो बौद्धिक नियोजन किया जाता है उसी को कौशल कहते है।'[3] यह शीर्षक-कौशल, इतिवृत्त-पुरुष-कौशल, रूपकौशल, प्रबन्ध-कौशल, पात्र-योजना-कौशल, लक्ष्य-कौशल और वर्णन-कौशल के रूप मे आयोजित किया जाता है।[४] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री 'टेकनिक' का स्थापत्य अर्थ करते हुए उसकी परिभाषा देते हैं कि 'चित्रकार ने जिस प्रयत्न के सहारे अपने चित्र को पूर्ण किया है, वह उसकी शैली माना जायेगा और भावाभिव्यक्ति की समस्त प्रक्रिया टेकनिक या स्थापत्य कही जायेगी। कथा मे भावो को निश्चित रूप देने के लिये जो विधान प्रस्तुत किये जाते है, जिस प्रक्रिया को अपनाया जाता है, वही उसका स्थापत्य है।'[५] प्राकृत कथा-साहित्य के स्थापत्य पर विचार प्रस्तुत करते समय डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने प्राकृत-कथाओ मे प्रयुक्त स्थापत्यो का सविस्तार उल्लेख अपने शोध-प्रबन्ध मे किया है। प्राकृत जैन कथा-साहित्य और अपभ्रंश जैन कथा-साहित्य की

---

1 The point of view, it is apparent, is the fundamental principle of technique in the novel structure By the adaptation of one or another point of view, plot, characterisation, tone, description are all to some degree determined

—Carl H Grabo, Technique of Novel, p 81

2 The form of the book depends on it (the intention of the novelists ) and until it is known there is nothing to be said of form —Lubbock, Craft of Fiction, p 12

चतुर्वेदी, शैली और [illegible] ल, पृ० ३२

हरिभद्र [illegible] साहित्य का आलोचनात्मक

विपयवस्तु लगभग एक ही रही है। इसका कारण यह रहा है कि जैनो का जितना भी कथा-साहित्य है—चाहे वह प्राकृत, अपभ्रंश या संस्कृत मे हो—कही न कही उनके तिरसठ शलाका पुरुषो के जीवन-चरितो अथवा जैनधर्म के प्रतिपादन से सम्बधित विचारो से जुडा हुआ रहता है। उनके विपयो मे वैभिन्य रहने पर भी उद्देश्यो मे साम्य देखा जाता है। अतएव प्राकृत-अपभ्रंश कथा-साहित्य के स्थापत्य मे कोई विशेप मौलिक अन्तर का न पाया जाना स्वाभाविक है। डा० नेमिचन्द्र जी ने प्राकृत कथा-साहित्य के जिन स्थापत्यो का उल्लेख किया है उनके मात्र नाम देना यहाँ सगत होगा १ वक्ता-श्रोतारूप कथा-प्रणाली, २. पूर्वदीप्ति-प्रणाली, ३ काल-मिश्रण, ४ कथोत्थ-प्ररोह-शिल्प, ५ सोद्देश्यता, ६ अन्यापदेशिकता, ७ राजप्रासाद-स्थापत्य, ८ रूपरेखा की मुक्तता, ९ वर्णन-क्षमता, १० मडन-शिल्प, ११ भोगायतन-स्थापत्य, १२ प्ररोचन-शिल्प, १३ उपचारवक्रता, १४ एतिह्य-आभास-परिकल्पना, १५. रोमास-योजना, १६ सिद्ध प्रतीको का प्रयोग और नये प्रतीको का निर्माण, १७ प्रतीको की उपयोगिता और वर्गीकरण, १८ कुतूहल की योजना, १९ औपन्यासिकता, २० वृत्तिविवेचन, २१ पात्रबहुलता, २२ औचित्य-योजना और स्थानीय-विशेषता, २३ चतुर्भुजी स्वस्तिक-सन्निवेश, २४ उदात्तीकरण, २५ सामरस्य-सृष्टि और प्रेपणीयता, २६ भाग्य और सयोग का नियोजन, २७ परामनोवैज्ञानिक शिल्प, २८ अलौकिक तत्त्वो की योजना, २९ मध्यमौलिकता या अवान्तर-मौलिकता[1]।

उक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि कुछ लोग शिल्प को वहुत व्यापकता और विस्तार देना चाहते है। वास्तव मे शिल्प के सम्बन्ध मे जल्दी निर्णय लेना खतरे से खाली नही। एलन टेट ने तो यहाँ तक कहा है कि उपन्यासकार अपने उपन्यास के विपय और उसकी रचना (स्ट्रक्चर) को पाठक के सामने इस तरह मिले-जुले रूप मे रखता है कि आलोचक उसके मुख्य-गौणरूपता का परिज्ञान कदापि नही पा सकता।[2]

---

१ वही, पृ० १२३-१४६

2 The novelist keeps before him constantly the structure and substance of his fiction as a whole to a degree to which

टी० एस० इलियट जैसे महान् कवि भी शिल्प को परिभाषित करने मे स्वय को असमर्थ पाते है। 'हम कविता के शिल्प को परिभाषित नही कर सकते, हम नही कह सकते कि शिल्प कहाँ से आरम्भ होता है और उसका अन्त कहाँ होता है।'[1] फिलिप टायनबी आलोचक का सारा साहस बटोरकर कहते हैं कि हम सब रचना और उसके पीछे काम करने वाले तत्त्वो की अविभाज्यता को जानते है, लेकिन फिर भी यदि हम आलोचक हैं तो हमे अत्यधिक सावधान होकर उनके अन्तर को जानना चाहिए।[2] वस्तुत यह बात तो सच है कि रचना से शिल्प तत्त्व को अलग करके नही देखा जा सकता परन्तु ऐसा नही कि उस तत्त्व को समझा ही नही जा सकता हो। एक भेदक दृष्टि की स्थापना तो करनी ही होगी। मूलत रचना से शिल्प-तत्त्व को अलग करके देखने और न देखने का प्रश्न है वह कला के साथ विशेष रूप से जुडा हुआ है। लेखक की स्थिति मे कुछ भिन्न दृष्टिकोण अपेक्षित है। किसी भी लेखक को उसकी रचना-प्रक्रिया के लिए शिल्प साधन है, साध्य नही—कम से कम इतना अन्तर तो मानना ही चाहिए। जोयस केरी का कथन है कि 'हम सदैव विषयवस्तु और फार्म को अविभाज्य मानने की बात करते है परन्तु यह बात दार्शनिक-कला मे सच हो सकती है। लेखक के लिए ऐसी स्थिति अत्यधिक पेचीदा है।'[3] मार्क शोरर का मत

---

the critic can never apprehend it —Allen Tate, On the Limits of Poetry, p 130

1 We observe that we cannot define the technique of verse, we cannot say at what point technique begins or ends —T S Eliot, Sacred Wood, Preface, p ix-x

2 "We know all about the inseparability of method from those other elements which lie behind it, but if we are critics we had better beware of knowing too much about it" — Phillip Toynbee, London Magazine, May 1956

3 "We are always told that they ( content and form ) are inseparable but this is true only in the art of philosophy For the writer the situation is very much more complex"— Joyce Cary, Art and Reality, p 96

भी उद्धरणीय है—'विषयवस्तु या अनुभूति और अर्जित विषयवस्तु या कला के वीच के अन्तर को शिल्प कहते है।'[1]

शिल्प की चर्चा के प्रसग मे यह प्रश्न कि क्या कहानी या कथा शिल्प-हीन हो सकती है? एक पेचीदा प्रश्न है। इसके उत्तर मे जैनेन्द्र जी कहते है कि—'नही हो सकती। क्या कोई शिशु ऐसा हो सकता है जिसके भीतर वह जटिल यन्त्र न हो जिसे मानव-यष्टि कहते है? लेकिन एक अबोधा भी माता वन जाती है और उसे उम जटिलता का कुछ पता नही होता जिसका निष्पन्न रूप उसका शिशु है। कथा का शिल्प हो सकता है और उसको जानने की भी आवश्यकता हो सकती है। किन्तु शरीर-यन्त्र का कितना भी ज्ञान हो, क्या केवल उस भरोसे किसी वैज्ञानिक ने अपने मे से शिशु की सृष्टि की है? शायद ज्ञान अपनी खातिर सृष्टिमर्म से सगत ही नही है।'[2] जैनेन्द्र जी का इसी के अनुरूप एक वक्तव्य और भी है—'मुझे ख्याल होता है कि कही ऐसा तो नही कि कहानी कला या शिल्प हो ही नही, वल्कि सृष्टि हो। हर शिशु अपना वनाव और स्वभाव लेकर जन्मता है। दो प्राणी कभी एक से हो नही सकते। कारण, वे सृष्ट होते है, बनते नही हैं। एक माता-पिता की सन्तति समान नही हो पाती। क्योकि प्रत्येक सृष्टि पृथक् गर्भ का फल है। यानी अपना पृथक् आनन्द, पृथक् वेदना। एक फार्मूले और एक युक्ति मे से जब जितनी चाहे एक नमूने की वस्तु निकाली जा मकती है और इस काम मे शायद कुछ हुनर भी दरकार हो। पर कहानी लिखने मे ठीक वैसा सुभीता होता है, यह मेरा अनुभव नही है।'[3] इन उद्धरणो से दोनो हाथो मे मोदक वाली उक्ति अधिक चारतार्थ हाती है। फिर भी जैनेन्द्र जी जैसे कथाकार शिल्प की आवश्यकता को नजरन्दाज कैसे कर सकते थे? मै तो यही समझा हूँ कि जिस प्रकार मानस-विहीन मानव की कल्पना करना व्यर्थ होगा उसी प्रकार शिल्प-हीन कहानी या कथा की भी।

---

1 "The difference between content or experience and achieved content or art is technique"
—Technique as Discovery, Forms of Modern Fiction, p 9

२ जैनेन्द्रकुमार, कहानी अनुभव और शिल्प, पृ० ७४-७५

३ वही, साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० ३५४-'५५

भवन-निर्माण के लिए ईंट, सुर्खी-चूना और सीमेंट आदि आवश्यक सामग्री है। ठीक इसी प्रकार कथा-कहानी के लिए अनुभूति, कथावस्तु की योजना, चरित्र-अवतारणा आदि तत्त्वों की आवश्यकता होती है और उन्हीं की रचना-प्रक्रिया का नाम शिल्प है। भाव प्रकाशित करने की जो प्रक्रिया है वह शैली है। शैली शिल्प नहीं अपितु उसका एक अंग है। शैली का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के शील से या भाव से है। यही कारण है कि रचना-प्रक्रिया पर रचयिता के शील की जो छाप होती है वही उस रचना की शैली होती है। इसका कारण यह है कि शैली अभिव्यक्ति अथवा भाव-प्रकाशन का साधन है। परन्तु कोई भी रचनाकार या कलाकार अपनी कृति को सँवार-सजाकर ही प्रस्तुत करना चाहता है अर्थात् वह उसे प्रभावोत्पादक देखने की आकांक्षा रखता है। साहित्य-कला में शैली का स्थान महत्त्वपूर्ण है। शैली उस साधन का नाम है जो रमणीय, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक रूप से वाक्शक्ति के समस्त सरस तत्त्वों की अभिव्यक्ति में अभिनव तथा उचित शक्ति का संचार करे।[1] संस्कृत साहित्य में वृत्ति और रीति का उल्लेख किया गया है। इन शब्दों का प्रचलन शिल्प-सम्बन्धी भावों के प्राकट्य के लिए ही था। वृत्ति का उल्लेख भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है। कैशिकी, सात्वती, भारती और आरभटी ये चार प्रकार की वृत्तियाँ मानी गई हैं।[2] इन वृत्तियों को भरतमुनि ने काव्य की माता माना है (वृत्तय

---

१ पं० करुणापति त्रिपाठी, शैली, पृ० २९.

२ वृत्तियों का लक्षण इस प्रकार दिया है

कैशिकी—

या श्लक्ष्णनेपथ्यविधानचित्रा, स्त्रीसंकुला पुष्कलनृत्यगीता। कामोपभोगप्रभवोपचारा, सा कैशिकी चारुविलासयुक्ता ॥

—आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण

सात्वती—या सत्वजेनेह गुणेन युक्ता, न्यायेन वृत्तेन समन्विता च।
हर्षोत्कटासंहृतशोकभावा, सा सात्वती नाम भवेत्तु वृत्ति ॥

भारती—या वाक्प्रधाना पुरुषप्रयोज्या, स्त्रीवर्जिता संस्कृतवाक्ययुक्ता।
स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता, सा भारती नाम भवेत्तु वृत्ति ॥

—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र

भवन-निर्माण के लिए ईंट, सुर्खी-चूना और सीमेंट आदि आवश्यक सामग्री है। ठीक इसी प्रकार कथा-कहानी के लिए अनुभूति, कथावस्तु की योजना, चरित्र-अवतारणा आदि तत्त्वों की आवश्यकता होती है और उन्हीं की रचना-प्रक्रिया का नाम शिल्प है। भाव प्रकाशित करने की जो प्रक्रिया है वह शैली है। शैली शिल्प नहीं अपितु उसका एक अंग है। शैली का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के शील से या भाव से है। यही कारण है कि रचना-प्रक्रिया पर रचयिता के शील की जो छाप होती है वही उस रचना की शैली होती है। इसका कारण यह है कि शैली अभिव्यक्ति अथवा भाव-प्रकाशन का साधन है। परन्तु कोई भी रचनाकार या कलाकार अपनी कृति को सँवार-सजाकर ही प्रस्तुत करना चाहता है अर्थात् वह उसे प्रभावोत्पादक देखने की आकांक्षा रखता है। साहित्य-कला में शैली का स्थान महत्त्वपूर्ण है। शैली उस साधन का नाम है जो रमणीय, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक रूप से वाक्शक्ति के समस्त सरस तत्त्वों की अभिव्यक्ति में अभिनव तथा उचित शक्ति का संचार करे।[1] संस्कृत साहित्य में वृत्ति और रीति का उल्लेख किया गया है। इन शब्दों का प्रचलन शिल्प-सम्बन्धी भावों के प्राकट्य के लिए ही था। वृत्ति का उल्लेख भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है। कैशिकी, सात्वती, भारती और आरभटी ये चार प्रकार की वृत्तियाँ मानी गई हैं।[2] इन वृत्तियों को भरतमुनि ने काव्य की माता माना है (वृत्तय

---

१ पं० करुणापति त्रिपाठी, शैली, पृ० २९

२ वृत्तियों का लक्षण इस प्रकार दिया है

कैशिकी—

या श्लक्ष्णनेपथ्यविधानचित्रा, स्त्रीसंकुला पुष्कलनृत्यगीता। कामोपभोगप्रभवोपचारा, सा कैशिकी चारुविलासयुक्ता॥

—आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण

सात्वती—या सत्त्वजेनेह गुणेन युक्ता, न्यायेन वृत्तेन समन्विता च।
हर्षोत्कटासंहृतशोकभावा, सा सात्वती नाम भवेत्तु वृत्तिः॥

भारती—या वाक्प्रधाना पुरुषप्रयोज्या, स्त्रीवर्जिता संस्कृतवाक्ययुक्ता।
स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता, सा भारती नाम भवेत्तु वृत्तिः॥

—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र

काव्यमातृका)। इनकी उत्पत्ति के विषय मे भरतानुशासन मे कहा गया है कि भारती-वृत्ति ऋग्वेद से, सात्वती-वृत्ति यजुर्वेद से, कैशिकी-वृत्ति सामवेद से और आरभटी-वृत्ति अथर्ववेद से उत्पन्न हुई

ऋग्वेदाद् भारती वृत्तिर्यजुर्वेदात्तु सात्वती।
कैशिकी सामवेदाच्च शेषा चाथर्वणी तथा॥

वास्तव मे भरत ने अपने नाट्शास्त्र मे जिन वृत्तियो का उल्लेख किया है उनकी उपयोगिता नाट्यशास्त्र तक ही सीमित है। तथापि वृत्ति शब्द के इतिहास की दृष्टि से इस स्थान पर उनका उल्लेख करना असगत नही है। उद्भट दूसरे पडित है जिन्होने अपने 'काव्यालकार-सारसग्रह' नामक अलकारग्रन्थ मे परुषा, उपनागरिका और ग्राम्या या कोमला नामक वृत्तियो का उल्लेख किया है। परुषा जब किसी अनुप्रास मे श, ष, रेफ वाले वर्ण, ह्ल, ह्व, ह्य आदि प्रयुक्त होते है। उपनागरिका द्विरुक्त वर्णों का प्रयोग, वर्ग के अक्षरो का वर्ग-पञ्चमो से सयोग जिसमे होता है। ग्राम्या या कोमला जिसमे परुषा और उपनागरिका वृत्ति वाले वर्णों के अतिरिक्त अक्षरो का सघटन होता हो।[1] रुद्रट ने अपने काव्यालकार मे वृत्ति को समासाश्रित कहा है। आचार्य मम्मट ने उपनागरिका, परुषा तथा कोमला वृत्ति का सकेत किया है और इन्हे रीतियो के अन्तर्गत ही रखा है।[2]

रीति के प्रमुख प्रतिष्ठापको मे से वामन का नाम प्रथम है। उन्होने रीति को काव्य की आत्मा माना।[3] विशिष्ट पद-रचना को रीति का

---

आरभटी—या चित्रयुद्धभ्रमशस्त्रपात-मायेन्द्रजालप्लुतिलघिताढ्या।
ओजस्विगुर्वक्षरबन्धगाढा, ज्ञेया बुधै सा रमटीति वृत्ति॥
—शृङ्गारतिलक

१ शषाभ्या रेफसयोगैष्टवर्गेण च योजिता।
परुषा नाम वृत्ति स्यात् ह्लह्वह्याद्यैश्च सयुता॥
सरूपसयोगयु ता मूर्ध्नि वर्गान्तयोगिभि।
स्पर्शैर्यता च मन्यन्ते उपनागरिका बुधा॥
शेषैर्वर्णैर्यथायोग कथिता कोमलाख्यया।
ग्राम्या वृत्ति प्रशसन्ति काव्येष्वादृतबुद्धय॥—उद्भट, का० १ ५ ३ ७

२ केषाचिदेता वैदर्भी प्रमुखा रीतयो मता।—काव्यप्रकाश, ९ ४

३ रीतिरात्मा काव्यस्य। —काव्यालकार, २ ६

लक्षण माना।[1] मूलत तो रीति का सर्वप्रथम उल्लेख भामह का मिलता है। परन्तु द्रष्टव्य यह है कि भामह ने 'रीति' शब्द का प्रयोग नही किया है। उन्होने जिन दो मार्गों का उल्लेख किया है वे है वैदर्भ तथा गौडोय। दोनो मे से वे किसी एक को महत्त्व नही देते। वे कहते है कि यह काव्य गौडीय है, यह वैदर्भ है, इस प्रकार का कथन मूर्खो की चाल है।[2] भामह का मत है कि काव्य के उदात्त होने के लिए उसका अलकार से युक्त होना, अर्थ्य, अग्राम्य, न्याय्य तथा अनाकुल होना आवश्यक है, इस तरह का गौडीय मार्ग भी ठीक है और वैदर्भ मार्ग भी ठीक है।[3] वैदर्भी के गुण अनतिपोष, अनतिवक्रोक्ति, प्रसाद, ऋजुता, कोमल और श्रुतिपेशलत्व है।[4] भामह के पश्चात् दण्डी ने भी मार्गो का उल्लेख करते हुए गौडो (रीति) को हेय दृष्टि से देखा है। उनके मतानुसार गौडी काव्यपद्धति पौरस्त्य है तथा उसकी विशेषता अनुप्रास और शब्दालकारडम्बर है।[5] अत दण्डी वैदर्भी मार्ग [ रीति ] को श्रेष्ठ मानते हैं।

दण्डी के बाद काव्य की रीतियो के विषय मे बाणभट्ट के हर्षचरित मे चर्चा आई है। बाण ने काव्य की चार पद्धतियो का उल्लेख इस प्रकार किया है—'उत्तरवासी श्लेषमय काव्य को तथा पश्चिम के लोग केवल अर्थ को ही पसन्द करते हैं। दक्षिण के लोगो मे उत्प्रेक्षा और गौड देश के लोगो मे अक्षराडम्बर को पसन्द किया जाता है।[6] इन चारो प्रकार को पद्धतियो का काव्य मे एक स्थान पर मिलना दुर्लभ होता है। बाण के अनुसार यदि काव्य मे इनका समन्वय हो तो वही उत्तम काव्य है। 'नवीन अर्थ, अग्राम्य, स्वभावोक्ति, सरल श्लेष, स्फुट रस और विकट

---

१ विशिष्टपदरचना रीति ।—वही, २ ७

२ गौडीयमिदमेतत्तु वैदर्भमिति किं पृथक् ।
गतानुगतिकन्यायान्नाख्येयममेधसाम् ॥ —काव्यालकार, १ ३२

३. वही, १ ३५

४ वही, १ ३३

५ इत्यनालोच्य वैषम्यमर्थालकारडम्बरम् ।
अवेक्ष्यमाणा ववृधे पौरस्त्या काव्यपद्धति ॥—काव्यादर्श, १ ५०

६ श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम् ।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बर ॥ —हर्षचरित

अक्षरो की सघटना काव्य मे दुर्लभ है।'[1] जैसा कि पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है आचार्य वामन ने 'रीति' शब्द का प्रथमाल्लेख किया है। वे विशिष्ट पद-रचना को रीति कहते हैं। वामन ने शब्दगुण और अर्थगुण के भेद से गुणो के मुख्य दो भेद किये और उन्हे रीति से सबंधित बताया। इन्होने वैदर्भी, गौडी और पाचाली तीन रीतियाँ मानी हैं। इन तीनो रीतियो मे से वैदर्भी रीति की वामन ने सर्वाधिक प्रशसा की है। वैदर्भी का ही अधिक प्रयोग करने की उनकी सलाह है क्योकि उसमे समस्त गुण पाये जाते है। अन्य दोनो मे कम गुण पाये जाते है।[2]

रुद्रट ने उक्त तीनो रीतियो मे एक चौथी 'लाटीया' नामक रीति और जोडकर इनकी सख्या चार कर दी।[3] इनके अनुसार 'वैदर्भी और पाचाली रीतियो का उपयोग शृगार तथा करुण रस मे होना चाहिए, भयानक, अद्भुत और रौद्र रसो मे लाटी और गौडी रीतियो का यथोचित प्रयोग करना चाहिए।'[4] आनन्दवर्धनाचार्य ने रीति को सघटना' नाम दिया है। सघटना तीन प्रकार की मानी गई है—१ समासरहित, २ मध्यम समासो से अलकृत और ३ दीर्घसमासयुक्त।[5] आनन्दवर्धनाचार्य ने 'असमासा' से वैदर्भी, 'समासेन मध्यमेन च भूषिता' से पाचाली और 'दीर्घसमासा' से गौडी रीति का निरूपण किया है। इनके अनुसार सघटना माधुर्यादि गुणो का आश्रय करती हुई रसो को अभिव्यक्त करती है।[6] राजशेखर ने उक्त तीन रीतियों के अतिरिक्त एक चौथी 'मागधीरीति' का

---

१ नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषो क्लिष्ट स्फुटो रस।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥—वही

२ तासा पूर्वा ग्राह्या। गुणसाकल्यात्। न पुनरितरे स्तोकगुणत्वात्।
—काव्यालकार, १ २ १४-१५

३ काव्यालकार, २, ४-६

४ वैदर्भीपाचाल्यौ प्रेयसिकरुणे भयानकाद्भुतयो।
लाटीयागौडीये रौद्रे कुर्याद् यथौचित्यम् ॥ —वही, १५ २०

५ असमासा, समासेन मध्यमेन च भूषिता।
तथा दीर्घसमासेति त्रिधा सघटनोदिता ॥—ध्वन्यालोक, ३ ५

६ गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ति, माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा।
रसान् तन्नियमे हेतुरौचित्य वक्तृवाच्ययो ॥—वही ३ ६

भी उल्लेख किया है। आगे चलकर इन्ही चारो रीतियो मे भोजराज ने 'अवन्तिकारीति' नामक एक नई रीति को स्वीकारते हुए 'सरस्वतीकठाभरण मे' वैदर्भी, गौडी, पाचाली, लाटी, आवन्ती और मागधी इन छ रीतियो का उल्लेख किया है। जहाँ दो, तीन या चार समस्त पद हो तथा जो पाचाली और वैदर्भी के अन्तराल मे स्थित हो वहाँ आवन्तीरीति मानी गई है।[1]

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के नवे परिच्छेद मे रीतियो के नामोल्लेख के साथ-साथ उनकी विशद परिभाषाएँ भी दी हैं। इनके अनुसार रीति, अग-रचना की भाँति, पद-रचना अथवा पद-सघटना है जो कि रसभावादि की अभिव्यजना मे सहायक हुआ करती है।[2] रीति चार प्रकार की है—१ वैदर्भी, २. गौडी, ३ पाचाली और ४ लाटी।[3] वैदर्भी वह रीति है जिसे माधुर्य के अभिव्यजक वर्णों से पूर्ण, असमस्त अथवा स्वल्प-समासयुक्त ललित रचना कहा गया है।[4] वैदर्भी को रुद्रट ने इस प्रकार परिभाषित किया है—'वैदर्भी रीति अथवा ललित-पद-रचना इस प्रकार की हुआ करती है जिसमे समस्त पदावली का प्रयोग नही हुआ करता, जहाँ एकाध पद समस्त हो जाय तो कोई हानि नही, जिसमे श्लेषादि दसो गुण विद्यमान रहते है, जिसमे द्वितीय वर्ग के वर्णों का बाहुल्य सुन्दर लगता है और जिसमे ऐसे वर्ण रहा करते हैं जो कि स्वल्प प्रयत्न से उच्चारित हो सकते है।'[5]

---

१ अन्तराले तु पाचाली वैदर्भ्योर्यावतिष्ठते।
सावन्तिका समस्तै स्याद्द्वित्रैस्त्रिचतुरै पदै ॥
—सरस्वतीकण्ठाभरण, २ ३२

२ पदसघटना रीतिरगसस्थाविशेषवत्।
उपकर्त्री रसादीना—साहित्यदर्पण ९ १

३ सा पुन स्याच्चतुर्विधा।
वैदर्भी चाथ गौडी पाचाली लाटिका तथा ॥—वही

४ माधुर्यव्यजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥—वही, ९ २

५ असमस्तैकसमस्ता युक्ता दशभिर्गुणैश्च वैदर्भी।
वर्गद्वितीयबहुला स्वल्पप्राणाक्षरा च सुविधेया ॥—रुद्रट, काव्यालकार

गौडी वह रीति है जिसे ओज गुण के अभिव्यजक वर्णो से पूर्ण, समास-प्रचुर, उद्भट रचना कहा गया है।[1] 'जिसे माधुर्य और ओज के अभि-व्यजक वर्णो को छोडकर अन्य अवशिष्ट वर्णो अर्थात् प्रसाद के अभि-व्यजक वर्णो से ऐसी पद-रचना कहा गया है जिसमे पाँच या छ पदो के समासो से बडे समासो का प्रयोग नही हुआ करता, वह पाचाली रीति है।'[2] भोजराज ने पाचाली रीति के विषय मे लिखा है कि 'पाचाली रीति वह है जिसमे पाँच या छ पदो से अधिक पद वाले समास प्रयुक्त नही किये जाते, जिसमे ओज और कान्ति के गुण विराजमान रहा करते है और जो माधुर्य के अभिव्यजक किंवा कोमल वर्णो से पूर्ण पद-रचना हुआ करती है।'[3] लाटी वह रीति है जिसमे वैदर्भी और पाचाली दोनो की विशेषताए अन्तर्भूत हो।[4] इस प्रकार चार प्रकार की रीतियो की व्याख्या साहित्यदर्पणकार ने की है। कतिपय काव्याचार्यो ने चारो प्रकार की रीतियो का सक्षिप्त स्वरूप बताते हुए लिखा है कि 'वैदर्भी रीति का अभिप्राय 'मधुरबन्ध', गौडी रीति का अभिप्राय 'उद्धतबन्ध,' पाचाली रीति का अभिप्राय 'मिश्रबन्ध' और लाटी रीति का अभिप्राय 'मृदुबन्ध' से है।[5]

शिल्प और शैली के प्रसग मे मार्ग, वृत्ति, रीति और सघटना आदि को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य मात्र इतना रहा है कि हम भारतीय साहित्यशास्त्र म शिल्प-शैली आदि के बारे म प्रचलित धारणाओ का आकलन कर सकें और शिल्प के बारे मे प्रचलित

---

१ ओज प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर पुन ।
समासबहुला गौडी —साहित्यदर्पण, ९ ३-४

२ वर्णे शेषै पुनर्द्वयो ।
समस्तपचपपदो बन्ध पाचालिका मता ॥—वही, ९ ४.

३ समस्तपचपपदामोज कान्तिसमन्विताम् ।
मधुरा सुकुमारा छ पाचाली कवयो विदु ॥—वही, टीका

४ लाटी तु रीतिर्वैदर्भीपाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता ।—वही, ९ ५

५ गौडी डम्बरबद्धा स्याद्वैदर्भी ललितक्रमा ।
पाचाली मिश्रभावेन लाटी तु मृदुभि पदै ॥
—वही, पृ० ६६२ से उद्धृत

पाश्चात्य मतो के साथ उनकी तुलना कर सकें। उपर्युक्त रीतियाँ शैलिया ही है। उनका प्रयोग कथा, आख्यायिका और महाकाव्यो मे होता था। परन्तु द्रष्टव्य है कि शैली शिल्प नही क्योंकि शिल्प मे भाव और रचना-प्रक्रिया दोनो का समावेश है। वाल्टर रेले के अनुसार साहित्य का कार्य द्विविध है—अर्थ के लिए शब्द ढूँढना और शब्द के लिए अर्थ ढूढना।[1] प्रत्येक व्यक्ति की अपनी शैली ( स्टाइल इज दी मेन हिमसेल्फ ) होती है तथापि व्यवस्था की दृष्टि से उनका श्रेणी-निबन्धन भी होता ही रहा है।

महाकाव्य, खण्डकाव्य, कथा, आख्यानक, कहानी, नाटक, निबन्ध, पत्र और आत्मकथा आदि विभिन्न विधाओ की अपनी-अपनी विवेच्य शैलिया होती हैं। ये शैलिया अनेक रूपो मे प्रचलित हैं। प० परशुराम चतुर्वेदी ने शैलियो को रूपशैली और भावशैली इन दो भेदो मे विभक्त किया है। रूपशैली के अन्तर्गत उन्होने जिन शैलियो का निर्देश किया है वे इस प्रकार है

१ वर्णन सूक्ष्म और स्थूल के भेद से व्यक्ति, स्थान, वस्तु, दृश्य और अवसर का, २ इतिवृत्त या कथन (क) कथा के रूप मे, (ख) बच्चो को समझाई जाने वाली कहानियो के रूप मे, (ग) वार्ता के रूप मे, ३ वर्णन और कथन (इतिवृत्त) मिश्रित, ४ कविता (क) मुक्तक, (ख) प्रगीत (ग) उक्तिबन्ध, (घ) वर्णनात्मक कविता, ५ गीत, ६ पद्यप्रबन्ध, ७ गद्यप्रबन्ध, ८ पत्र, ९ समीक्षा, १० दिनचर्या, ११ यात्रा, १२ निमन्त्रण-पत्र, १३ आवेदन-पत्र, १४ सूचना, १५ अभिनन्दन, १६ अभ्यर्थना, १७ समाचार, १८ विज्ञापन १९ निबन्ध (क) समीक्षात्मक, (ख विचारात्मक, (ग) विवेचनात्मक, (घ) तर्कपूर्ण अध्ययनात्मक, (ङ) गवेषणात्मक, (च) भावात्मक, २० सवाद, २१. स्वगत, २२ नाटक (क) एकागी, (ख) अनेकागी, (ग) भृत्यनाटक, (घ) श्रव्यनाटक, २३ गद्य-काव्य, २४ भूमिका या प्रस्तावना, २५ सक्षेपीकरण, २६ लेख-सपादन, २७ व्याख्या, २८ टीका, २९ आत्मकथा, ३० परिचय, ३१ जीवन-चरित, ३२ रेखाचित्र, ३३ श्रव्य-व्याख्या, ३४ भविष्यवाणी, ३५ नाटकीय आत्म-परिचय।

---

1 To find words for a meaning and to find a meaning for words —Style, p 63

भावशैली के अन्तर्गत निम्नलिखित शैलियां आती है

१ विनोदात्मक, २ आत्मचिन्तनशैली, ३ आत्म-विश्लेषण, ४ विचारात्मक, ५ प्रमाणबहुला, ६ व्यग्यात्मक, ७. व्यास-शैली, ८ आत्रगात्मक, ९ भावात्मक, १० उपालम्भात्मक, ११ लोमहर्षणशैली, १२. क्रमिकउत्तेजन शैली।[1]

पं० करुणापति त्रिपाठी ने शैलियो का व्यक्तिप्रधान शैली और विषयप्रधान शैली के रूप मे वर्गीकरण किया है,[2] जो अधिक सटीक है। इन दोनो ही भेदो मे वे तीन-तीन उपभेद स्वीकार करते है। वे हैं—रागात्मक, इन्द्रियानुभवात्मक और ज्ञानात्मक शैली। इनके अनुसार एक तीसरी शैली है आलोचनात्मक शैली जो दो प्रकार की होती है १ निर्णयात्मक आलोचना, २ व्याख्याप्रधान आलोचना शैली।[3] चौथी रूढ-धार्मिक और राष्ट्रीय-शैली का भी उल्लेख आपने किया है।[4]

इन सारे मतमतान्तरो को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे यहाँ जिसे रीति, वृत्ति, काव्यापभेद, स्थापत्य आदि कहा गया है वह वस्तुत शिल्प से काफी भिन्न है। पश्चिम मे शैली जिसे स्टाइल या टेकनिक कहते है वह भी शिल्प का पूरा अर्थ लेने मे असमर्थ है। वस्तुत शिल्प एक व्यापक शब्द है जिसमे वस्तु के मूल गठन, स्थापन-सगठन, विधा-आकृति तथा शैली सभी का समावेश हो जाता है। चूकि यह शब्द केवल कथ्य-वस्तु की अभिव्यक्ति-प्रणाली से ही सीमित नही है, इसलिए इसे साहित्यिक कोटियो मे श्रेणी-विभक्त करना भी पूर्णत सगत नही होगा। शिल्प मे किसी भी जाति की मनोवृत्ति का पूर्ण प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। भारतीय कथा-साहित्य का शिल्प भारतीय मानस की मनोवृत्ति का परिचायक है। सूफी आख्यानो मे इसी कारण शुद्ध भारतीय शिल्प से किंचित् भिन्न मनोवृत्ति का रूप दिखाई पडता है। यद्यपि आगे चलकर भारतीय कथा और सूफी आख्यानको का शिल्प एक-दूसरे से मिल-जुलकर नया रूप ले लेता है

---

१ पं० परशुराम चतुर्वेदी, काव्य में शैली और कौशल, पृ० २४-३२

२ प० करुणापति त्रिपाठी, शैली, पृ० १९३

३ वही, पृ० २०१

४ वही, पृ० २१९

उसकी अभिव्यक्ति कराने तथा उसके अस्तित्व का स्पष्ट बोध कराने मे समर्थ हो।[1]

साहित्यशास्त्र के विभिन्न आचार्यों ने काव्य के लक्षणो पर अपना-अपना मत प्रकट किया है। आचार्य भामह शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य मानते हैं, जो कि गद्य-पद्य के भेद से दो प्रकार का होता है।[2] दण्डी ने काव्य के लक्षण के विषय मे पूर्वाचार्यों का स्मरण करते हुए लिखा है कि प्रजाजनो की व्युत्पत्ति को ध्यान मे रखकर विद्वानो ने विचित्र मार्गो से युक्त काव्यवाणी-रचना के प्रकारो का विवरण दिया है, जिसमे उन्होने काव्य के शरीर तथा उसके अलकारो का वर्णन किया है। इस अर्थ से युक्त पदावली ही काव्य का शरीर है।[3] भामह और दण्डी ने काव्य के शरीर का आकार ही प्रस्तुत किया था परन्तु इनके बाद के आचार्य वामन ने उसमे आत्मतत्त्व की स्थापना भी कर दी। इन्होने कहा कि रीति काव्य की आत्मा है—**रीतिरात्मा काव्यस्य**।[4] ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा मानकर काव्य का लक्षण किया।[5] जिस काव्य के शरीर-आत्मा आदि का जो रूपक आचार्यों ने प्रस्तुत किया था उसे राजशेखर ने स्पष्टरूप से 'काव्यपुरुष' का आकार प्रदान करके उसका वर्णन इस प्रकार किया—'शब्द-अर्थ इस पुरुष का शरीर है, सस्कृत मुख है, प्राकृत भुजा है, अपभ्रश जघा है, पैशाची पाद है, उरस्थल मिश्र [भाषा]

---

१ वही

२ भामह, काव्यालकार, १ १६

३ दण्डी, काव्यादर्श, १ ९–१०

अत प्रजाना व्युत्पत्तिमभिसन्धाय सूरय ।
वाचा विचित्रमार्गाणा निबबन्धु क्रियाविधिम् ॥
तै शरीर काव्यानामलकाराश्च दर्शिता ।
शरीर तावदिष्टार्थ—व्यवच्छिन्ना पदावली ॥

४ काव्यालकार, १ १

५. काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्य समाम्नातपूर्व ,
तस्याभाव जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये ।
के चिद्वाचा स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीय ।
तेन ब्रूम सहृदयमन प्रीतये तत्स्वरूपम् ॥—ध्वन्यालोक, १ १

है। सम, प्रसन्न, मधुर, उदार और ओजस्वी इसके गुण है। उक्तिवर्ण इसके वचन हैं, रस आत्मा है, छन्द रोम हैं, प्रश्नोत्तर, प्रहेलिकादि वाग्विनोद है और अनुप्रास, उपमा आदि उसे अलकृत करते हैं।[1] इनके बाद आचार्य कुन्तक ने काव्य का लक्षण अधिक विस्तार के साथ किया है। इनके अनुसार शब्द और अर्थ सहित व्यजना-व्यापार-प्रधान मनोरम हृदयाह्लादक व्यवस्थित बन्ध काव्य है।[2] आचार्य क्षेमेन्द्र का 'औचित्य-सिद्धान्त' प्रसिद्ध है। उसी के अनुसार वे 'औचित्य' को ही काव्य का जीवित मानते हैं।[3] साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ 'रसात्मक वाक्य' को काव्य मानते हैं। **वाक्य रसात्मकं काव्यम्** मे 'रसात्मक वाक्य' का अर्थ 'जिस वाक्य का आत्मतत्त्व रस हुआ करता है' किया है।[4] उक्त काव्य के लक्षणो का निरूपण करने के बाद निष्कर्ष यह निकलता है कि शब्द और अर्थ को ही अधिकाश आचार्यों ने काव्य माना है।[5] काव्य के प्रयोजन और उसके हेतुओ की भी

---

१ शब्दार्थौ ते शरीर, सस्कृत मुख, प्राकृत बाहु, जघन्यमपभ्रंश, पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम्। सम प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि। उक्तिवर्ण च ते वच, रस आत्मा, रोमाणि छन्दासि, प्रश्नोत्तरप्रवल्हिकादिक च वाक्केलि, अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलकुर्वन्ति।—काव्यमीमासा, पृ० १४.

२ शब्दार्थौ सहितौ वक्र-कविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाह्लादकारिणी॥ —वक्रोक्तिजीवित, १.

३ औचित्यविचारचर्चा, ४–५
काव्यस्यालमलकारै किं मिथ्यागणितैर्गुणै,
यस्य जीवितमौचित्य विचित्यापि न दृश्यते।
अलकारास्त्वलकारा गुणा एव गुणा सदा,
औचित्य रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्॥

४ साहित्यदर्पण, १ ३

५ (अ) शब्दार्थौ सहितौ काव्य गद्य पद्य च तद् द्विधा—काव्यालकार, १ १६
(ब) काव्यशब्दोऽय गुणालकारसस्कृतयो शब्दार्थयोर्वर्तते —वही १ १
(स) शब्दार्थौ काव्यम्—वही, २. १
(द) अदोषौ सगुणौ सालकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्—काव्यानुशासन, पृ० १६

उक्त आचार्यों ने विस्तृत चर्चा की है। काव्य के मूल मे मम्मट ने तीन कारणो का उल्लेख किया है—१. शक्ति या प्रतिभा, २. लोक, शास्त्र तथा काव्य आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न निपुणता, ३. काव्य को जानने वाले की शिक्षा के अनुसार अभ्यास।[1] इन्ही तीन हेतुओ मे काव्य का उद्भव होता है। प्राय काव्य के हेतुओ मे आचार्यो के मतो मे अधिक भेद नही है।

काव्य के रूपो का वर्गीकरण प्रथमत अभिव्यक्ति के माध्यम से किया गया। भामह और दण्डी के अनुसार सस्कृत काव्य, प्राकृत काव्य और अपभ्रश काव्य के भेद से तीन काव्यरूप है। साहित्यदर्पणकार ने इस ओर ध्यान देकर काव्यरूपो का दृश्य और श्रव्यकाव्य के भेदो मे विभाजन किया।[2] काव्य को दृश्यता और श्रव्यता के आधार पर ही यह वर्गीकरण किया गया है। जो चाक्षुप हो, जिसे देख सकें वह दृश्य, जो सुना जा सके, जो कानो का विषय हो वह श्रव्य काव्य कहलाता है। इसका विशद विवेचन साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद मे देखा जा सकता है। दण्डी ने काव्यो को सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और मिश्र रूप मे स्वीकार किया। रुद्रट ने सस्कृत, प्राकृत, मागध, पिशाच, शूरसेन और अपभ्रश को काव्य का रूप माना। शास्त्रो के आधार पर काव्य के रूपो का विकासक्रम उक्त प्रकार मे मिलता है। परन्तु काव्यरूपो मे भी परिवर्तन होता रहा है। क्योकि 'काव्यरूपो का निर्माण, उनके उद्भव और विकास की प्रक्रिया देश-काल की सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियो से परिचालित होती है। भाषा और कवि की कारीगरी पर भी इन परिस्थितियो का प्रभाव पडता है।'[3] सस्कृत के आचार्यो ने जिस काव्यरूप की चर्चा की है वह सस्कृत काव्यो को देखकर। मध्यकाल मे विदेशी जातियो के सम्पर्क और लोक-भाषा के उदय के कारण लोकजीवन मे सम्पृक्त बहुत से काव्यरूप सामने आये। हिन्दी के काव्यरूप इसी सास्कृतिक परम्परावलम्बन की देन हैं।

---

१ शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥ —काव्यप्रकाश, १ ३

२ दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुन काव्य द्विधा मतम्।
दृश्य तत्राभिनेय तद्रूपारोपात्तु रूपकम्॥—साहित्यदर्पण, ६ १

३ डा० शिवप्रसाद सिंह, सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० ३१४

काव्यरूपो के परिवर्तन का मुख्य कारण भाषा मे परिवर्तन का आना ही है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे 'जब-जब कोई जाति नवीन जातियो के सम्पर्क मे आती है तब-तब उसमे नई प्रवृत्तिया आती है, नई आचार-परम्परा का प्रचलन होता है, नये काव्यरूपो की उद्भावना होती है और नये छन्दो मे जनचित्त मुखर हो उठता है, नया छन्द नये मनोभाव की सूचना देता है।'[1] अत. स्पष्ट है कि काव्यरूपो का इतिहास युगानुकूल प्रवृत्तियो से जुडा हुआ है। काव्यरूप मात्र काव्यरूप नही अपितु अपने उद्भवकाल की परिस्थिति के उद्घोषक भी है। लोकभाषा अपभ्रश और हिन्दी के काव्यरूपो का आकलन किया जाये तो एक लम्बी सूची बन जायेगी। भाषा-काव्यो का परिचय देते हुए श्री अगरचन्द नाहटा ने एक लम्बी सूची दी है, जिसे अविकल रूप मे नीचे उद्धृत किया जा रहा है

१ रास, २ सधि, ३ चौपाई, ४ फागु, ५ धमाल, ६ विवाहलो, ७ धवल, ८. मगल, ९ वेलि, १० सलोक, ११ सवाद, १२ वाद, १३ झगडो, १४ मातृका, १५ बावनी, १६ कक्क, १७ बारहमासा, १८ चौमासा, १९ पवाडा, २० चर्चरी (चाचरि), २१ जन्माभिषेक, २२ कलश, २३ तीर्थमाला, २४ चैत्यपरिपाटी, २५ सघवर्णन, २६ ढाल, २७ ढालिया, २८ चौढालिया, २९ छढालिया, ३० प्रबध, ३१ चरित, ३२ सबध, ३३ आख्यान, ३४ कथा, ३५ सतक, ३६ बहोत्तरी, ३७ छत्तीसी, ३८ सतरी, ३९ बत्तीसी, ४० इक्कीसी, ४१ इकतीसी, ४२ चौबीसी, ४३ बीसी, ४४ अष्टक, ४५ स्तुति, ४६ स्तवन, ४७ स्तोत्र, ४८ गीत, ४९ सज्झाय, ५० चैत्यवदन, ५१ देववदन, ५२ वीनती, ५३ नमस्कार, ५४ प्रभाती, ५५ मगल, ५६ साझ, ५७ वधावा, ५८ गहूँली, ५९ हीयाली, ६० गूढा, ६१ गजल, ६२ लावणी, ६३ छद, ६४ नीसाणी, ६५ नवरसी, ६६ प्रवहण, ६७ पारणो, ६८ वाहण, ६९ पदावली, ७० गुर्वावली, ७१ हमचडी, ७२ हीच, ७३ मालमालिका, ७४ नाममाला, ७५ रागमाला, ७६ कुलक, ७७ पूजा, ७८ गीता, ७९ पद्याभिषेक, ८० निर्वाण, ८१ सयम श्री विवाह-वर्णन, ८२ भास, ८३ पद, ८४ मजरी, ८५ रसावली, ८६ रसायन, ८७

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ९०

रसलहरी, ८८ चद्रावला, ८९ दीपक, ९० प्रदीपिका, ९१ फुलडा, ९२ जोड, ९३ परिक्रम, ९४ कल्पलता, ९५ लेख, ९६ विरह, ९७ मूदडी, ९८ सत, ९९ प्रकाश, १०० होरी, १०१ तरग, १०२ तरगिणी, १०३ चौक, १०४ हुडी, १०५ हरण, १०६ विलास, १०७ गरवा, १०८ बोली, १०९ अमृतध्वनि, ११० हालरियो, १११ रसोई, ११२. कडा, ११३ झूलणा, ११४ जकडी, ११५ दोहा, ११६ कुडलिया, ११७ छप्पय आदि।[1]

हिन्दी-काव्यरूपो पर विचार करते समय श्री गुलाबराय ने वि० १४वी शताब्दी से पूर्व के जिन काव्यरूपो का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं १ चरितकाव्य, २ कवित्त-सवैया, ३ बरवै, ४ दोहा, ५ मगलकाव्य, ६ सबद, ७ रमैनी, ८ कहरा, ९ बसन्त, १० चाचर, ११ रासक, १२ फाग, १३. लीला के पद, १४ आल्हा या वीर छन्द, १५ सोहर, १६ हिंडोला तथा वीर काव्यो के छप्पय, तोमर आदि छन्द।[2]

डा० रामबाबू शर्मा ने अपने शोध-प्रबन्ध मे ३३८ प्रामाणिक ग्रन्थो के आधार पर २४ काव्यरूपो की उद्भावना की है। वास्तव मे डा० शर्मा का यह कार्य हिन्दी-साहित्य की एक उपलब्धि मानना चाहिए। उन्होने १५वी शताब्दी से १७वी शताब्दी तक के प्रचलित काव्यरूपो की तालिका इस प्रकार दी है १ बानी, २ चरितकाव्य, ३ रास, ४ कथा-वार्ता-काव्य, ५ पद, सबद, लीला के पद, ६ स्तोत्र, स्तुति, विनती-काव्य, ७ सिद्धान्त एव उपदेशपरक काव्य, ८. प्रशस्तिकाव्य, ९. पुराण, १०. ऐतिहासिक काव्य, ११. मगलकाव्य, १२. लीला-काव्य, १३ साखी, १४ छन्द-गीतपरक काव्य, १५ माल या मालाकाव्य, १६ सवाद, वादू, गोष्ठी, बोधसज्ञक काव्य, १७ बारहखडी या बावनी, १८ बारहमासा, १९ सख्यापरक काव्य, २० भ्रमरगीत, २१ कथा, २२ अष्टयाम, २३ नखशिख तथा २४ नाटक।[3]

---

१ अगरचन्द नाहटा प्राचीन काव्यो की रूप परपरा, पृ० २

२ गुलाबराय, काव्य के रूप, पृ० ४४

३ डा० रामबाबू शर्मा, हिन्दी काव्यरूपो का अध्ययन, पृ० ७८

डा० सत्येन्द्र ने ८वी शती से १४वी शती तक के काव्यरूपो की सूची इस प्रकार दी है १ गाथाबध, २ दोहाबध, ३ पद्धडियाबध, ४ चौपाई-दोहावली-रमैनी, ५ छप्पयबध, ६ कुडलिनीबध, ७ रासा-बध, ८ चर्चरी या चाचर, ९ फाग, १० साखी, ११. सबदी, १२ दोहरे, १३ सोहर, १४ पद, १५ मगलकाव्य, १६ चौतीसा, १७ विप्रमतीसी, १८ बसत, १९ वेलि, २० विरहुली, २१ हिंडोला, २२ कवित्त-सवैया, २३ कहरा, २४ बरवै, २५ विनय, २६ लीला, २७ अखरावट, २८ नहछू, २९ रासक, ३० रास, ३१ भ्रमरगीत, ३२ मुकरी, ३३ दो सखुने, ३४ अनमिल, ३५ ढकोसला, ३६ बुझावल, ३७ षड्ऋतु, ३८ बगसाला, ३९ नखशिख, ४० दसम दशावतार, ४१ भडोआ, ४२. जीवनी, ४३ सतसई, ४४ मगल, ४५ माहात्म्य, ४६ पचचीसी, ४७ बत्तीसी ४८ पुराण, ४९. सवाद, ५० घोडी, ५१ पत्तल ५२ काव्य, ५३ चरित। इन रूपो का नामकरण छद, गीत, शैली, सख्या और विषय के आधार पर है।[1]

आरम्भिक ब्रजभाषा के काव्यरूपो का विवेचन करते हुए डा० शिव-प्रसाद सिंह ने निम्नलिखित काव्यरूप बताए है

१ चरितकाव्य, २ कथा-वार्ता, ३ रास और रासो, ४ लीलाकाव्य, ५ षड्ऋतु और बारहमासा, ६ बावनी, ७ विप्रमतीसी, ८ वेलिकाव्य, ९ गेयमुक्तक, १० मगलकाव्य।[2]

उपर्युक्त काव्यरूपों की सूचियो से हिन्दी साहित्य के आदिकाल से १९वी शताब्दी तक के काव्यरूपो पर प्रकाश पडता है।

हिन्दी मे प्रेमाख्यानको के कहा (कथा), कहाणी (कीर्तिलता), चरित, रास या रासो, वार्ता (छिताईवार्ता) आदि नाम मिले हैं। आज भी गुजराती मे कहानी को वार्ता ही कहते हैं। ख्यात और बात ये दोनो शब्द पुरानी राजस्थानी मे प्रचुर सख्या मे कथाकाव्यो के नाम के साथ प्रयुक्त हुए हैं। इन आख्यानो मे स्तवन, स्तोत्र, षड्ऋतु-वर्णन, बारह-

---

१ डा० सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० ४६७-६८

२ डा० शिवप्रसाद सिंह, सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० ३१५

मासा, उपालभ, मगल, विआहलो, प्रहेलिका, फागु, धमाल, चाचरी, नख-शिख आदि अनेक काव्यरूप अन्तर्भुक्त मिलेगे। पद्मावत मे स्तवन, बारहमासा, षड्ऋतु-वर्णन, नखशिख आदि मिल जाते है। रसरतन मे स्तोत्र, स्तवन, नखशिख, विवाहलो, राजप्रशस्ति, नायिकाभेद, बारहमासा आदि कई काव्यरूप अन्तर्भुक्त दिखाई पडते है।

शिल्प के अन्तर्गत शैली, काव्यरूप, कथाविन्यास और कथातत्त्वो को भी समाविष्ट करना चाहिए। यद्यपि वटवृक्ष का बीज अत्यधिक सूक्ष्म होता है तथापि उसके अन्दर एक विशाल वटवृक्ष का रूप छिपा रहता है। ठीक वैसे ही 'शिल्प' शब्द के उल्लेख मात्र से रचना ( कथा-वार्ता, चरित, आख्यान आदि ) की रचना-प्रक्रिया का—भाव से अभि-व्यक्ति और उसके माध्यम तक की रचना-प्रक्रिया का—बोध होता है। शिल्प का मैने उसी व्यापक अर्थ मे प्रयोग किया है।

मानवशरीर पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश पाच तत्त्वो से निर्मित होता है, हाथ, पैर, आख, कान आदि उसके अग-प्रत्यग होते है। यदि शरीर का एक भी अग-भग है तो वह पूर्ण सुख से वचित रहेगा। कथा का निर्माण भी अलग-अलग तत्त्वो के मेल से होता है। कथा के उन तत्त्वो मे से यदि किसी तत्त्व का शिल्प-गठन कमजोर हुआ तो वही कथा का दोष बन जायेगा। दूसरे शब्दो मे यह कि कथा के विभिन्न अगो मे सामंजस्य ही कथा को प्रभावोत्पादक और ग्राह्य बनाता है। कथा को विभिन्न तत्त्वो के माध्यम से, उसकी पूर्णता को समझने का एक शिल्प होता है। सस्कृत साहित्य-शास्त्रियो ने वस्तु, नेता और रस को कथा के तीन तत्त्व स्वीकार किये है। प्राकृत भाषा के वसुदेवहिण्डी नामक ग्रन्थ मे कथा के छ अगो का उल्लेख किया गया है

१ कथोत्पत्ति—कथा की उत्पत्ति कैसे हुई, इसका विवरण।
२ प्रस्तावना—कथा की पृष्ठभूमि।
३ मुख—कथा का आरम्भ।
४ प्रतिमुख—कथा के आरम्भोपरान्त फल की ओर गमन।
५ शरीर—कथा का विकास और प्राप्ति, प्रयत्न और नियताप्ति की स्थिति।

६ उपसहार—फल की प्राप्ति ।[1]

पउमचरिय मे चरित के अवयवो की सख्या सात मानी गई है और इन अवयवो की पूर्णता के ऊपर ही चरित की सम्पूर्ण स्थिति निर्भर करती है। वे सात अवयव इस प्रकार है

१ स्थिति—देश, नगर, ग्राम आदि का वर्णन ।

२ वशोत्पत्ति—वश, माता-पिता, ख्याति आदि का वर्णन ।

३ प्रस्थान—विवाह, उत्सव, राज्याभिषेक प्रभृति का वृत्तात ।

४ रण—राज्यविस्तार या राज्य-सरक्षण के लिए युद्ध ।

५ लवकुशोत्पत्ति—साधारण क्षेत्र मे या अन्य चरितो मे सन्तानोत्पत्ति ।

६ निर्वाण—ससार मे विरक्ति, आत्मकल्याण मे प्रवृत्ति एव धर्मदेशना श्रवण या वितरण आदि का निरूपण।

७ अनेक भवावली—अनेक भवावलियो का वर्णन, भवान्तर या प्रासगिक कथाओ का सघन वितान ।

कथा के उपर्युक्त अग-विवेचन से यह स्पष्ट है कि कथा की पूर्णता और अपूर्णता इन्ही कथा-तत्त्वो अथवा अगो पर निर्भर करती हैं। हिन्दी साहित्य के समीक्षको ने कथा के कथानक, पात्र, कथोपकथन या सवाद, वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य छ तत्त्व माने हैं। कहानी, नाटक, उपन्यास और कथाकाव्यो की समीक्षा की कसौटी के लिए भी यही छ तत्त्व स्वीकृत है। कथा के निर्माण के लिए कथानक का होना अनिवार्य शर्त है। स्पष्ट है कि कथावस्तु ही नही होगी तो कथा का अस्तित्व ही खतरे मे पड जायेगा। कथावस्तु के लिए कथानियोजन का चातुर्य आवश्यक है। यह कथाकार की क्षमता पर निर्भर करता है। साहित्य समाज का दर्पण इसीलिए कहा गया है कि लेखक गतिमान् ससार से ही कथावस्तु का नियोजन करता है और उसे समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है। कथानक मे घटनाओ और परिस्थितियो की कुतूहलपूर्ण योजना ही कथा की महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है। अपभ्रंश साहित्य के कथाकारो ने भविसयत्तकहा, पउमचरिउ, करकडुचरिउ, जसहरचरिउ आदि रच-

---

[1] वसुदेवहिण्डी, प्रका०—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, पृ० १

नाओ के कथा-सगठन मे अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। कथा की सफलता कथानक के प्रयोग या उसके विकास पर ही निर्भर करती है। कथावस्तु की रोचकता के लिए आवश्यक है कि उसमे प्रयुक्त घटनाएँ अस्वाभाविक न हो, इसीलिए कथानक मे घटनाओ के स्वाभाविक विकास और प्रवाह का विशेष ध्यान रखा जाता है। प्राय कथानक दो प्रकार के होते हैं : ( १ ) साधारण अथवा स्थूल कथानक, ( २ ) जटिल अथवा सूक्ष्म कथानक।

साधारण या स्थूल कथानक मे चरित्र-चित्रण पर लेखक का ध्यान स्वभावत नही पहुँच पाता, वह घटनाओं की परिधि मे ही घिर जाता है। सूक्ष्म कथानको मे चरित्रोद्घाटन और मनोविश्लेषण के लिए पर्याप्त स्थान रहता है। वहा वातावरण के सर्जन मे घटनाओ को भग नही जाता। कथावस्तु मे कथानक के विकास की पाँच स्थितियाँ होती हैं— शीर्षक, प्रारम्भ, आरोह, मध्यविन्दु और अन्त। कथा के शीर्षक का चुनाव करना भी एक कला है। कुछ कथाओ के शीर्षक उनके प्रधान पात्रों अथवा नायको के नाम से मिलते है और कुछ 'प्रधान पात्राओ के नाम पर। अपभ्रंश मे अधिकाश कथाए नायको के नाम से ही हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानको मे, विशेषकर सूफियो मे, नायिकाओ के नाम पर ही कथाओ के शीर्षक रखे गए, जैसे—पद्मावती, मृगावती, मधुमालती, कनकावली, पुहुपावती, रतनावली, कवलावती आदि। लगता है यह भी कालगत रूढि ही चली आई थी। कुछ कथाओ के शीर्षक विषय के आधार पर भी रखे जाते हैं।

दूसरा कथा-तत्त्व पात्रो के निर्माण का है। कथावस्तु को सजीव बनाने के लिए पात्रो का होना नितान्त आवश्यक है। पात्रो के निर्माण मे कथाकारो को स्वाभाविक, सजीव और कथा के अनुकूल पात्रो का चुनाव करना होता है। विशिष्ट कथाकार की प्रमुख विशेषता यही है कि वह कथा मे ऐसे जीवन्त पात्रो का चुनाव करे कि वे परिस्थितियो के अनुकूल हो।

पात्रो के निर्माण का प्रश्न जहा समाप्त हुआ वही कथोपकथन का प्रश्न प्रारम्भ होता है। घटनाक्रम को आगे बढाने के लिए तो कथोपकथन का होना आवश्यक है ही, कथा मे रोचकता और प्रभावना लाने के लिए

भी उसका होना आवश्यक है। कथोपकथन से ही कथा मे कुतूहल तत्त्व का समावेश होता है।

वातावरण देश, काल और परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिए। पात्रो और घटनाओ को वातावरण के साथ मेल खाना चाहिए। क्योकि वातावरण का सीधा सम्बन्ध पात्रो, घटनाओ और परिस्थितियो से ही होता है। वातावरण की कल्पना दो प्रकार की कीगई है १ बाह्य, २ आभ्यन्तर। बाह्य वातावरण से तात्पर्य सामाजिक बाह्य स्थितियो से है। आभ्यन्तर वातावरण मानसिक विचारधारा का बोध कराता है। यो दोनो ही एक-दूसरे के पूरक है।

कथा-तत्त्वो मे भाषा-शैली को सर्वाधिक महत्त्व देना चाहिए। कथा पाठक को तभी आकर्षित कर सकती है जब वह बोधगम्य हो। न तो इतनी दुरूह और नीरस हो कि पाठक उसे देखकर ही छोड दे और न इतनी चटकीली ही हो। भाषा बोधगम्य, प्रवाहपूर्ण और युगानुरूप होगी तभी वह पाठक को आकर्षित कर सकेगी। भाषा स्वाभाविक हो और पाठक की कुतूहल वृत्ति को जाग्रत करने की क्षमता रखती हो यही उसकी कथागत विशेषता होगी। रसरतन की भाषा मे यह गुण है।

अतिम कथा का तत्त्व उद्देश्य है। ऐसा लोकव्यवहार मे देखा जाता है कि निरुद्देश्य कोई कार्य नही किया जाता। तब कथाएँ क्यो निरुद्देश्य लिखी जाने लगी? "सकल शृङ्गारो से युक्त कन्यालाभ ही कथा का उद्देश्य है" यह आचार्य रुद्रट का मत है किन्तु हिन्दी प्रेमाख्यानको मे इसे ही एकमात्र उद्देश्य नही माना गया है। कन्यालाभ मनुष्य के पुरुषार्थों मे सिर्फ काम के साथ सम्बद्ध है। भारतीय प्रेमाख्यानको मे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की सम्यक् सिद्धि पर भी ध्यान दिया गया है। कथा मे रस के लिए कन्या-प्रसग पर जोर अवश्य ही ज्यादा दिया जाता है। अपभ्रंश-प्राकृत प्रेमाख्यानको मे भी कन्यालाभ से ही मात्र उद्देश्य की पूर्ति नही होती। यहाँ दोहरी स्थिति उपस्थित हो जाती है—या यो कहे कि कन्यालाभ तो होता ही है, धर्मलाभ भी होता है। इसका मूलभूत कारण यह है कि प्राकृत-अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक हो अथवा अन्य ग्रन्थ, प्राय ही जैनो द्वारा जैन सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिए रचे गये। अत थानक चाहे जिस ढग के रचे गये, वहाँ व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष-

प्राप्ति ही माना गया। ये ग्रन्थ तब प्रेमाख्यानकों की साहित्यिक कोटि में कैसे रखे जा सकते हैं? इस प्रसग में इतना कहना पर्याप्त होगा कि जैनाचार्यों ने, सुन्दर अलकारों से विभूषित, सुस्पष्ट मधुरालाप और भावों से नितान्त मनोहर तथा अनुरागवश स्वय ही शय्या पर उपस्थित नववधू की तरह सुगम, सुश्राव्य, मधुर, सुन्दर शब्दावली से गुम्फित, कौतूहलयुक्त, सरस और आनन्दानुभूति उत्पन्न करने वाली कथा होती है, यह परिभाषा दी है। इन सब मूल्यों के रहते उद्देश्य में यदि प्राय सभी एक ही तरह के उद्देश्यों को लेकर रचनाओं का अन्त करने की परम्पराओं में बँधे है तो भी हमारे साहित्यिक स्तर में उनसे कोई बाधा नहीं आती। द्रष्टव्य यह है कि अपभ्रश की उद्देश्य वाली परम्परा से हिन्दी के सभी प्रेमाख्यान अछूते रहे ऐसी बात भी नही है। कथातत्त्वों के निरूपणोपरान्त कथानियोजन पर एक दृष्टिपात आवश्यक है।

चित्रकार किसी चित्र को तूलिका आदि लेकर अकस्मात् नही रच डालता, अपितु चित्र का खाका प्रथम मस्तिष्क मे और तब चित्रपटल पर उकेरता है। भवनशिल्पी भी भवन-निर्माण के पूर्व भवन का मानचित्र बनाता है। इसी प्रकार कथाकार कथानियोजन करता है। यहाँ यह विचार करना अपेक्षित नही कि नियोजन की क्या प्रक्रिया होती है। प्रक्रिया तो कथाकार के ऊपर निर्भर करती है। वह चाहे कल्पित कथानक गढकर कथा को रूप दे, चाहे तो ऐतिहासिक घटना को कथा का आधार बनाये अथवा लोक-वार्ताओं को कथा मे ढाल दे और वह सभी से कुछ न कुछ ग्रहणकर एक नया आयोजन प्रस्तुत करे। तात्पर्य यह कि कथाकार को कथा के लिखने के पूर्व उसका नियोजन करना आवश्यक है। चेखव का कथन है कि 'यदि कोई कलाकार मुझसे बिना किसी नियोजन के कहानी लिखने की शेखी के साथ केवल प्रेरणा से

---

१ सालकारा सुहया ललिय-पया मउय-मजु-सलावा।
सहियाण देइ हरिस उव्वूढा णव-वहू चेव ॥
सुकइ-कहा-हय-हियमाण तुम्ह जइ विहुण लग्गए एसा।
पोढा-रयाओ तह वि हु कुणइ विसेस णव-वहुव्व ॥

—कुवलयमाला, पृ०

कहानी लिखने का दम भरता है तो मै उसे झक्की कहूगा।' यदि कथाकार कथानियोजन को स्वीकारता है तो उसकी कोई कमजोरी नही है। कविता, मुक्तक या गीत बिना नियोजन के एक उद्गाररूप मे सामने आ सकते है। फिर भी उसमे किसी न किसी वाह्य या अन्तस्थ सूक्ष्म नियोजना को स्वीकार करना ही होगा। जॉयस केरी का मत है कि लेखक लिखने के पूर्व अपने से पूछता है कि 'मुझे कैसे चरित्रो की आवश्यकता है ? प्रमुख पात्र किस प्रकार के हो ? पृष्ठभूमि क्या हो ? सामान्य योजना क्या हो ? यहाँ तक कि यदि वह कथा प्रारम्भ करते समय कथावस्तु का नियोजन नही करता तो भी अपने पात्रो के चुनाव मे तथा क्रियात्मक प्रणाली के लिए एक सामान्य विचार तो स्थिर करता ही है।'[2]

कथा की परिभाषा के सम्बन्ध मे प्रबन्ध के प्रास्ताविक मे रुद्रट की मान्यता का मैने उल्लेख किया था। वे मानते हैं कि कथा के प्रारम्भ मे इष्ट देव-गुरु आदि को नमस्कार करने के बाद अपने कुल का और कर्ता का उल्लेख करना चाहिए। कथा का उद्देश्य सकल शृङ्गार से युक्त कन्याप्राप्ति है। अस्तु, इस परिभाषा के अनुसार प्रेमाख्यानको को देखने से लगता है कि अधिकाश ने अपनी कथा-नियोजन की यही प्रणाली रखी है। पुहकर ने अपनी रचना रसरतन को 'दतकथा' कहा है। जैसा कि इस सदर्भ मे पहले कह दिया गया है कि कथा का नियोजन काल्पनिक आधार पर किया गया है अथवा ऐतिहासिक या इतिहास और कल्पना के

---

1 " If an artist boasted to me of having written a story without a previously settled design, but by inspiration, I should call him a lunatic "—Novelist on the Novels

2 'He asks himself to start with 'what character shall I need ' What kind of leading characters ? What background ? What general scheme ?' Even if he does not design a plot to begin with, he forms, and has to form, a general idea of working out in action of his choice of charac.ers" —Joyce Cary, Art and Reality, p 96

**जिहि कारन भव दधि मथ्यौ, अरु दुष सह्यो अपार।**
**जप तप सो त्रिय पाइ कै, त्रिपित भये तिहि वार॥** स्वयवरखड, ३२६

किन्तु रसरतन का कथाकार रुद्रट की परिभाषा मे ही बधा नही रहता। वह अन्त मे अद्वैतदर्शन के आधार पर सृष्टि, जीव और मुक्ति का रहस्य समझाता है। इस पूरी कथा को एक आध्यात्मिक अर्थ दे देने का सकेत भी करता है।

सूफी प्रेमाख्यानको मे भी कथानियोजन की दृष्टि से कोई मौलिक अन्तर नही दिखाई पडता। यहाँ कतिपय उदाहरणो से बात स्पष्ट हो जायेगी। चन्दायन मे काव्य के आरम्भ मे सृष्टिकर्ता की स्तुति की गई है[1]

**पहिले गावउं सिरजनहारा। जिन सिरजा इह देवस बयारा॥१॥**
**सिरजसि धरती और अकासू। सिरजसि मेरु मंदर कबिलासू॥२॥**

इसके बाद पैगम्बर को स्तुति इस प्रकार की है[2]

**पुरुख एक सिरजसि उजियारा। नाँउ मुहम्मद जगत पियारा॥१॥**
**सहिं लगि सबै पिरिथिमी सिरी। औ तिह नाँउ मौनदी फिरी॥२॥**

चार यार का उल्लेख[3]

**अबाबकर उमर उसमान, अली सिंघ ये चारि॥६॥**
**जे निदतु विज तिस, तुरहि झाले मारि॥७॥**

शाहेवक्त फिरोजशाह की सराहना[4]

**साहि फिरोज दिल्ली वड राजा। छात पाट औ टोपी छाजा॥१॥**
**एक पण्डित औ है पडिब्राहा। दान अपुरिस सराहै काहा॥२॥**

गुरु-प्रशसा

**सेख जैनदी हो पथिलावा। धरम पन्थ जिह पाप गंवावा॥१॥**
**पाप दीन्ह मै गाग वहाई। धरम नाव हौं लीन्ह चढाई॥२॥**

तदनन्तर नगरवर्णन से कथा आरम्भ होती है। इसी तरह मझनकृत मधुमालती मे भी प्रथम ईश्वर की वन्दना है—१-७ तक।

---

१-४ चन्दायन, स०—डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ० ८१-८२

**जिहि कारन भव दधि मथ्यौ, अरु दुष सह्यो अपार।**
**जप तप सो त्रिय पाइ कै, त्रिपित भये तिहि वार॥** स्वयंवरखंड, ३२६

किन्तु रसरतन का कथाकार रुद्रट की परिभाषा मे ही बधा नही रहता। वह अन्त मे अद्वैतदर्शन के आधार पर सृष्टि, जीव और मुक्ति का रहस्य समझाता है। इस पूरी कथा को एक आध्यात्मिक अर्थ दे देने का सकेत भी करता है।

सूफी प्रेमाख्यानको मे भी कथानियोजन की दृष्टि से कोई मौलिक अन्तर नही दिखाई पडता। यहाँ कतिपय उदाहरणो से बात स्पष्ट हो जायेगी। चन्दायन मे काव्य के आरम्भ मे सृष्टिकर्ता की स्तुति की गई है[1]

**पहिले गावउं सिरजनहारा। जिन सिरजा इह देवस बयारा॥१॥**
**सिरजसि धरती और अकासू। सिरजसि मेरु मंदर कबिलासू॥२॥**

इसके बाद पैगम्बर की स्तुति इस प्रकार की है[2]

**पुरुख एक सिरजसि उजियारा। नाँउ मुहम्मद जगत पियारा॥१॥**
**सँहि लगि सबै पिरिथिमी सिरी। औ तिह नाँउ मौनदी फिरी॥२॥**

चार यार का उल्लेख[3]

**अबाबकर उमर उसमान, अली सिंघ ये चारि॥६॥**
**जे निदतु विज तिस, तुरहि झाले मारि॥७॥**

शाहेवक्त फिरोजशाह की सराहना[4]

**साहि फिरोज दिल्ली बड राजा। छात पाट औ टोपी छाजा॥१॥**
**एक पण्डित औ है पडिन्नाहा। दान अपुरिस सराहै काहा॥२॥**

गुरु-प्रशसा

**सेख जैनदी हो पथिलावा। धरम पन्थ जिह पाप गंवावा॥१॥**
**पाप दीन्ह मै गाग बहाई। धरम नाव हौं लीन्ह चढाई॥२॥**

तदनन्तर नगरवर्णन से कथा आरम्भ होती है। इसी तरह मझनकृत मधुमालती मे भी प्रथम ईश्वर की वन्दना है—१-७ तक।

---

१-४ चन्दायन, स०—डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ० ८१-८२

मुहम्मद साहब की प्रशसा

मूल मुहम्मद सभ जग साखा। विधि नौ लाख मटुक सिर राखा॥
ओहि पटतर दोसर कोइ नाही। वह सरीर यह सभ परिछाही॥
ऊचै कहौं पुकारि कै जगत सुनै सभ कोई।
परगट नाउं मुहम्मद गुपुत जो जानिय सोइ॥ ८॥

चार यार का उल्लेख

अब सुनु चहू मीत कै बाता। सत नियाउ सास्तर के दाता॥
प्रथमहि अबाबकर परवाना। सत गुर वचन मन जिय जाना॥
दूजें उमर नियाउ के राजा। जेइं सुत पितैं हना विधि काजा॥
तीजें ठाउ राउ उसमाना। जेइं रे भेद बेद का जाना॥
चौथें अली सिंघ वहु गुनी। दान खरग जेइ साधी दुनी॥ ९॥

शाह सलीम शाहेवक्त के वर्णन के बाद गुरु की स्तुति इस प्रकार है

सेख बडे जग विधि पियारा। ज्ञान गरुअ औ रूप अपारा॥
संवरि नाउ परसै जौ आवै। ज्ञान लाभ होइ पाप गंवावै॥
गुरु दरसन दुख धोवन धनि धनि दिस्टि जो भाउ।
जो गुरु सिक्ख दिस्टि प्रतिपालै सो चारिहुं जुग राउ॥१४॥

इसके बाद पीर औलिया आदि की प्रशसा के बाद नगरवर्णन से कथा प्रारम्भ होती है। इन उदाहरणो को देने का उद्देश्य सिर्फ इतना है कि इसी ढग पर मिरगावती, पद्मावत, चित्रावली आदि सभी प्रेमाख्यानको मे कथानियोजन का ढग रहा है।

सभी कथाएँ अपने-अपने विपयानुकूल परिस्थितियो मे ढले रहने पर भी एक ही क्रम से आगे बढती हैं। प्राय ही राजा या रानी अथवा दोनो नि सन्तान होने के कारण दु खी रहते है। भगवद्भक्ति अथवा किसी महात्मा की कृपा से पुत्ररत्न या कन्यारत्न की प्राप्ति होती है। पुत्रोत्पत्ति पर नाना ज्योतिपाचार्य जुटते है। पुत्र अत्यधिक भाग्यवान् होता है परन्तु विरह का दु ख उसके भाग्य मे लिखा रहता है जो अपनी अवधि मे समाप्त हो जायेगा आदि भविष्यवाणियाँ की जाती हैं। भविष्यवाणियाँ सच घटित होती है।

चन्दायन में लोरक ने चन्दा को पाने के लिए योगी का वेश धारण किया तो पद्मावत में रतनसेन पद्मावती के लिए योगी बना। मधुमालती में मनोहर ने अपनी प्रेयसी को पाने के लिए योग रमाया और चित्रावली में सुजान भी योगी बनता है। इस तरह के प्राय ही समान प्रसंग प्रेमाख्यानकों के कथा-नियोजन में मिलते हैं। अपने पूर्ववर्ती अपभ्रंश चरित-कथाकाव्यों की पृष्ठभूमि में प्रणीत हिन्दी प्रेमाख्यानकों में कथाभिप्रायों की भी कमी नहीं है। वास्तव में किसी भी कथा के कथानक को गति प्रदान करने में 'अभिप्राय' अथवा कथानकरूढ़ि अद्वितीय साधन है।

वर्तमान में हम जिस 'कथाभिप्राय' शब्द का प्रयोग करते हैं साहित्य-शास्त्र में उसे 'कविसमय' कहा गया है। राजशेखर ने अशास्त्रीय, अलौकिक और परम्परागत जिन अर्थों को कवि उपनिबन्धित करते हैं—कविसमय की संज्ञा दी है।[1] 'कथाभिप्राय' के सन्दर्भ में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि अभिप्राय सर्वथा असत्य या अशास्त्रीय नहीं होते। प्रतीकरूप में प्रयुक्त अभिप्राय अपना निजी मूल्य रखते हैं। मूलतः 'कथाभिप्राय' का प्रयोग हिन्दी में 'मोटिफ' के लिए किया जाता है। शिप्ले के अनुसार 'अभिप्राय' वह शब्द या ढाँचे में ढला विचार है जो समान परिस्थितियों में या समान मनःस्थिति उत्पन्न करने के लिए किसी एक कृति अथवा विभिन्न कृतियों में पुनः-पुनः आता है।[2] इस परिभाषा को युक्तिपूर्ण कहना संगत होगा। 'अभिप्राय' कथानक में घटनाक्रम के अनुसार कथा में नया मोड़ लाने के लिए अथवा चमत्कार दिखाने के लिए भी प्रयुक्त किये जाते हैं। 'अभिप्राय सबसे छोटा, पहचान में आने वाला तत्त्व है जो कि एक सम्पूर्ण कहानी का निर्माण कर देता है।'[3]

---

१ अशास्त्रीयमलौकिकं च परम्परायातं यमर्थमुपनिबध्नन्ति कवयः स कविसमयः।—काव्यमीमांसा, पृ० १९०.

2 'Motif—A word or a pattern of thought which recurs in a similar situation or to evoke a similar mood within a work or in various works of a genre'—T Shiple, Dictionary of World Literature, p 274

3 The motif is the smallest recognizable element that goes to make up a complete story—Ibid, p 247

हिन्दी-जगत् में कथानक-रूढ़ियों के प्रथम प्रस्तोता हैं आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी। ऐतिहासिक चरितकाव्यों के प्रसंग में आचार्य जी ने लिखा है—'ऐतिहासिक चरित का लेखक सम्भावनाओं पर अधिक बल देता है। सम्भावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ कि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय दीर्घकाल से व्यवहृत होते आ रहे हैं जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और आगे चलकर कथानक-रूढ़ि में बदल जाते हैं।'[1] कथानकरूढ़ि के स्रोतों के रूप में लोक-साहित्य या लोककथाओं को स्वीकार किया जा सकता है। ब्लूमफील्ड, पेंजर, बेनिफी, टानी, वेबर, ब्राउन आदि विद्वान् ऐसे हैं जिन्होंने भारतीय कथानक-रूढ़ियों का विस्तृत विवेचन किया है। कथाभिप्रायों पर विशेष विचार हम अपभ्रंश कथाओं की कथानक रूढ़ियों का विश्लेषण करते समय अगले अध्याय में करेंगे। कथाभिप्राय विषय की दृष्टि से घटनाप्रधान अथवा लोकविश्वासों पर आधारित और विचारप्रधान अथवा कवि-कल्पित दो प्रकार के होते हैं। इन्हीं से अनेकों उपभेद हो जाते हैं।

रासो की कथानकरूढ़ियों पर विचार करते समय आचार्य हजारी-प्रसाद जी ने जिन कथाभिप्रायों का उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं

१ कहानी कहने वाला सुग्गा, स्वप्न में प्रिय का दर्शन, चित्र देखकर, भिक्षुओं आदि से सौन्दर्यवर्णन सुनकर किसी पर मोहित होना, २ मुनि का शाप, ३ रूप-परिवर्तन, ४ लिंग-परिवर्तन, ५ परकाय-प्रवेश, आकाश-वाणी, ६ अभिज्ञान या सहिदानी, ७ परिचारिका का राजा से प्रेम और अन्त में उसका राजकन्या और रानी की बहन के रूप में अभिज्ञान, ८ नायक का औदार्य, ९ षड्ऋतु और बारहमासा के माध्यम से विरह-वेदना, १० हंस-कपोत आदि से संदेश भेजना, ११ घोड़े का आखेट के समय निर्जन वन में पहुँच जाना, मार्ग भूलना, मानसरोवर पर किसी सुन्दर स्त्री या उसकी मूर्ति का दिखाई देना, फिर प्रेम और प्रयत्न, १२ विजयवन में सुन्दरियों से साक्षात्कार, १३ युद्ध करके शत्रु से या मत्त हाथी के आक्रमण से या कापालिक की बलिवेदी से सुन्दर स्त्री का

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७४.

उद्धार या प्रेम, १४ गणिका द्वारा दरिद्र नायक का स्वीकार और उसकी माता द्वारा तिरस्कार, १५ भरण्ड और गरुड आदि के द्वारा प्रिय युगलों का स्थानान्तरण, १६ पिपासा और जल की खोज मे जाते समय असुर-दर्शन और प्रियावियोग, १७ ऊजड नगर, १८ प्रिया की दोहद कामना की पूर्ति के लिए प्रिय का असाध्य साधन का सकल्प, १९ शत्रु-सतापित सरदार को उसकी प्रिया के साथ शरण देना और फलस्वरूप युद्ध इत्यादि।[1] नीचे कतिपय प्रेमाख्यानको की कथानक-रूढियो अथवा कथाभिप्रायो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है :

**चन्दायन ( दाऊद ) की कथानक-रूढियाँ**

१ ईश्वर-वदना . मुहम्मदसाहब, चारमीत, शाहेवक्त दिल्ली सुलतान फीरोजशाह की प्रशस्ति आदि।

२ वस्तु-वर्णन के अन्तर्गत नगर तथा उसमे अमराइयो, सरोवरा, मन्दिर, नगर की खाई, दुर्ग आदि का वर्णन।

३ पुरुपत्वहीन पति को छोडकर परपुरुष के साथ भागना।

४ परस्त्री को अन्य पुरुष का भगा ले जाना चाँद लोरक को भागने के लिए तैयार करती है।

५ रूप-गुणजन्य आकर्पण चन्दायन मे रूपचन्द ने जब बाजिर से चाँद की प्रशसा सुनी तो वह व्याकुल हो उठा और उसे प्राप्त करने की चेष्टा मे लग गया।

६ नायिका का अपहरण लोरक चाँद को मदिर मे छोड स्वय बाजार चला जाता है तभी टूँटा अवसर का लाभ उठाता है और चाँद को सम्मोहित करके उसका अपहरण कर लेता है।

७ पत्नी के सतीत्व की परीक्षा लोरक हरदीपाटन से लौटने पर मैना के सतीत्व को परखता है।

८ प्रवासी पति के वियोग मे पत्नी का क्षीण हो जाना : मैना लोरक के विरह मे ( निसदिन झुरवइ आम वैआसी ) रात-दिन झुरसती है।

९ नायक का योगी के वेप मे भटकना चन्दायन मे विरस्पत के कथनानुसार लोरक जोगी वनकर मदिर मे जा वैठा। वह एक वर्प तक मदिर की सेवा और चाँद के प्रेम की कामना करता रहा।

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७४-७५.

१० किसी दैवी शक्ति या गुनी द्वारा नायिका की प्राण रक्षा चन्दायन मे चाँद को दो-दो बार साँप डसता है, परन्तु गुनी आकर उसके प्राणो की दोनो बार रक्षा करता है।

**मंझनकृत मधुमालती की कथानक-रूढियां**

१ मगलाचरण रूप मे स्तुति, मुहम्मद साहब, चारमित्र आदि की प्रशसा। दुर्जन-निन्दा, सज्जन-प्रशसा।

२ कनेगिरगढ नामक नगर का वर्णन।

३ सन्तानहीन राजा सूरजभान का एक तपस्वी को १२ वर्ष की सेवा के बाद सन्तानोत्पत्ति।

४ भविष्यवाणी राजा को पुत्रोत्पन्न हुआ, उसके विषय मे ज्योतिषियो ने भविष्यवाणियाँ की।

५ राजकुमार को शय्यासहित अप्सराओ द्वारा उठा ले जाना राजकुमार मनोहर जब लगभग १५ वर्ष के हुए तो अप्सराओ ने उनके सौन्दर्य के अनुरूप कन्या दिलाने की सोचकर उन्हे मधुमालती के शयनागार मे उनकी शय्यासहित पहुँचा दिया।

६ पूर्वानुराग मनोहर और मधुमालती ने एक-दूसरे को देखकर पूर्वभव से परिचित होने का स्मरण कर लिया और प्रेमासक्त हुए।

७ अभिज्ञान दोनो ने आपस मे मुद्रिकाए बदल ली और सो गए।

८ शय्याओ का पुन यथास्थान पहुँचाना सयोग के बाद अप्सराओ ने पुन राजकुमार को उनकी शय्यासहित घर पहुँचा दिया।

९ नायक का योगी वेष धारण करना मनोहर ने मधुमालती की खोज करने के लिए योगी का वेष धारण किया।

१० जलयान का टूटना और नायक का बचना कुमार मधुमालती की खोज मे चलते-चलते समुद्रतट पर पहुँचे और सदल-बल जलयान पर बैठे। जलयान समुद्र की भवर मे पडकर टूट गया। उसमे से कुमार दैवी-दृष्टि से बच गए और एक घने जगल के पास समुद्र के किनारे जा लगे।

११ असम्भावित घटना द्वारा सहायता वन मे आगे बढने पर मधुमालती की सखी राजकुमारी से भेंट और उसके द्वारा मधुमालती का पता बताना।

१२ प्रेमबाधक तत्त्व वन मे राक्षस से युद्ध और राक्षस का मारा जाना।

१२ राक्षस का प्राण किसी अन्य वस्तु मे राक्षस का प्राण इस कथा मे एक अमृतवृक्ष मे दिखाया गया है।

१४ नायिका का पक्षी बन जाना और पुन नायक का भटकना इस कथा मे मधु की माँ ने प्रेमा के घर पर मनोहर और मधु को मिलते देख लिया था अत लोकभय से मधु को पानी छिडककर पछी बना दिया।

१५ उपनायक की सहायता से मधु पक्षी के रूप से पुन पूर्ववर्ती नारी रूप धारण करती है।

१६ बारहमासा : मधु ने सदेशवाहको से अपना दु ख कहलाया और अपने बारहमास का दु ख भी कहा।

**जायसीकृत चित्ररेखा की कथानक-रूढ़िया**

१ ईश्वरस्तुति, पीर, गुरु, मित्र आदि की प्रशस्ति।

२ वाह्याडम्बरो का खण्डन।

३ राजा चन्द्रभानु के यहाँ गुणवती चित्ररेखा की उत्पत्ति, ज्योतिषियो की भविष्यवाणी कि यह कन्नौज की रानी होगी।

४ कन्नौज के राजा का नि सतान होना। तपश्चरण के बाद पुत्रोत्पत्ति। परन्तु पुत्र के अल्पायु होने की ज्योतिषियो की घोषणा।

५. प्रीतमकुवर का काशी के मार्ग मे मृत्युभय से मूच्छित होना। सिघनदेव का उसी मार्ग से अपने कुबडे वेटे के विवाह के लिए जाना और प्रीतमकुँवर को कुबडे वेटे के स्थान पर वर बनने को राजी करना।

६ सिघनदेव ने उसे वीडा दिया। वर के रूप मे विवाह किया। सातखड के धौरहरे पर चित्ररेखा के साथ सुलाया गया। मृत्यु की याद आते ही चित्ररेखा की साडी पर लिखकर काशी जाना।

७ काशी मे दान देते समय व्यास जी से अचानक "चिरजीव" का आशीर्वाद।

८ चित्ररेखा के आत्मदाह की तैयारी और इसका आयु प्राप्त कर वहाँ पहुँचना तथा चित्ररेखा को पाना।

**पदमावत मे कथानक-रूढियाँ**

१ सिंहलदीप ।

२ सदेशवाहक शुक ।

३ शुक का पकडा जाना और चित्तौड के ब्राह्मण द्वारा खरीदना ।

४ ब्राह्मण से राजा द्वारा क्रय किया जाना ।

५ रानी द्वारा पद्मिनी के सौतरूप मे आगमन की आशका से शुक को मारने का असफल प्रयास ।

६ एक राजा द्वारा शुक से पद्मिनी का रूप-वर्णन सुना जाना और मोहित होना ।

७. राजा द्वारा पहली रानी, राज्यादि का त्यागकर शुक का अनुगमन करना ।

८ राजा नौका से सात समुद्र पार करता है ।

९ सिंहल के अगम्य गढ मे रानी का निवास ।

१० शिव-मदिर मे राजा की तपस्या और वसतपचमी के दिन पद्मिनी का आगमन ।

११. राजा का मूर्च्छित होना और पद्मिनी का राजा की छाती पर कुछ सदेश लिखकर जाना ।

१२ सुध आने पर राजा का दु ख ।

१३. राजा की प्रेम परीक्षा—पार्वती द्वारा ।

१४. महादेव जी द्वारा गढ का मार्ग बताना और सिद्धि प्रदान करना ।

१५ गढ पर चढाई, अगाध कुड मे प्रवेश कर वज्र किवाडो को खोलना ।

१६. राजा का महल मे पकडा जाना और सूली पर चढाने का आदेश ।

१७. शिव-पार्वती का वेश बदलकर पद्मिनी के पिता को समझाना और उसका न मानना ।

१८. युद्ध की घोषणा, जोगी राजा की ओर से हनुमान, विष्णु और शिव को देख पद्मिनी के पिता का हार मानना ।

१९. पद्मावती रत्नसेन की हुई ।

२० नागमती ने पक्षी द्वारा रतनसेन को अपना सदेश भेजा ।

२१ रतनसेन बहुत सामग्री और पद्मावती को लेकर सिंहल से विदा हुआ।

२२. समुद्र का याचक बनकर धन मागना और राजा का निषेध।

२३. समुद्र मे तूफान से अटककर जहाज लका पहुँच गये जहा एक राक्षस भुलावा देकर एक अन्य समुद्र मे ले गया।

२४ राक्षस का राजपक्षी द्वारा लेकर उड जाना।

२५ जहाज टूट गया, रतनसेन और पद्मावती अलग-अलग बह गये।

२६ पद्मावती को लक्ष्मी ने बचाया।

२७. लक्ष्मी का रतनसेन को लाने का आश्वासन।

२८. रतनसेन की समुद्र ने ब्राह्मण का वेश धारणकर सहायता की ओर जहाँ पद्मावती थी वहाँ ले गया।

२९ लक्ष्मी द्वारा रतनसेन की परीक्षा।

३०. समुद्र ने अमृत, हस, सोनहा पक्षी, शार्दूल और पारस पत्थर देकर रतनसेन को विदा किया।

३१ लक्ष्मी के दिये बाडे म रत्न लेकर लाव-लश्कर जगन्नाथ मे खरीदा और चित्तौड को चले।

३२ नागमती को देव ने पति के आने की सूचना दी।

३३. एक महापडित राघवचेतन ने आकर काव्य सुनाकर राजा को वश मे कर लिया।

३४ राघव द्वारा यक्षिणी-सिद्धि से प्रतिपदा को दूज का चन्द्रमा दिखाया जाना और पडितो का अपमान।

३५ राघवचेतन को देश-निकाला।

३६ राघवचेतन द्वारा पद्मिनी का दर्शन और उसका कगन ग्रहण करना।

३७ पद्मिनी के रूप से वह बेहोश हो गया।

३८ राघव द्वारा अलाउद्दीन से पद्मिनी के सौन्दर्य का बखान और अमोल रत्नो की सूचना।

३९ अलाउद्दीन का रतनसेन को पत्र और रतनसेन द्वारा अस्वीकृति।

४० घमासान युद्ध।

४१ कन्नौज के मलिक जहांगीर ने अलाउद्दीन के कहने पर नृत्य करती हुई एक नर्तकी पर बाण द्वारा प्रहार।

४२ अलाउद्दीन और रतनसेन में संधि।

४३ अलाउद्दीन चित्तौड देखने गया। झरोखे से पद्मिनी का दीखना और सुलतान का बेहोश हो जाना।

४४. गढ से लौटते हुए शाह ने राजा को धोखे से वन्दी बनाया।

४५ राजा देवपाल द्वारा पद्मिनी को फुसलाने के लिए दूती भेजी।

४६. दूती की असफलता और उसका निष्कासन।

४७ शाह द्वारा पातुर जोगिन दूती को पद्मावती के पास भेजना।

४८. जोगिन के कहने से पद्मावती तैयार हुई पर सखियो ने रोका।

४९. गोरा-बादल द्वारा रतनसेन को छुडाने का वचन।

५०. बादल की नव-विवाहिता पत्नी द्वारा उसे रोका जाना और उसका न रुकना।

५१. सोलह सौ डोलियाँ सजाई गईं जिनमे पद्मिनी की सखियो के स्थान पर सैनिक दिल्ली गये।

५२. शाह से पद्मिनी को सोलह सौ सखियो के साथ आगमन की सूचना देकर रतनसेन से प्रथम मिलने की आज्ञा प्राप्त करना।

५३. इस विधि से रतनसेन का छुडा लेना और रतनसेन का चित्तौड की ओर आना।

५४. बादल रतनसेन के साथ चित्तौड लौटा, गोरा ने शाह की सेना को रोका, युद्ध मे मारा गया।

५५. राजा चित्तौड पहुचा। पद्मावती द्वारा देवपाल की दूती का समाचार देना।

५६. राजा ने देवपाल पर चढाई की और उसे मार डाला।

५७. राजा को देवपाल की सेल का घाव लग जाने से उसकी मृत्यु।

५८. नागमती व पद्मावती का सती होना।

**लक्ष्मणसेन-पद्मावती की कथानक-रूढियाँ**

( यह कथा सूफी प्रेमाख्यानको से भिन्न है )

१ प्रारम्भ मे मगलाचरणरूप मे गणपति को नमस्कार किया

---

१ डा० सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० २७९-८२.

गया है।

२. सिद्धनाथ नामक योगी कापालिक आकाश मार्ग से गमन करता और सर्वत्र उत्पात मचाता है।

३. पद्मावती नामक राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए उसने एक सौ राजाओ के शिरोच्छेदन का प्रण किया और सबका अपहरण करके अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक कुएँ मे डाल दिया।

४. लक्ष्मणसेन को भी छल करके सिद्धनाथ ने कुएँ मे डाल दिया।

५. लक्ष्मणसेन ने सभी राजाओ को मुक्त किया। इस पराक्रम से वह अत्यधिक थक गया और प्यास से व्याकुल हो जल की तलाश मे सामोर नगर के पास एक सरोवर के तट पर पहुँचा। वहाँ पद्मावती के साक्षात् दर्शन से उसके प्रति आकृष्ट हुआ।

६. कवि ने पद्मिनी, चित्रणी, शखिनी और हस्तिनी के भेद से स्त्रियो का परिचय कराया है।

७. पद्मावती के स्वयवर मे लक्ष्मणसेन ने ब्राह्मण के वेष मे सभी राजाओ को परास्त करके पद्मावती का वरण किया।

८. योगी ने राजा से पद्मावती के प्रथम पुत्र की याचना की। पुत्रोत्पत्ति के बाद राजा का पुत्र के साथ योगी के पास पहुँचना। योगी के आदेशानुसार पुत्र के चार टुकडे करना। कटे हुए टुकडे चमत्कारिक ढग से खड्ग, धनुष-बाण, वस्त्र और कन्या मे परिवर्तित।

९. राजा का पागल होना और जगल मे जाना। एक धनकुबेर के लडके को डूबने से रक्षा की और उसका कृपापात्र बना।

१०. धारानगर की राजकुमारी से प्रेम और विवाह।

## चतुर्भुजदासकृत मधुमालतीवार्ता की कथानक-रूढ़ियाँ

१. मगलाचरण के रूप मे गणेश जी की वदना।

२. राजा की पुत्री और उसी के मत्री का पुत्र। दोनो का रामसरोवर पर जाना और एक-दूसरे के प्रति आकर्षण।

३. पुरोहित नद के यहाँ राजकुमारी और मत्रीपुत्र का पढने जाना। गुरु की अनुपस्थिति मे राजकुमारी मालती का पर्दा हटाकर मधु को देखना और उससे प्रेम-प्रस्ताव करना।

४. मधु द्वारा मालती को वैषम्य के विषय मे मृग और सिंहनी की कथा द्वारा समाधान करना। परन्तु मालती का भी अपने पक्ष के समर्थन मे दृष्टान्त देना।

५. मधु का हठ और नद के यहाँ पढना बद करना।

६. मधु का गुलेल लेकर रामसरोवर पर विनोदार्थ जाने लगना। वहाँ नगर की अन्य स्त्रियो का पानी भरने के बहाने आना तथा मधु को चाहने लगना।

७. मालती भी अपनी सखी जैतमाल के साथ रामसरोवर आने लगी और व्यग्य करने लगी।

८. मालती द्वारा मधु को पूर्वभव का स्मरण कराना।

९. मालती द्वारा मधु पर वशीकरण मन्त्रो का प्रयोग और गठ-बन्धन।

१०. नवदम्पति का वाटिका मे रहने लगना और माली द्वारा राजा को सूचना। राजा ने दोनो के वध का निश्चय किया।

११. मालती ने भागने की सलाह दी। परन्तु मधु ने अस्वीकार किया और श्रीहरि, सूर्य और शकर से प्रार्थना की। शकरजी ने रक्षा का वचन दिया।

१२. राजा द्वारा वध का प्रयास, मधु द्वारा सभी निष्फल कर दिये गए।

१३. राजा ने पुन विराट सेना भेजी। मालती ने केशव का स्मरण किया। केशव ने रक्षार्थ दो भारड पक्षियो को भेज दिया। शिव-दुर्गा ने एक सिंह भेज दिया। इस प्रकार राजा की चर्म-मडित सेना भी भाग गई।

१४. दुर्गा ने प्रकट होकर राजा की भूल बताई। राजा ने क्षमा-याचना की और मालती तथा जैतमाल का मधु के साथ विवाह किया।

**ति ई ि की कथानक-रूढियाँ**

१. चित्रकला के प्रदर्शन के लिए रामदेव राजा द्वारा नवीन प्रासाद मे चित्रशाला का निर्माण कराया जाना। राजकन्या छिताई का चित्रशाला देखने आना। उसके सौंदर्य को देखकर चित्रकार का मूर्च्छित होना।

२. छिताई के पति सोरसी का मृगया के लिए जाना। मृग भर्तृहरि के आश्रम मे पहुँचा। उनके निषेध करने पर भी सोरसी ने मृग को नही छोडा तो उन्होने छिताई के अन्य पुरुष के वश मे होने का शाप दे दिया।

३. चित्रकार छिताई का चित्र बादशाह अलाउद्दीन को दि
जाकर दिखाता है। बादशाह उसे प्राप्त करने का उपक्रम करने लगता

४. देवगिरि के किले को अलाउद्दीन घेर लेता है। फिर भी
नही पाता। राघवचेतन मत्रशक्ति से हसारूढ पद्मावती का दर्शन व
किले के गुप्त भेदो को जान लेता है।

५. अलाउद्दीन द्वारा प्रेषित दूतियाँ छिताई को पथभ्रष्ट करने
असफल प्रयास करती है।

६ छिताई का सुरग के मार्ग से "शिव-लिंग" पूजन के लिए ज
और अलाउद्दीन द्वारा अपहरण।

७ सोरसी का योगीवेष धारण कर लेना। दिल्ली के निकट
वन मे वीणा निनादित करना जिससे समस्त जीव-जन्तु मुग्ध ह
उसके पास आ गए।

८. एक वीणा, जिसे सोरसी ही बजा सकता था, छिताई ने दिल्
प्रसिद्ध कलाकार गोपाल नायक के यहाँ रख छोडी थी। सोरसी
उसके यहाँ पहुँचा तो उसने वह वीणा बजा दी। छिताई को यह
चार मिला। सगीत आयोजन मे बादशाह द्वारा सोरसी का प
प्राप्त होना और छिताई को उसे सौपना।

### रसरतन की कथानक-रूढियाँ

१ मगलाचरण, शाहेवक्त आदि की प्रशस्ति, दुर्जन-निन्दा, स
प्रशसा आदि।

२ पूर्ववर्ती कवियो का उल्लेख।

३ ईश्वरोपासना से सन्तानहीन दपति को पुत्रोत्पत्ति राजा
श्वर और पटरानी कमलावती को शिवाराधना से पुत्र उत्पन्न होत

४ स्वप्नदर्शन रभा को कामदेव सूर्सेन के रूप मे दर्शन देक
उसी प्रकार रति रभा के रूप मे सूरसेन को स्वप्न दिखाकर
करती है।

५ आकाशवाणी विरहाग्नि से रभा की अवस्था क्षीण हो
है तभी आकाशवाणी होती है।

६ बारहमासा।

७ अभिज्ञान या सहदानी · वैरागर जाकर बुद्धिविचित्र चित्रकार सूरसेन को रभा का चित्र दिखलाता है जिसे पहचानकर उसकी उन्मत्तावस्था दूर हो जाती है, उसी प्रकार सूरसेन के चित्र को देखकर रभा अपने प्रिय को पहचान लेती है।

८. सूरसेन को मानसरोवर के किनारे से उठाकर अप्सराएँ ब्रह्मकुण्ड ले जाती हैं जहाँ वे अपनी शापित सखी कल्पलता का गन्धर्व रीति से विवाह रच देती है।

९ अप्सरा-नृत्य सूरसेन अप्सरा पत्नी से विवाहोपरान्त उसकी सखियो का नृत्य देखता है।

१०. शिव-पूजा के बहाने रभा सूरसेन से आकर मिलती है।

११. राजकुमार सूरसेन रभा का पता लगाने को योगी-वेष धारण करता है।

१२. सूरसेन की वीणा से पशु-पक्षी मोहित हो जाते हैं। चपावती की स्त्रियाँ वीणा सुनकर विपरीत आचरण करने लगती है।

१३. विद्यापति नामक शुक कल्पलता के विरह का सदेश लेकर चपावती आता है।[1]

**समयसुन्दरकृत मृगावती की कथानक-रूढ़ियां**

१. जिनेन्द्र-स्तुति ।

२. रानी मृगावती को रक्त मे स्नान करने का दोहद हुआ।

३. रक्त के स्थान पर राजा ने लाक्षारस से तालाब भर दिया। रानी ने उसमे स्नान किया।

४. रानी स्नान करके तालाब से बाहर निकली तभी गरुड पक्षी ने मासपिंड समझकर उस पर झपट्टा मारा और ले उडा।

५. घने जगल मे गरुड ने रानी को छोड दिया। वही एक ऋषि के आश्रम मे पुत्र उदयन उत्पन्न हुआ।

६. रानी ने उदयन को राजा के नाम से अकित एक आभूपण पहना दिया। भील द्वारा पशु-वध किया जा रहा था। उदयन ने पशु को नही मारने दिया और उसके बदले मे वह आभूपण भील को दे दिया।

---

१ डा० शिवप्रसाद सिंह, रसरतन की भूमिका, पृ० १०७

७. भील आभूषण बेचते समय राजकर्मचारियो द्वारा पकडा गया और राजा के समक्ष ले जाया गया।

८. राजा ने भील से वृत्तान्त जाना और वह आश्रम जाकर मृगावती और उदयन को ले आया।

९ एक चतुर चितेरे ने मृगावती का चित्र बनाया तथा उस चित्र मे मृगावती की जाघ पर तिल का चिन्ह अकित किया।

१०. राजा को चित्रकार के आचरण पर सदेह हुआ अत उसे भला-बुरा कहा।

११. चित्रकार ने बदले की भावना से मृगावती का एक चित्र उज्जैन के राजा चडप्रद्योत को भेट किया। राजा मोहित हो गया।

१२. चडप्रद्योत ने मृगावती की माँग की। कौशाम्बी के राजा द्वारा माँग अस्वीकार कर दी गई। अत घमासान युद्ध हुआ।

१३. अत मे मृगावती ने जैन मुनि से दीक्षा ले ली।

**समीक्षा**

उपर्युक्त प्रेमाख्यानको मे प्रयुक्त कथाभिप्रायो के सामान्य अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रेमाख्यानको मे पक्षी—शुक, गरुड, हंस आदि, दोहद—गर्भवती की इच्छा, स्वप्नदर्शन-चित्रदर्शन आदि द्वारा प्रेमोत्पत्ति, योगी का वेष धारण करना, दैवी सहायता, विरहवर्णन—बारहमासा आदि द्वारा, पहले सन्तानविहीन और तत्पश्चात् शिव-पार्वती या अन्य किसी की कृपा से सन्तानोत्पत्ति होना आदि आदि ऐसी कथानक-रूढियाँ हैं जो प्राय ही आदि से अत तक के कथाकाव्यो मे प्रयुक्त हुई है। एक और कथानकरूढि वस्तुवर्णन के रूप मे कथाओ मे प्रयुक्त होती रही है जिसका उल्लेख भी आवश्यक है। अत वस्तुवर्णन के विषय मे विचार करेगे।

'वस्तुवर्णन काव्य का, चाहे वह किसी विधा का काव्य हो, एक अविभाज्य अग रहा है। भारतीय साहित्य मे वस्तुवर्णन की सूक्ष्मता और रगीनी एक स्तुत्य वस्तु रही है।' डॉ० शिवप्रसाद सिंह का यह कथन वस्तुवर्णन के महत्त्व को रेखाकित करता है। सस्कृत साहित्य के कथा-काव्यो का जिन लोगो ने अध्ययन किया है वह अवश्य ही वस्तुवर्णन के महत्त्व से परिचित होगे। कवि या कथाकार की विस्तृत जानकारी का

परिचय कथाकाव्य के वस्तुवर्णन को देखकर ही लगाया जाता था। बाण का नाम इस प्रसग मे उल्लेखनीय है। परन्तु परवर्ती काल मे वस्तुवर्णन कर्ता को वस्तुओ क ज्ञानाज्ञान की समस्या नही रही। यह एक कविसमय जैसी चीज़ या रूढ परिपाटी हो गई और इसकी एक पद्धति हो बन गई। तब वस्तुओ को जानकारी के लिए कवि ने श्रम और ज्ञान मे रुचि रखना विशेष आवश्यक नही समझा। यही कारण है कि कथाकाव्यो मे वस्तुवर्णन के नाम पर घिसी-पिटी सामग्री ही सामने आती है। जो हो, वस्तुवर्णन के अन्तर्गत किस वस्तु का, किस ढंग से वर्णन किया जाये यह भी निश्चित कर दिया गया। उन्ही मान्यताओ के अनुसार वस्तुवर्णन रूढ हो गया। मैने प्रवन्ध के प्रास्ताविक मे हिन्दी प्रेमाख्यानको के शिल्प को निर्दिष्ट करने के लिए एक कसौटी का उल्लेख किया है। उसी के अन्तर्गत वस्तुवर्णन—नगर, वन, बाग, गिरि, ताल, सरिता, हाट, अश्व, गज, आयुध, सिहासन इत्यादि—का अपना स्थान है। सभी प्रेमाख्यानको का वस्तुवर्णन तो इस स्थान पर करना मेरे लिए असभव होगा। अत हिन्दी-प्रेमाख्यानको मे वस्तुवर्णन के अन्तर्गत आनेवाले तत्वो का आशिक विवेचन करूगा।

आचार्य जिनसेन ( ८वी शताब्दी ) ने आदिपुराण[1] मे नगर-ग्रामो का सविस्तार वर्णन किया है। उन्होने नगरो को खेट[2], खर्वट[3], मडम्ब[4], पत्तन[5] और द्रोणमुख[6] सज्ञाओ के अन्तर्गत रखा है। मानसार, समरागण, मयमत, मानसोल्लास, हरिवशपुराण, अग्नि, गरुड और मत्स्य पुराणो मे इस सदर्भ मे विपुल सामग्री है। मानसार मे नगर की परिभाषा करते हुए बताया गया है कि 'जिस स्थान पर क्रय-विक्रयादि वस्तु-व्यापार होते हो, अनेक जातियो के लोगो और कर्मकारो का जहाँ निवास हो और जहाँ पर सभी धर्मावलम्बियो के देवायतन हो उसे नगर कहते

---

१ आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, १६ १६५-६८.

२ 'सरिद्गिरिभ्या सरुद्ध खेटमाहुर्मनीषिण:' —वही, १६ १७१

३ 'केवल गिरिसरुद्ध खर्वट तत्प्रचक्षते' —वही

४ 'मडम्बमामनन्ति ज्ञा: पचग्रामशतीवृतम्' —वही, १६ १७२

५ 'पत्तन तत्समुद्रान्ते यन्नौभिरवतीर्यते'। — वही.

६ 'भवेद् द्रोणमुख नाम्ना निम्नगातटमाश्रितम्' —वही, १६ १७३

हैं।'[1] हिन्दी साहित्य मे आचार्य केशवदास ने नगर-वर्णन मे आवश्यक वस्तुओ की सूची इस प्रकार दी है :

खाई, कोट, अटा, ध्वजा, वापी, कूप तडाग।
वारनारि असती सती, वरनहु नगर सभाग ॥[2]

वन, बाग, तडागादि का वर्णन करते समय किन वस्तुओ का उल्लेख करना चाहिए, इसका भी निर्देश आचार्य केशव ने किया है।[3] वन-बाग एव सरिता के उद्धरण इस प्रकार हैं[4]

सुरभी, इभ, वन, जीव बहु, भूत, प्रेत भय भीर।
झिल्ल भवन, बल्ली, विटप, दव वरनहु मतिधीर ॥ ६ ॥

बाग-वर्णन

ललित लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल कलरव, मोर।
बरनि बाग अनुराग स्यो, भवर भवत चहु ओर ॥ ८ ॥

सरिता-वर्णन

जलचर हय गय जलज तट, यज्ञकुड मुनिवास।
स्नान दान पावन नदी, वरनिय केशवदास ॥ १४ ॥

हम यह पहले ही कह चुके हैं कि वस्तुवर्णन मे रूढियो का खुलकर प्रयोग हुआ है। जायसी ने पदमावत मे मानसरोवर का वर्णन इस प्रकार किया है[5]

---

१ 'जनै परिवृत्त द्रव्यक्रयविक्रयकादिभि ।
अनेक जातिसयुक्त कर्मकारै समन्वितम् ।
सर्वदेवतसयुक्तं नगर चाभिधीयते ।'

—मानसार, अध्याय १०, नगर विधान

२ आचार्य केशवदास, कविप्रिया, ७ ४

३ विस्तार के लिए आचार्य केशवकृत कविप्रिया देखिए

४ कविप्रिया, ७ ६, ७ ८, ७ १४.

पदमावत, स०—वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३१–३२

लक दीप कै सिला अनाई। वाधा सरवर घाट बनाई॥
खड खंड सोढी भइँ गरेरी। उतरहि चढहि लोग चहुँ फेरी॥
फूला कवल रहा होइ राता। सहस सहस पखुरिन्ह कर छाता॥
उलथहि सीप मोति उतराही। चुगहि हस और केलि कराही॥
कनक पखि पैरहि अति लोने। जानहु चित्र सवारे सोने॥
ऊपर पाल चहुँ दिसि अम्रित फर सब रूख।
देखि रूप सरवर कर गइ पिआस औ भूख॥
पानि भरइ आवहि पनिहारी। रूप सुरूप पदुमिनी नारी॥
पदुम गध तेन्ह अंग बसाही। भवर लागि तेन्ह सग फिराही॥

छिताईवार्ता मे सरोवर का वर्णन इस प्रकार मिलता है

फटिक सिला बैठक अति बनी। छाजैं मौजें मदिर तनी॥
चाप्यो घाट घटाए पाट। नीर भरैं सुन्दरि के ठाट॥
बाला अवला प्रौढा नारि। भरैं णीर न्यमल (निर्मल) पनिहारि।
तिन को रूपु बरनि को कहै। कहत कथा कछु अतु न लहै॥
सोहै कमल कमोदिनि पान। भवर वास रस भूलहि न्यान॥
निमर्सहि हस हंसिनी संग। भरे अनद कुरग कुलंग॥
क्रीलति चकई चक्क चकोर। वन के जीव गुजरहि मोर॥
ढेंकि पखि मटामरे घनै। जल कूकरी आरि अनगनै॥
सारिस बग्ग हस उनहारि। निमसहि पखि सरोवर पारि॥
पुरइन कमल रहे जल छाइ। वहु फुलवारि रही महकाइ॥[1]

पुहुकरकृत रसरतन मे सरोवर-वर्णन के कई प्रसग आये है। जायसी ने जिस सरोवर के घाट और सीढियो का वर्णन किया है वे मात्र लका द्वीप से आये पत्थरो से निर्मित है। परन्तु पुहकर ने जिस सरोवर का वर्णन किया है उसके किनारे विद्रुम के और सीढियाँ मरकत मणियो से निर्मित है

अगनि चौक फटिक मनि साजा। ता मधि अमल सरोवर राजा॥
विद्रुम पारि रची दिसि चारी। मरकत मनको सिढी सवारी॥
नाना वरन सरोवर सोहै। दिजकुल केलि करत मन मोहै॥
—वैरागर० १४०-१४१

१ छिताईवार्ता, स०-डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ६३

रसरतन मे मानसरोवर की शोभा देखिए

तह मानसरोवर सोहन। सुर नाग मनुज नर मोहन ॥
सजि पारि चारिहु ओरई। मन युक्ति मरकत जोरई ॥
रंग अरुन वरनहिं मोहई। सित नील पीतति सोहई ॥
तिहिं तीर चहुदिसि कानन। चित चाह किय चतुरानन ॥
द्रुम साल ताल तमालनं। तह करत षग वन पालन ॥
जल मगन मनकुम पत्तन। जिहिं मध्य मधुकर छत्तन ॥
कलगुञ्ज गुञ्जत राजहीं। जनु मान गध्रप गाजही ॥
—विजयपाल० २३६-२३९.

चतुर्भुजदासकृत मधुमालतीवार्ता मे मानसरोवर की शोभा मुनियों को भी लुब्ध करने वाली है[1]

राम सरोवर ताल की सोभा कही न जाय।
सेत वरण पकज तिहा मुनिवर रहै लुभाय ॥
प्रफुलित कमल बास महमहै। वोपमा मानसरोवर लहै ॥
अबला किती इक पानी भरै। चित्रवत कुभ सीस तें परै॥
रीतै कलस हाथ तें गिरै। भूली मानु बिना भ्रत भरै ॥ इत्यादि।

उपर्युक्त कतिपय प्रेमाख्यानको से उद्धृत सरोवरो के वर्णनो से सहज ही मे पता लगाया जा सकता है कि इनमे कितना साम्य है। रूढि हो जाने के कारण कुछ मे तो खाली पक्षियो आदि के नाम ही गिना दिये जाते हैं। उपर्युक्त प्रेमाख्यानको के पूर्ववर्ती 'चन्दायन' काव्य मे सरोवर-वर्णन के अन्तर्गत जलचर जन्तुओ के नाम इस प्रकार दिये हैं

पैरहिं हस माछ वहिराहैं। चकवा चकवी केरि कराहैं ॥
दवला ढेंक वेंठ झरपाये। वगुला वगुली सहरी खाये ॥
वनलेउ सुवन घना जल छाये। अरु जलकुकुरी वर छाये ॥
पसरी पुरई तूल मतूला। हरियर पात तइ रात फूला ॥
पाखी आइ देस कर परा। कार करजवा जलहर भरा ॥

सारस कुरलहि रात, नींद तिल एक न आवइ।
सवद सुहाव कान पर, जागहिं रैन विहावइ ॥ २२ ॥

---

[1] मधुमालतीवार्ता, स०—वही, पृ० ३

वन, उपवन, बाग, बगीचों का वर्णन इन सभी काव्यों मे मिलता है। रसरतन के वर्णन मे केवल वृक्षो के नाम ही गिना दिए गए है :

सुन्यो पुर मित्र बढ्यो अनुराग। बिलोकित नैन मनोहर बाग॥
रह्यो सुख संपति आनद झेलि। घने फुल फुलहि लसै द्रुम बेलि॥
सदा फर दाडिम सोभित अब। बनै वर पीपर नीम कदब॥
महारग नारग निब्बू सग। लता जनु अमृत सींचि लवग॥
जमीरी गलग्गल श्रीफल सेव। फलै कदली फल चाषहि देव॥
षजूरिनि षारक ताल तमाल। सुधा सम दाख अनूप रसाल॥
चमेलिय चपक बेल गुलाब। बधूप सरूपित सोभित लाल॥

—चपावती० १००-१०३.

छिताईवार्ता मे भी इसी प्रकार पुष्पो और वृक्षो के नाम मात्र से सतोष कर लिया गया है

कुसुम कुद मचकुद मरुवौ केवरौ केतुकी कल्हार।
गुलाल सेवती मोकरो सुन्दर जाइ।
महदी पदमाख केवरो अतिवर्ष चपग पाइ।
जाति कूजौ जुही अति गनि रही महकाइ।
सघन दाध्यो दाख कमरख नारयंग निबुवा नारि।
बादम्म अम जभीर खारिक सघन सरवर पारि॥३९९॥
कुद खिरणी जाती फुलवादि। गनत विच्छ को जाने आदि।
लौंग लाइची बेलि अनूप। चदन वन देखे महि भूप॥४००॥

इत्यादि।

जायसी के पदमावत की अमराइयो मे भी वृक्षो की सूची ही प्रस्तुत की गई है

फरे आँब अति सघन सुहाए। औ जस फरे अधिक सिर नाए॥
कटहर डार पीड सो पाके। बडहर सोउ अनूप अति ताके॥
खिरनी पाकि खाड असि मीटी। जावु जो पाकि भवर अति [illegible]।
नरिअर फरे फरी खुरहुरी। फुरी जानु इन्द्रासन [illegible]॥
पुनि महु चुवे सो अधिक मिठासू। मधु जस मीठ पुहुप [illegible]
और खजहजा आवन नाऊ। देखा सब रावन [illegible]
गुआ सुपारी जायफर सब फर फरे [illegible]
आस पास घनि इबिली औ घन तार [illegible]

नगर के हाट-वर्णन से तत्कालीन नगरो की समृद्धि का अनुमान किया जा सकता है। कई स्थानो पर चौरासी हाटो के होने के सकेत मिलते है। जैसे प्रद्युम्नचरित (१४११ वि० स०) सधार अग्रवालकृत मे

इक सो बने धवल आवास। मठ मदिर देवल चउपास ॥
चौरासी चौहट्ट अपार। बहुत भाँति दीसइ सुविचार ॥ १७ ॥

मधुमालतीवार्ता ( चतुर्भुजदास )

'बसति पुर नगरे' जोजन च्यार। चौरासी चौहटा चौवार ॥ ३ ॥

रसरतन मे हाटो का वर्णन देखिए

पटबर मडित सोभित हाट। रच्यो जनु देव सुरप्पति बाट ॥
कहूँ नग मोतिय बेतल लाल। करैं तहँ लच्छिम मोल दलाल ॥
कहूँ गढै कचन चारु सुनार। कहूँ नट नाटिक कौतिक हार ॥
कहूँ पट पाट बनैं जरतार। कहूँ हय फेरत है असवार ॥
कहूँ गुहे मालिनि चौसर हार। कहूँ तें सवारत है हथियार ॥
कहूँ बरई कर फेरत पान। कहूँ गुनी गाइन साजत गान ॥
कहूँ पढे पडित वेद पुरान। कहूँ नर तानत बान कमान ॥
कहूँ गनिका गन रूप निधान। कहूँ मुनि ईस करे तप ध्यान ॥
चल्यौं नगरी सब देखत सूर। कहूँ मृगमद्द सुगध कपूर ॥
रहे इक नागरि नैन निहार। चलै इक पाट गवाष उघार ॥
चपा-वती० १४६-१५३.

जायसी भी इस प्रकार के वर्णन मे क्यो पीछे रहते ? उन्होने कनक-हाट, शृगारहाट और फूलहाट का सुन्दर चित्रण किया है

पुनि देखिअ सिघल की हाटा। नवौ निद्धि लछिमी सब बाटा ॥
कनक हाट सब कुहकुह लीपी। वैठा महाजन सिघल दीपी ॥
रचे हथोडा रूपइ ढारी। चित्र कटाउ अनेग सवारी ॥
रतन पदारथ मानिक मोती। हीर पवार सो अनवन जोती ॥
सोन रूप सब भयउ पसारा। धवलसिरी पोतहि घर बारा ॥
औ कपूर वेना कस्तूरी। चदन अगर रहाभरि पूरी ॥
जेइ न हाट एहि लीन्ह बेसाहा। ताकह आन हाट फित लाहा ॥
कोई करे वेसाहना काहू केर बिकाइ।
कोई चला लाभ सौं कोई मूर गवाइ ॥ ३७ ॥

पुनि सिंगार हाट धनि देसा। कइ सिंगार तहं बैठी वेसा॥ ३८॥
लै लै बैठ फूल फुलहारी। पान अपूरब धरे संवारी॥
सोधा सबै बैठु लै गाधी। बहुल कपूर खिरौरी बाधी॥ ३९॥

चित्रशाला का वर्णन भी हिन्दी प्रेमाख्यानकों में अपने पूर्ववर्ती साहित्य के अनुरूप ही हुआ है। छिताईवार्ता की चित्रशाला का वर्णन देखिए

बावन वस्त मीली ( मिलीं ) करि बान।
अति अनूप आरसी समान।

रसरतन के स्वयंवरखंड में भी चित्रशाला का वर्णन किया गया है

चित्रसाल चित्रित बहुरंगा । उपजतु निरषि सुषद सुष अंगा ॥
विविध चित्र अनवन विधि साजे । जल थल जीव जंतु सब राजे ॥
लिषी बहुत लीला करतारा । चित्र चारु दसऊं अवतारा ॥
ब्रज विनोद बहु भातन चीन्हा । राम चरित्र चारु सब कीन्हा ॥
सोरह सहस अष्ट पटरानी । चित्री इंद्र धरनि इंद्रानी ॥
नायक नाथ लिषे सुर ग्यानी । रुकमिन आदि आठ पटरानी ॥
रति रतिनाथ चित्रु पुनि कीन्हा । ऊषा हित अनुरुध मनु लीन्हा ॥
चित्रित सकल प्रेम रस प्रीती । माधौ काम कंदला रीती ॥
अग्नि मित्र मौरावत धाता । भरथरि प्रेम पिंगला राता ॥
स्वयंवरखंड, २३०-२३४ और आगे

मझनकृत मधुमालती में चित्रसारी का उल्लेख एकाधिक बार आया है परन्तु उसका वर्णन इस तरह का नहीं है। जैसे एक स्थान पर प्रेमा कहती है

चित्रसारि एक तहां संवारी । तहं खेलैं हम जाहिं धमारी ॥ पृ० १६६.

दूसरे स्थान पर कमलवदनियों को जब भ्रमर तंग कर रहे थे तब वे चित्रसारी में भाग गईं

दुहुं कर वदन छपाए धाईं ते बर नारि।
चित्रसारि भीतरगैं पैसीं बार पौंरि दीन्ह टारि ॥ पृ० १७४

बारी महं चित्रसारी जहा । तुम्ह परभात गै वैसहु तहा ॥
हम और वह मिलतहि मिलि जैहैं । खेल मिसुन चित्रसारी अैहैं ॥
पृ० २५१

इसी प्रकार के अन्य प्रसंग पृ० ४१४, ४१५, ४२० आदि पर देखे जा सकते हैं। शय्या अथवा कुसुम-शय्या प्राय प्रेमाख्यानकों में नायक-नायिका के समागम का प्रसंग आता है वहीं उनकी सेज फूलों से सजी दिखाई जाती है। कुसुम-शय्या उस शय्या का नाम है जिस शय्या पर फूल बिछा दिए जाते हैं। हिन्दी का एक प्रचलित मुहावरा भी है 'फूलों की सेज'। रसरतन का एक उदाहरण

चंपक बेलि गुलावन हार। फूल सेज वह रचीं अपार ॥
मलयागिरि उदीप सुखराती। चहुं दिसि बरै अगर की बाती ॥
अप्सराखड, ८५

चन्दायन मे शय्या-वर्णन इस प्रकार है

पालग सेज जो आनि विछाई। घरत पाउ भुइं लागै जाई ॥
पान बने अरु फूलहि भारी। सोनै झारी हास गुंदारी ॥
सुरग चीर एक आन विछावा। धरती वैस झवन अस आवा ॥
तिहि चढि सूत रवउं बिकरारा। खोपा छूट छिटक गये बारा ॥
यहि भंति करै फूल पहिवासी। करडी चारि फूर भर डासी ॥२०७॥

प्रेमाख्यानकों मे राजाओं की सेनाओ के उपयोग मे आने वाले अश्व, हाथी आदि उपयोगी जानवरों की विस्तृत जानकारी मिलती है। छिताईवार्ता मे अलाउद्दीन बादशाह ने सौरसी को विदाई पर उसे जो घोडे दिए थे वे अनेक जाति के थे

वरणु तेजी ऊच तिहा तणे। ऊचे आहि कंध तिह तणे ॥
एक तीरी ते हरीअे वरना। कध आगरे छोटे करना ॥
सेत तुरी चचल गुण वने। चित्रति जानि चितौरा तने ॥
महुअ सब्रज सनेही वने। सीराजी मुगली हासले ॥
उपजे सींह नदी पश्चम देस। वडी पुछ वरणइ कवि लेस ॥
करतर काया तुरी तुखार। जरदे नीले वोर कयाह ॥
जिते भुथार कावली आहि। साठि कोस थो आवइ जाइ ॥
पोले नीले वोरु वहूत। चलत चाल ते भाभर भूत ॥
गोट वहुत परवत के आहि। तै पुर दीनी अर चौगुन थाइ ॥पृ० १३१.

वर्णरत्नाकर मे अश्वो के प्रकार इस भाति है—हरिअ, महुअ, मागल, कुही, कुवाल, कओम, उरज, नील, गरुड, पीअर, राओट, दोरोज, उवाह, वल्लिआह, मेवाह, कोकाह, केयाह, हराह, पौराह, रोरिह ये अनेक वाल-घोल से अनुग्रह।[1]

चन्दायन मे राव महर के अश्वो का वर्णन देखिए

---

१ वर्णरत्नाकर, पचम कल्लोल, पृ० २९

महरैं काढि तुखार बुलाने। इन्ह दस धरे पौर मह आने ॥
हस हसोली भवर सुहाये। हिना यक खिंगारे बहु आये ॥
उदिर संमुद भुइ पाउ न धरिहैं। भाव गरब ते नाचत रहैं ॥
यह तुरग तीन पा ठाढे। नीर हरियाह पखरिन्ह गाढे ॥
पृ० १४१

रसरतन मे घोडे इस रूप मे सामने आते है

पलानैं तहां तेज-ताजी तुरगा। परे उच्च उच्छाल मानौ कुरंगा ॥
कथाहे सुलालं दुरंगा सुरंगा। खरे श्वेत पीत तथा सावरंगा ॥
इराकी अरब्बी तुरक्की दवच्छी। ममोला अमोला लिये मोल लच्छी ॥
बजै धाव धावैं लसें पूंछ अच्छी। मनो उड्डही बाह बैठे सुपच्छी ॥
उभै कर्न ऊचे मह उच्च ग्रीवा। मनो उच्च उच्चैश्रवा सोम सीवा ॥
चढै सूर वशी महा सूरवीरं। उलघे मनो चपि वाराधि नीर ॥
सवै षड्ग धारी चितै चित्त मोहे। मनो चित्त औरेषि पेषंत सोहे ॥
पृ० १०२

चन्दायन में राव रूपचन्द के हाथी किस प्रकार के थे, यह मौलाना दाऊद के शब्दो में देखिए

पखरे हस्त दात वहिराये। धानुक लै ऊपर बैसाये ॥
वनखड जैस चले अतिकारे। आने जानु मेघ अधकारे ॥
चलन लाग जनु चलहिं पहारा। छाह परै जग भा अधियारा ॥
झोंकरहि चोटहि आकुस लागे। वरु दस कोस सहस अग भागे ॥
जो कोपहिं तो राइ सघारहिं। वन तरुवर जर मूर उपारहिं ॥

सींकर पाइ वानि उठ, उरै कांदो होइ।
राउ रूपचद कोपा, तेग न पारे कोई ॥ पृ० १३४.

सूरसेन की सेना के हाथियो का रसरतन में वर्णन

चले मत्त मैमत घूमत मता। मनौ वदला स्याम माथै चलंता ॥
वनी वग्गरी रूप राजत दता। मनौ वग्ग आसाढ पातैं उडन्ता ॥
लसैं पीत लालै सुढालैं ढलक्कैं। मनौ चचला चौंध छाया झलक्कैं ॥
गिरी शृंग के कुभ सिंदूर मडे। घटा अग्र पातैं मनौ भारतंडे ॥

वहहि जोर छंछाल ते मद्द नीर। लगे गउ गुंजार ते भौर भीरं॥
किये कुडली कुंड सुडाहलीयं। लसौ चौरमरि जो श्रृंगार कीय॥
विजयपाल० १९८-२०१

अश्वो -हाथियो आदि के अतिरिक्त युद्धो मे रणवाद्यो का भी प्रयोग किया जाता था। इन रणवाद्यो मे नगारा, भेरी, तूर्यं, नीसान, ढोल आदि का प्रचलन था। रणवाद्यो के अतिरिक्त भी वाजो के नाम तत्कालीन काव्यो में आते है। छिताईवार्ता मे वाद्ययन्त्रो का विवरण इस प्रकार मिलता है

एकणिकर सोहै स्यगरी। जुवती जुबन रग रसभरी।
एक रवाब दुतारौ धरे। सुदरि सुघर बजावै खरै॥
ढोलक चद्रमडलनि सार। अधिक अपूरब पुजवहि तार।
विविध विचखिखण बोलहि बैन। जनु कसुभ केसरि रंगि नैन॥
एकति कामणि कंघणि जंत्र। मानहु बसीकरण के मत्र।
जिती छिताई करी प्रवीण। ते सगीत रग रस लीण॥
सरमडल सरवीण संवारि। मुरज त्रिदग लऐ वर णारि।
पैम कपाट पखावज वीन। वैठी तरुणि तमासै लीण॥ पृ० ११८-११९.

रसरतन मे वाजो के नाम इस प्रकार आये हैं :

धुज पताक तोरन बने, सीच सुधा रस रग।
पच शब्द मगल वजे, भेरो ढोल मृदग॥
चली कुवर पूजन गवरि, वाजन वाजन लग्ग।
मुरज रुज सहनाइय, वीना ताल तरग॥
चपावती० ३२४-२५

वव वाजि सोर घन घोर साद। सव्द मिलि पच वाजत नाद॥
सष सहनाइ करताल तूर। मिलि सव्द आकास पाताल पूर॥
वही, ३८६.

अव युद्धवर्णन के दो-एक उद्धरण देखिए जिनसे इनकी रूढ परम्परा पर प्रकाश पडेगा। इन्द्रावती मे कवि नूरमुहम्मद ने घनघोर युद्ध का वर्णन किया है जो इस प्रकार है ·

भयउ घटा ढालन सो कारी, खरगन भये बीज चमकारी।
रौदा सोस खरग चौगानू, खेलहिं बीरहिं चढि मैदानू।
हाल आपनो आपनो चाहै, अरि को हस्त चलान सराहैं।
माला खरग इनै सब कोई, बोउन खरग ठनाठन होई।
गगन खरग घटा सो ठन गयऊ, हिन हिन औ धुन हन हन भयऊ।
ओनई घटा धूर सो, दिन मनि रहा छिपाय।
वहाँ महाभारत्य भा, सबद परेउ हू हाय ॥ पृ० ९८.

इस पद्य मे खड्ग की चमक, तलवार की ठनाठन, हिन-हिन और हन-हन की शब्दावली का प्रयोग हुआ है। इसी से बहुत साम्य रखनेवाली शब्दावली मे युद्ध मे धनुष टकार और खड्गो की खनखनाहट स्वयभू के पउमचरिउ मे देखी जा सकती है :

हण-हण-हणकार महारउददु। छण-छण-छणतु गुणपि-पछि-सद्दु।
कर-कर-करंजु कोयंड पवरु। थर-थर थरतु णाराय-णियरु।
खण-खण-खणंतु तिक्खग्ग खग्गु। हिल-हिल-हिलंतु हय चंच लग्गु।
गुल-गुल-गुलंत गयवर विसालु। हणु-हणु भणतु णर वर विसालु ॥
पउमचरिउ, ६३.३.

रसरतन मे घमासान युद्ध के बाद युद्धस्थल का वीभत्स रस मे वर्णन इस प्रकार उपस्थित किया गया है

पिसाचन रच्छ रचैं ज्योनार। सरब्बत ओन करैं मनुहार ॥
करे तहाँ प्रेम पिसाच अहार। ॥
मरोरत मुड नचावत चाड। कटकट दत चचरोत हाड़ ॥
वचै इक फेरि रक्कत्त अघाइ। गिले हकलीय अछग वहाइ ॥
युद्धखड, २६८-६९

चन्दायन मे भी युद्धस्थल पर ऐसा ही वीभत्स रस दिखाई पडता है। युद्ध के बाद मृत सैनिको को गृद्धादि पक्षी किस रुचि से भक्ष्य बनाते है .

गोधहिं नोता केतन हकारा। कोत रसोई अगिन परजारा ॥
आज बाठ इतै खड तारा। लोर बसायें करउ जेउनारा ॥
नोता काल देस कर आवा। चील्ह के दर माडो छावा ॥
सरग उड़त खबरहर खोनी। काल करोह भात दस कोनी ॥
ना [illegible] आवा। रैन बास सब जात बुलावा ॥

कूद मांस धर तोरब, रकत भरब लै कुण्ड।
आठ मास धरि जेंवत, सात मास लहि मुण्ड ॥ पृ० १५९.

इन सब वर्णनों के मिले-जुले रूप को देखकर यह अनुमान करने में कठिनाई नहीं होती कि हिन्दी प्रेमाख्यानकों के अन्तर्गत आनेवाला वस्तु-वर्णन-शिल्प अपभ्रंश चरितकाव्यों की शैली से अधिक भिन्न नहीं है। इसे हम आगे तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत करेंगे।

०

भयउ घटा ढालन सो कारी, खरगन भये बीज चमकारी।
रौंदा सीस खरग चौगानू, खेलहिं वीरहिं चढि मैदानू।
हाल आपनो आपनो चाहै, अरि को हस्त चलान सराहैं।
माला खरग इनै सब कोई, बोउन खरग ठनाठन होई।
गगन खरग घटा सो ठन गयऊ, हिन हिन औ धुन हन हन भयऊ।
ओनई घटा धूर सो, दिन भनि रहा छिपाय।
वहाँ महाभारत्थ भा, सबद परेउ हू हाय॥ पृ० ९८.

इस पद्य मे खड्ग की चमक, तलवार की ठनाठन, हिन-हिन और हन-हन की शब्दावली का प्रयोग हुआ है। इसी से बहुत साम्य रखनेवाली शब्दावली मे युद्ध मे धनुष टकार और खड्गो की खनखनाहट स्वयभू के पउमचरिउ मे देखी जा सकती है :

हण-हण-हणकार महारउदद्दु। छण-छण-छणतु गुणपि-पछि-सद्दु।
कर-कर-करंजु कोयडं पवरु। धर-धर धरंतु णाराय-णियरु।
खण-खण-खणतु तिक्खग्ग खग्गु। हिल-हिल-हिलतु हय चच लग्गु।
गुल-गुल-गुलत गयवर विसालु। हणु-हणु भणतु णर वर विसालु॥
पउमचरिउ, ६३.३.

रसरतन मे घमासान युद्ध के बाद युद्धस्थल का वीभत्स रस मे वर्णन इस प्रकार उपस्थित किया गया है

पिसाचन रच्छ रचैं ज्योनार। सरब्बत ओन करैं मनुहार॥
करें तहाँ प्रेम पिसाच अहार। ॥
मरोरत मुड नचावत चाड। कटकट दत चचरोत हाड॥
बचैं इक फेरि रक्कत्त अघाइ। गिले हकलीय अछंग वहाइ॥
युद्धखड, २६८-६९

चन्दायन मे भी युद्धस्थल पर ऐसा ही वीभत्स रस दिखाई पडता है। युद्ध के बाद मृत सैनिको को गृद्धादि पक्षी किस रुचि से भक्ष्य बनाते हैं :

गीधहिं नोता केतन हकारा। कीत रसोई अगिन परजारा॥
आज बाठ इतैं सड तारा। लोर बसायें करउ जेउनारा॥
नोता काल देस कर आवा। चील्ह के दर माडो छावा॥
सरग उडत खबरहर लीनी। काल करोह भात दस कीनी॥
सना [illegible] पितरमुख आवा। रैन बास सब जात बुलावा॥

कूद मास घर तोरव, रकत भरव लै कुण्ड।
आठ मास धरि जेंवत, सात मांस लहि मुण्ड ॥ पृ० १५९.

इन सब वर्णनों के मिले-जुले रूप को देखकर यह अनुमान करने में कठिनाई नहीं होती कि हिन्दी प्रेमाख्यानकों के अन्तर्गत आनेवाला वस्तु-वर्णन-शिल्प अपभ्रंश चरितकाव्यों की शैली से अधिक भिन्न नहीं है। इसे हम आगे तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत करेंगे।

०

अध्याय ४

# सूफ़ी काव्यों में प्रतीक-विधान और भारतीय प्रतीक-विद्या

हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानको का प्रारम्भ परमात्मा की स्तुति, पैगम्बर का गुणानुवाद, गुरु या पीर का परिचय, चार यार की सिफत, शाहेवक्त की प्रशसा, काव्य-रचना का कारण आदि से होता है। इसके बाद मूलकथा प्रारम्भ होती है। मुख्य कथा कई भागो मे विभक्त रहती है। उन भागो के भी उपविभाग होते हैं। उन उपविभागो के ऊपर विषयानुसार शीर्षक रहता है। काव्य के अन्त मे कवि कुछ उपदेश या रचनाकाल आदि देकर कथा का समापन कर देता है। सूफी काव्यो के शिल्प और हिन्दू काव्यों के शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन आगे प्रस्तुत किया जायेगा। फिलहाल यह कहना उचित होगा कि सूफी काव्यो का शिल्प हिन्दू काव्यो के शिल्प से वैषम्य की अपेक्षा साम्य ही अधिक रखता है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानको मे काव्यगत रूढिया एव विषयगत शीर्षको का चलन आदि भारतीय चरितकाव्यो की ही देन है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'इन प्रेमगाथा काव्यो के सबध मे पहली बात ध्यान देने की यह है कि इनकी रचना बिल्कुल भारतीय चरितकाव्यो की शैली पर न होकर फारसी की मसनवियों के ढग पर हुई है जिनमे कथा सर्गों या अध्यायो मे विस्तार के हिसाब से विभक्त नही होती, बराबर चली चलती है, केवल स्थान-स्थान पर घटनाओ या प्रसगो का उल्लेख शीर्षक के रूप मे दिया रहता है।'[1] यह कथन उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर प्रमाणित नही होता। यह सच है कि फारसी की मसनवी पद्धति और हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानको मे समानता देखी जा सकती है लेकिन यह भी सच है कि जिस तरह सूफी कवि ग्रन्थारम्भ मे परमात्मा, पैगम्बर की स्तुति करता है, गुरु-पीर-

---

[1] जायसी-ग्रन्थावली — रामचन्द्र शुक्ल, पचम सस्करण, भूमिका पृ० ४

औलिया और शाहेवक्त की प्रशसा करता है, ठीक वैसे ही अपभ्रश के जैन चरितकाव्यो के ग्रन्थारम्भ मे जिनेन्द्रदेव की स्तुति, सरस्वती-वदना, अन्य वन्दनाओ के वाद पूर्व कवियो का गुणानुवाद या नामोल्लेखादि के वाद ही मूलकथा का प्रारम्भ होता है। तव यह क्यो न माना जाये कि हिन्दू-जैन चरितकाव्यो मे अपने-अपने धर्मानुसार देवी-देवताओ की स्तुति की जो परिपाटी थी उसी रूप मे सूफी कवियो ने भी अपने धर्मानुसार पैगम्वर आदि की स्तुति के वाद ही कथारम्भ करने के नियम का पालन किया ? मेरे कहने का तात्पर्य मात्र यह है कि सूफी प्रेमाख्यानको को अपभ्रश चरितकाव्यो और भारतीय लोकगाथाओ से सीधे सम्बद्ध मानना अधिक उपयुक्त होगा। इस सदर्भ मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन महत्त्वपूर्ण है—'जनसाधारण का एक और विभाग, जिसमे धर्म का स्थान नही था, जो अपभ्रश साहित्य के पश्चिमी आकार से सीधे चला आ रहा था, जो गावो की बैठको मे कथानक रूप से और गान रूप से चल रहा था, उपेक्षित होने लगा था। इन सूफी साधको ने पौराणिक आख्यानो के बदले इन लोकप्रचलित कथानको का आश्रय लेकर ही अपनी वात जनता तक पहुँचाई।'[1]

हिन्दी-सूफी प्रेमाख्यानको के सूफी काव्य का अधिकाश फारसी अक्षरो से लिखा गया। मसनवी फारसी साहित्य की एक शैली है। 'मसनवी' का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते है[2]

१ मसनवी के छन्दों मे प्रत्येक पद अपने आप मे स्वतन्त्र और पूर्ण होते हैं तथा वे तुकान्त होते हैं। एक चरण के शब्द दूसरे मे नही जाते।

२. प्रेमाख्यान, धार्मिक तथा उपदेशात्मक काव्यो के लिए मसनवी को अपनाया जाता है।

३. 'मसनवी' स्वय एक पूर्ण ग्रन्थ होता है और इसका नाम इसकी नायक-नायिका के नाम पर कवि रखता है। काल्पनिक नाम भी रखे जाते है।

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, चतुर्थ सस्करण, पृ० ५०.

२ डा० रामपूजन तिवारी, सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० ५२७

४. साधारणत मसनवी सर्गबद्ध होते हैं। पहले सर्ग मे परमात्मा का गुणानुवाद, दूसरे मे पैगम्बर को स्मरण किया जाता है। तीसरे मे पैगम्बर के 'मोराज' की चर्चा होती है। बाद मे शासक सुल्तान आदि की प्रशसा रहती है। इसके बाद मूलकथा प्रस्तुत की जाती है।[१]

आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि 'मसनवी के लिए साहित्यिक नियम तो केवल इतना ही समझा जाता है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छन्द मे हो, परम्परा के अनुसार उसमे कथारम्भ के पहले ईश्वर-स्तुति, पैगम्बर की वन्दना और उस समय के राजा (शाहेवक्त) की प्रशसा होनी चाहिए। ये बातें पदमावत, इन्द्रावती, मृगावती इत्यादि सबमे पाई जाती हैं।'[२] इस सदर्भ मे पहले से कहा जा चुका है कि भारतीय चरितकाव्यो' में भी इसी पद्धति का अनुसरण किया जाता था। फारसी मसनवियो के प्रभाव को दृष्टि में रखकर डा० रामपूजन तिवारी ने लिखा कि 'हिन्दी सूफी काव्य इस परम्परा से प्रभावित तो अवश्य है लेकिन उसमे हूबहू इसकी नकल नही की गई है। भारतीय वातावरण में सूफी मत का विकास अरब और फारस जैसा न होकर मित्र रूप में हुआ। भारतीय विचारधारा से वह बहुत प्रभावित हुआ। हिन्दी का सूफी काव्य जितना भारतीय विचारधारा से प्रभावित मालूम होता है उतना फारसी या अरबी परम्परा से नही।'[3] जो बात विचारधारा के सम्बन्ध में कही गई है वही शैली-शिल्प के बारे में भी लागू होती है।

मसनवी और चरितकाव्यो की शिल्पगत तुलना करने पर यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि जिन सूफी प्रेमाख्यानो को तथाकथित मसनवियो की कोटि में रखा जाता है उनमें भी मगलाचरण प्रक्रिया से लेकर पूर्व कवियो के नामोल्लेख, काव्य रचने का कारण और शुक, चित्र-स्वप्न या प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेमोत्पत्ति, नगर-वर्णन के साथ हाट, सर, अश्व, गज, युद्धादि वस्तुवर्णन आदि कन्याप्राप्ति तक की काव्यगत रूढियाँ न्यूनाधिक

---

१ डा० रामपूजन तिवारी, सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० ५२७

२ जायसी-ग्रन्थावली, भूमिका पृ० ८

३. डा० रामपूजन तिवारी का 'सूफी काव्य-परम्परा' लेख, अवन्तिका, अक्टूबर १९५४,

४. साधारणत मसनवी सर्गबद्ध होते हैं। पहले सर्ग मे परमात्मा का गुणानुवाद, दूसरे मे पैगम्बर को स्मरण किया जाता है। तीसरे मे पैगम्बर के 'मीराज' की चर्चा होती है। बाद मे शासक सुल्तान आदि की प्रशसा रहती है। इसके बाद मूलकथा प्रस्तुत की जाती है।[1]

आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि 'मसनवी के लिए साहित्यिक नियम तो केवल इतना ही समझा जाता है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छन्द मे हो, परम्परा के अनुसार उसमे कथारम्भ के पहले ईश्वर-स्तुति, पैगम्बर की वन्दना और उस समय के राजा ( शाहेवक्त ) की प्रशसा होनी चाहिए। ये बाते पदमावत, इन्द्रावती, मृगावती इत्यादि सबमे पाई जाती हैं।'[2] इस सदर्भ मे पहले से कहा जा चुका है कि भारतीय चरितकाव्यों में भी इसी पद्धति का अनुसरण किया जाता था। फारसी मसनवियो के प्रभाव को दृष्टि में रखकर डा० रामपूजन तिवारी ने लिखा कि 'हिन्दी सूफी काव्य इस परम्परा से प्रभावित तो अवश्य है लेकिन उसमे हूबहू इसकी नकल नही की गई है। भारतीय वातावरण में सूफी मत का विकास अरब और फारस जैसा न होकर मित्र रूप में हुआ। भारतीय विचारधारा से वह बहुत प्रभावित हुआ। हिन्दी का सूफी काव्य जितना भारतीय विचारधारा से प्रभावित मालूम होता है उतना फारसी या अरबी परम्परा से नही।'[3] जो बात विचारधारा के सम्बन्ध में कही गई है वही शैली-शिल्प के बारे में भी लागू होती है।

मसनवी और चरितकाव्यो की शिल्पगत तुलना करने पर यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि जिन सूफी प्रेमाख्यानो को तथाकथित मसनवियो की कोटि में रखा जाता है उनमे भी मगलाचरण प्रक्रिया से लेकर पूर्व कवियो के नामोल्लेख, काव्य रचने का कारण और शुक, चित्र-स्वप्न या प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेमोत्पत्ति, नगर-वर्णन के साथ हाट, सर, अश्व, गज, युद्धादि वस्तुवर्णन आदि कन्याप्राप्ति तक की काव्यगत रूढियाँ न्यूनाधिक

---

१ डा० रामपूजन तिवारी, सूफीमत—साधना और साहित्य, पृ० ५२७

२ जायसी-ग्रन्थावली, भूमिका पृ० ८

३. डा० रामपूजन तिवारी का 'सूफी काव्य-परम्परा' लेख, अवन्तिका, अक्टूबर १९५८, पृ० ४५.

से खतरा पैदा हो गया था। प्रतीको के प्रयोग से सूफियो को दुहरा लाभ हुआ—एक तो वे अपने मत का प्रचार निर्बाधरूप मे कर सके, दूसरे कट्टर इस्लाम के रूढिवादी आक्रमण के सामने ये प्रतीक ढाल का काम देने लगे। सभवत फारिज ने इसीलिए कहा कि प्रतीको के प्रयोग से दो लाभ प्रत्यक्ष होते हैं। एक तो प्रतीको की ओट लेने से धर्म-बाधा टल जाती है, दूसरे उनके उपयोग से उन बातो की अभिव्यजना भी खूब हो जाती है जिनके निदर्शन मे वाणी असमर्थ अथवा मूक होती है।[1]

प्रतीक शब्द की व्याख्या करते हुए जेम्स हेस्टिंग्स ने कहा है कि प्रतीक किसी दृश्य या श्रव्य रूप का अथवा किसी विचार, भाव या अनुभव का द्योतक है, जो तथ्यरूप मे ज्ञान और कल्पना के माध्यम से अनुमेय को व्याख्या करता है। इस विषय मे जेम्स ने प्रतीको का प्रयोग दो प्रकार से सभव बताया है एक तो कार्यो या शब्दों के द्वारा प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति, दूसरे कला के माध्यम से अभिव्यक्ति।[2] इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतीक स्वय किसी भावना के प्रतीक है अर्थात् जो भावना या सूक्ष्म तत्त्व भाषा मे बध नही पाता उसे प्रतीक रूपायित करने का साधन है। प्रतीक कहलाने वाले वे शब्द या भाव और कार्य क्या है जो प्रतीक नाम से बोधगम्य होते है। प्रतीकवाद धर्म के लिए साधक भी है और बाधक भी। प्रतीक किसी विचार या भाव के द्योतक रहने तक उपयोगी सिद्ध होते हैं। परन्तु जब वे द्योतक न रहकर भाव ही बन जाते हैं

---

१ डा० चन्द्रबली पाडे, तसव्वुफ सूफीमत, पृ० ९७-९८

2 'A symbol is a visible or audible sign or emblem of some thought, emotion, or experience interpreting what can be really grasped only by the mind and imagination by something which enters into the field of observation So far as Greek and Roman religions are concerned, we need speak only of two kinds of symbols—symbolic representation by means of actions or words and symbolic representation in art —James Hastings, Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol 12 p 139

तव वे मूल्यहीन हो जाते हैं।[1] इस तरह का खतरा भी सूफी काव्यो मे कम नही मिलता।

सूफी प्रेमाख्यानको एव सूफी सिद्धान्त मे प्रेम प्रधान तत्त्व है, इसका उल्लेख किया जा चुका है। इस प्रेम का अर्थ रति से है। रति का जो आलम्बन है वह सूफियो के प्रियतम का प्रतीक है। विदेशी सूफियो ने रति के आलम्बन के रूप मे किशोर को चुना, स्त्री को नही। इसका कारण यह था कि उनका प्रियतम सदैव किशोर के रूप मे ही प्रस्तुत होता है। परन्तु यह लौकिक आलम्बन के रूप मे स्वीकार किया गया। उनके प्रेम का जो प्रधान पात्र है वह तो परमात्मा ही है। यही कारण है कि सूफी मसनवियो मे दाम्पत्य भावना के जिस प्रेम का वर्णन किया गया है उसमे आलम्बन परमात्मा का द्योतक पाया जाता है। प्रेम की पुकार अविरल गति से होती रहे इससे सूफियो ने सुरति को स्थान दिया। सुरति मे आनन्द अथवा लगन तभी आ सकती है जव सुरा हो, अत सुरति के साथ सूफियो ने सुरा को भी अपना लिया। जव सुरति, सुरा भी हो गई तो इस सुरा को ढालकर देनेवाला भी कोई होना ही चाहिए। अत साकी या माशूक को स्थान मिला। यही सूफी काव्यो मे प्रतीक वन गए। भारतीय सूफी प्रेमाख्यानको मे यहाँ का प्रभाव होने के कारण साकी का अन्तर्भाव प्रेमिका मे कर लिया गया। इन कवियो ने प्रेमिका का वर्णन जहाँ भी प्रस्तुत किया, उसके नख-शिख सौन्दर्य का भा सविस्तार चित्रण किया। वैसे रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते समय भारतीय साहित्य मे नख-शिख वर्णन की परम्परा वहुत प्राचीन रही है। परन्तु सूफी साहित्य मे यह नख-शिख वर्णन भी प्रतीकात्मक हो गया। इस सदर्भ मे डा० चन्द्रवली पाडे ने लिखा है कि 'जव माशूक प्रतीक है तो उसका नख-शिख भी उसके अन्तर्गत समझा जायेगा। उसके अग-अग प्रतीक होगे। नख-शिख मे मुख की प्रधानता होती है। उसका वर्णन प्राय

---

1 'In religion, symbolism is a help and hindrance It provides a sign for an idea and useful in recalling the idea But when, instead of recalling, it replaces the idea, it becomes a menace' —Hopkins, Origin and Evolution of Religion, p 45

सभी कवि खूब करते हैं। पर उसका प्रगट दर्शन कितनो को होता है? परदे के भीतर का दीदार ही तो तसव्वुफ का सब कुछ है।'[1] जैसा कि कहा जा चुका है हिन्दी-सूफी कवियो ने विदेशी सूफी काव्यो के प्रतीको को उपयोग मे यदि लिया भी तो समन्वय के साथ। यही कारण था कि जिस 'किशोर' रूप को प्रेम का प्रतीक विदेशी सूफी काव्यो मे माना गया उसे भारत के वातावरण मे स्वीकार नही किया जा सका। फलत प्रेमास्पद को 'किशोर' के स्थान पर तरुणी बनना पड़ा।

मुख को सूफी प्रेमाख्यानको मे ईश्वरीय सौन्दर्य का प्रतीक माना गया है। यही कारण है कि जहाँ भी सूफी कवि प्रियतमा के मुखका वर्णन करता है वहाँ उसकी उपमा दिव्य उपमानो से देता है। चित्रावली जब झरोखे से झाँकती है तो उसमान कवि को लगता है मानो चाँद स्वर्ग से झाँक रहा हो। किसी मानवी का इतना असाधारण स्वरूप नही हो सकता जबतक कि वह ईश्वरीय शक्ति का प्रतीक न हो। चित्रावली के रूपसौन्दर्य का प्रकाश दिव्यज्योति का ही प्रकाश है

> चित्रावली झरोखे आई। सरग चाँद जन दीन्ह देखाई॥
> भयो अँजोर सकल ससारा। भा अलोप दिनकर मनियारा॥
> चौंधे सुर सब सुरपुर माही। चौंधे नाग देखि परछाही॥
> चौंधे महिमडल नर नारी। चौंधे जल थल जिव सब झारी॥
> चौंधे जोगी अहे तराहीं। कस अजोर कोई जाने नाही॥[2]

चन्दायन मे चाँद के मुखमण्डल की छटा से सारा भवन जगमगाता है।[3] परन्तु इस ईश्वरीय सौन्दर्य को अज्ञानरूपी अन्धकार देखने नही देता। सूफियो ने केशो को अज्ञान या माया का प्रतीक माना जो 'मुखमण्डल' ब्रह्म के प्रतीक को ढँके रहते हैं। केशो को जायसी ने माया के प्रतीकार्थ मे ही प्रयोग किया है। उनका कथन है

> ससि मुख अग मलैगिरि रानी। नागह्न झापि लीह्न अरधानी॥
> ओनए मेघ परी जग छाहा। ससि की सरन लीह्न जनु राहा॥[4]

---

१ डा० चन्द्रबली पाडे, तसव्वुफ और सूफीमत, पृ० ९५
२ चित्रावली, पृ० १०६
३. चन्दायन, पृ० ११६.
४. पदमावत, सपा०—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ६१.

भारतीय दर्शन मे माया को अत्यधिक वलवती माना गया है। यही माया ब्रह्म और आत्मा के मिलन मे बाधक है। माया का विस्तार और प्रभाव गहरा होता है। इसके फदे मे फँसकर निकलना कठिन ही होता है। जायसी ने इसी को केशो के प्रतीक द्वारा समझाया है :

अस फदवारे केस वै राजा परा सीस गिय फाद।
अस्टौ कुरी नाग ओरगानें भै केसन्हि के बाद ॥[1]

इस माया मे फसकर व्यक्ति को जीवन भर अज्ञानान्धकार मे भटकना पडता है। मायारूपी अज्ञानान्धकार का स्वरूप ठीक केशो को कालिमा के समान होता है

वेनी छोरि झारू जौं वारा। सरग पतार होइ अधियारा ॥[2]

सूफ़ी कवियो ने केश या लट का वर्णन नायिका की मुखमण्डल की शोभा वढाने के लिए किया है। प्राय ही प्रेमाख्यानको मे नायिका के मुख पर लट को देखकर नायक मूच्छित होते अवश्य दिखाया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि लट को देखकर व्यक्ति मार्गच्युत होता है क्योकि लट माया की प्रतीक है। नूरमुहम्मद ने लट का वर्णन इस प्रकार किया है

वहे उपवन पर लट सटकारी, तपी देवसभा निस अधियारी।
मोहि परा दरसन कर चौरा, हना वान वन ऑखिन फेरा।
एक कहा लट सो मुख सोभा, होत अधिक लखि मुरछा लोभा।
एक कहा लट नागिन मारी, डसा गरल सो गिरा भिखारी।
एक कहा लट जामिन होई, राति जानि जोगी गा सोई ॥[3]

जायसी ने पद्मिनी की वरौनियो का वर्णन ब्रह्म की मोहिनी शक्ति के प्रतीक-रूप मे किया है

वरुनी का वरनौं इमि वनी। साधे वान जानु दुइ अनी ॥
जुरी राम रावन कै सैना। वीच समुद भए दुइ नैना ॥
वारहि पार वनावरि साधी। जासौं हेर लाग विख वाधी ॥

---

१. पदमावत, सपा०—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ९६
२ वही
३. इन्द्रावती, पृ० ६०.

उन्ह बानन्ह अस को को न मारा। बेधि रहा सगरौं संसारा॥
गगन नखत जस जाहि न गने। है सब बान ओहि के हने॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखा ठाढि देहि सब साखी॥
रोव रोव मानुष तन ठाढे। सोतहि सोत बेधि तन काढे॥[1]

जैसा कि कहा जा चुका है कि प्रियतमा का नखशिख वर्णन ही प्रतीकात्मक है। प्रतीको की बात केशो और बरौनियो तक ही सीमित नही रहती। जायसी ने पद्मावती की वाणी की जो महिमा गाई है वह, पूर्णरूप से प्रतीकात्मक है। ऐसी वाणी जो सबको सुखद हो वह परमात्मा की ही हो सकती है। जायसी कहते है कि पद्मावती के अमृत-वचनो को सुनकर सबका मन अनुरक्त हो जाता है। उस स्वर ने चातक और कोकिल का स्वर हर लिया। वीणा-वंशी मे भी वह स्वर नही मिलता।
वह प्रेम के अमृत से पगे वचन बोलती है, जो सुनता है वही मस्त हो चक्कर खाने लगता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चारो वेदो मे जितना ज्ञान है सब उसके पास है। उसकी एक-एक बात मे चार-चार अर्थ भरे हुए हैं जिसको समझने मे इन्द्र मोहित और ब्रह्मा सिर धुनने लगते है। अमरकोश, महाभारत, पिंगल छद और गीता सम्बन्धी शास्त्रार्थ के पडित भी उससे नही जीतते इत्यादि।

हरै सो सुर चात्रिक कोकिला। बीन बसि वह बैनु न मिला॥
चात्रिक कोकिल रहहि जो नाही। सुनि वह बैन लाजि छपि जाही॥
भरे पेम मधु बोलै बोला। सुनै सो माति घुर्मि के डोला॥
चतुर वेद मति सब ओहि पाहाँ। रिग जजु साम अथर्बन माहा॥
एक एक बोल अरथ चौगुना। इद्र मोह बरम्हा सिर धुना॥
अमर भारथ पिंगल औ गीता। अरथ जूझ पडित नहि जीता॥१०८॥[2]

वास्तव मे पद्मावती के रूप-सौन्दर्य के वर्णन मे जायसी ने जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह ब्रह्म के असीम सौन्दर्य का प्रतीक मानकर ही किया है, इसमे सन्देह नही। पद्मिनी की दंतपक्ति के वर्णन से स्पष्ट ही परिलक्षित होता है कि वह ईश्वरीय प्रकाश की प्रतीक है

जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतन्ह जोति जोति ओहि भई॥
रवि ससि नखत दीन्हि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥

---

१ पदमावत, पृ० १०१
२ वही, पृ० १०५

जहं जहं बिहंसि सुभावहि हसी । तहं तह छिटकि जोति परगसी ।।
दामिनि दमकि न सरबरि पूजा । पुनि वह जोति और को दूजा ।।
बिहंसत हंसत दसन तस चमके पाहन उठे झरक्कि ।
दारिव सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरक्कि ।।१०७।।[1]

इन कवियो ने दतपक्ति को प्रकाश का प्रतीक माना तो अधरो को अमृत का भडार । परमात्मा की अमरत्व प्राप्त करानेवाली शक्ति के प्रतीक-स्वरूप अधरो को स्वीकार किया गया । नूरमुहम्मद कहते हैं कि अधर-सुधारस का पान करके मरण नही होता

अधर तैहिक जिउ दाता आही, देत भलो जीवन जस चाही ।
तो मोंहि सोच जिउ कर नाही, होइ सुधा तेहि अधरन माहीं ।
वहुर प्रान देई मोहि सोई, तित जीवन पुन मरन न होई ।[2]

परन्तु यह अमृत सभी को प्राप्त नही होता । यह तो वडी साधना के माध्यम से ही सभव हो सकता है । वैसे अमृत का पान तो सभी करना चाहते हैं :

अमिअ अधर अस राजा सब जग आस करेइ ।
केहि कहं कवल विगासा को मधुकर रस लेइ ।।[3]

इस अपूर्व अलौकिक अधरामृत का पान साधक को परमात्मा-मिलन मे सहायता देता है । 'मय' और साकी का प्रयोग भी प्रतीक के रूप मे हुआ है । 'मय' के पीने से साधक का सम्वन्ध जगत् से नही रह जाता । वह अपने प्रियतम की ओर सम्वन्ध जोडने मे सहायक होता है । साधक और साध्य के मिलने पर जो प्रेमरस प्रकट होता है उसे साधक मदिरा-रूप मे पान करके प्रियतमाकार हो जाना चाहता है । प्रेमी की यही इच्छा रहती है कि उसे 'मय' का लवालव भरा प्याला मिलता जाए जिससे उसका मानस प्रियतमा मे ही लगा रहे :

एक पियाला भर मद दीजै मोल पियारे मानस लीजै ।[4]

---

१ पदमावत, पृ० १०४

२ इन्द्रावती, पृ० ७७

३ पदमावत, पृ० १०३

४ इन्द्रावती, पृ० ७८

पदमावत मे रतनसेन के मधुपान के समय पद्मावती आग्रह करती है कि मधु को थोडा-थोडा चखकर ही पियें। परन्तु वह अपने प्रियतम की हर आज्ञा को शिरोधार्य करने की इच्छा के साथ ही ऐसा सुझाव देती है। जायसी ने सुरा को प्रेमरस के प्रतीक अर्थ मे ही लिया है

बिनति करै पदुमावति बाला। सो धनि सुराही पीउ पियाला।
पिउ आएसु माथे पर लेऊ। जौं मागै नै नै सिर देऊं।
पै पिय वचन एक सुनु मोरा। चाखि पियहु मधु थोरइ थोरा।
पेम सुरा सोई पै पिया। लखै न कोइ कि काहू दिया॥३१९॥[1]

परन्तु जो साधक प्रेमरस का पान कर चुका है वह साधना मे आने वाली मौत जैसी बाधाओ से भी विचलित नही होता। उसे अपनी साधना मे ही डूबा रहना आनन्ददायक होता है। इसी भाव के प्रतीकार्थ जायसी ने लिखा है

सुनु धनि पेम सुरा के पिएं। मरन जियन डर रहै न हिएं।
जहं मद तहा कहा सभारा। कै सो खुमरिहा के मंतवारा।
सो पै जान पियै जो कोई। पी न अघाइ जाइ परि सोई।
जा कह होइ बार एक लाहा। रहै न ओहि बिनु ओही चाहा।
अरथ दरब सब देइ बहाई। कह सब आउ न जाउ पियाई।
रातिहु देवस रहै रस भीजा। लाभ न देख न देखै छीजा।
भोर होत तब पलुह सरीरू। पाव खुमरिहा सीतल नीरू।

एक वार भर देहु पियाला वार वार को माग।
मुहमद किमि न पुकारै अैस दाउ जेहि खाग॥३२०॥[2]

नूरमुहम्मद ने मदिरा के विषय मे लिखा है

विना कदम्बरि के पिये, त्रास न मन सो जात।
दयावती होइ दीजिये, होलिक लागी प्रात॥[3]

सूफी काव्यो मे साधना एवं दर्शन से सम्बन्ध रखने वाले प्रतीक

---

१ पदमावत पृ० ३१७-१८

२ पदमावत, पृ० ३१८

३ इन्द्रावती, पृ० ३८

अपेक्षाकृत काव्यात्मक प्रतीको के अधिक दृष्टिगत होते है। जैसे परम-तत्त्व के साक्षात्कार के लिए कुछ साधको ने चार अवस्थाएँ मानी है और कुछ ने सात स्थितिया ( मुकामात ) स्वीकार की है। सूफियो की मान्यता है कि साधना-पथ पर निरन्तर बढते जाने के लिए सात मुकामातो का बडा महत्त्व है। साधक अपनी साधना को क्रमश· अग्रसर करता जाता है और इन मुकामातो पर ठहर-ठहर कर अपनी स्थिति को मजबूत करता है। एक साथ किसो मार्ग को तय करने मे थकने की सभावना तो रहती ही है—खतरे की उसमे कही अधिक आशका हो जाती है। सूफी साधक अपने इष्ट की खोज मे 'सालिक' या यात्री की भूमिका का निर्वाह करता है। वह अपनी यात्रा पर पहुचने के लिए सात मुकामातो को तय करता हुआ ( शरीअत, तरीकत, मारिफत आदि ) अतिम लक्ष्य 'फनाफिल-हक' को प्राप्त करता है अर्थात् परमात्मा मे विलीन हो जाता है।[1] इस प्रकार सूफी साधक की यात्रा समाप्त हो जाती है और उसकी प्यास बुझ जाती है, वह अपने प्रियतम मे एकाकार हो जाता है। रूमी के अनुसार अन्तिम लक्ष्य 'फना' तक साधक को पश्चात्ताप, त्याग, परमात्मा मे विश्वास और जप की स्थितियो को पार करना होता है।[2] अत्तार ने इन्ही स्थितियो को सात घाटियो के नाम से प्रकट किया है।[3] पहली घाटी खोज

---

1 The Sufi sets out to seek God, calls himself a traveller ( Salik ), he advances by slow stages ( Magamat ) along a path ( Teriqat ) to the goal of union with reality (Fanafil-Haqq) —Mystics of Islam, p 28

2 It is the way that leads away from self, though repent-ence, renunciation, trust in god ( Tawakkul ), recollection ( Zikar ) to ecstasy and union with God The final stage is fana, culminating in pana-al-fana —Influence of Islam, p 150

3 The first of the seven is the Valley of Search, the second is the Valley of Love The third Valley is that of Knowle-dge The fourth stage is the Valley of Detachment The fifth Valley is that of Unification The sixth Valley is the Valley of Bewilderment, the seventh and the last Valley

की है, द्वितीय प्रेम की घाटी है। तृतीय घाटी ज्ञान की है। चौथी घाटी विच्छेद की है, इसमे सारी इच्छाए विलीन हो जाती है। पाचवी घाटी प्रियमिलन की है। छठी घाटी विस्मय की है और सातवी घाटी आत्म-लय की है।

उक्त सदर्भ को दृष्टि मे रखकर भारतीय साधना की ओर ध्यान दें तो हमे योगदर्शन, बौद्ध और जैन साधनाओ मे भी इस प्रकार की अवस्थाओ का स्पष्ट उल्लेख दिखाई पडेगा। योगदर्शन के अनुसार योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ अग हैं।[1] बौद्धो ने अष्टागयोग के स्थान पर षडगयोग को मान्यता दी।[2] जैन लोग आत्मा को स्वतन्त्र सत्ता मे विश्वास करते है। इसलिए वे आत्मा का परमात्मा मे विलय न दिखाकर केवलज्ञान और मोक्ष की स्थिति को चरम लक्ष्य मानते हैं। इसके लिए साधक को चौदह— मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत, देशविरत, प्रमत्तसयत, अप्रमत्तसयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसपराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगीजिन और अयोगीजिन—गुणस्थानो को पार करना होता है।[3] केवलज्ञान की स्थिति मे ध्यान, ध्याता और ध्येय का कोई विकल्प नही रह जाता। सक्षेप मे यह कहना होगा कि प्रत्येक धर्मावलम्बी ने सोपानो की स्थितियाँ स्वीकार की हैं।

सूफी साधना मे जिन सात मुकामातो अथवा चार अवस्थाओ का विधान है और इन मुकामातो को पार करने के लिए सूफी साधक बडी से बडी कीमत अदा करने को तैयार रहता है—इसी को ध्यान मे रखकर सूफी कवियो ने साधनापथ मे आनेवाली बाधाओ का प्रतीकात्मक सकेत समुद्रो, पर्वतो, घाटियो, नदियो आदि के रूप मे किया है। जायसी ने राजा के कूच (प्रयाण) करने पर मार्ग मे आनेवाली बाधाओ का जो वर्णन किया है वे साधना-पथ की बाधाओ के प्रतीक बनकर ही सामने आते हैं

---

is the Valley of Annihilation

—Persian Mystics, Attar, pp 29-30

१. डा० धर्मवीर भारती, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८८०

२. वही

३. द्रष्टव्य—गोम्मटसार आदि ग्रथ.

कहेह्नि आजु कछु थोर पयाना। काल्हि पयान दूरि है जाना ॥
ओहि मेलान जव पहुचिहि कोई। तव हम कहव पुरुष भल सोई ॥
एहि आगे परवत की पाटी। विषम पहार अगम सुठि घाटी ॥
विच विच खोह नदी औ नारा। ठावहिं ठाव उठहि वटपारा ॥
हनिवत केर सुनव पुनि हाका। दहु को पार होइ को थाका ॥
अस मन जानि संभारहु आगू। अगुआ केरि होहु पछलागू ॥
करहि पयान भोर उठि नितहि कोस दस जाहिं।
पंथी पंथाँ जे चलहि ते का रहन ओनाहिं ॥ १३६ ॥[1]

वास्तव मे जो वटोही मार्ग तय कर रहे है, वे क्या कभी टिके रहने के लिए ठहरते है ? उन्हे तो लक्ष्य तक पहुँचना रहता है। अत विश्राम के लिए तथा अपनी स्थिति को और सुदृढ करने के लिए रुकते है और पुन चलने लगते है। तव तक चलत जाते ह जव तक कि प्रियतम का मिलन नही हो जाता। नूरमुहम्मद ने सात मुकामातो का 'सात वन' को सज्ञा देकर मार्ग की वोहडता प्रकट की है

अगम पंथ मो सात वन, और समुद्र अथाह।
होत न कैसेहु मग मो, अगुवा विना निवाह ॥[2]

जायसी के खार, खीर, खधि, जल, उदधि, सुरा और किलकिला नामक सात समुद्रो का उल्लेख[3] सात मुकामातो का ही द्योतक है। वर्णन करने मे जायसी ने प्रतीकात्मक वोध के लिए काफी गुजाइश छोडी है। सातो समुद्र मिले हुए है परन्तु सभी का जल एक-दूसरे से भिन्न है

मिले समुंद वै ाँ वेहर वेहर नीर।[4]

तात्पर्य यह है कि सातो समुद्रो का जल भिन्न-भिन्न है परन्तु वे मिले हुए हैं। इसी प्रकार सातो मुकामातो का स्थितियाँ भिन्न-भिन्न है परन्तु एक स्थिति को पार किए विना दूसरी मे नही पहुँचा जा सकता। तृतीय

---

१ पदमावत, पृ० १३१
२ इन्द्रावती, पृ० १४
३ पदमावत, पृ० १४४-१५१
४ पदमावत, पृ० १४५

दधि समुद्र का वर्णन तीसरे मुकाम के समकक्ष है। इसमे 'दधि' का जो रूपक बाधा है वह स्पष्ट ही प्रतीकात्मक है। वे कहते हैं कि वह जीव धन्य है जो प्रेम से दग्ध हुआ हो। वही दही मे से मथकर घी निकालता है। दही की एक बूंद से सब दूध जम जाता है, वह खटाई की एक बूंद से पानी हो जाता है। शरीर प्राणरूपी दही से भरी मटकी है। इसमें मन-रूपी मथानी से प्राणरूपी दही पर चोट किए बिना घी अर्थात् परम ज्ञान की उपलब्धि नही हो सकती

> दधि समुंद्र देखत मन डहा। पेम क लुबुध दगध पै सहा॥
> पेम सो दाधा धनि वह जीऊ। दही माहि मथि काढै घीऊ॥
> दधि एक बूंद जाम सब खीरू। कांजी बुंद बिनसि होइ नीरू॥
> स्वास दहेड़ि मन मथनी गाढ़ी। हिएं चोट बिनु फूट न ढ़ी॥[1]

जायसी ने सूफियो के सात मुकामातो या चार अवस्थाओ की ओर एकाधिक वार सकेत किया है। वे एक स्थान पर इन्हे सात खंडो की सज्ञा देते हैं। उनका कहना है कि मार्ग अगम्य है परन्तु वह मार्ग सुई की नोक पर चलने के समान है। उसका चढना अत्यधिक तीखा है और सात खड चढने पडते हैं।

> पै सुठि अगम पंथ बढ बाका। तस मारग जस सुई क नाका॥
> बाक चढाव खंड ऊंचा। चारि बसेरे जाइ पहूँचा॥[2]

सिहल द्वीप पर पहुँचना अत्यधिक कठिन है क्योकि मार्ग में सात समुद्र पडते हैं जो अथाह हैं

> खार खीर दहि उदधि सुरा जल पुनि किलकिला अकूत।
> को चढि वाधै समुद ये सातौं है काकर अस बूत॥[3]

जायसी ने सातवें समुद्र मानसर का जो वर्णन किया है उसकी तुलना सूफियो की अतिम फना की स्थिति से की जा सकती है। सातवें 'मानसर' में आकर साधक का अज्ञानाधकार अथवा तमस् मिट जाता है तथा प्रात -कालीन प्रकाश की ज्योति के समान उसकी आत्मा निर्मल हो जाती है।

---

१ पदमावत, पृ० १४६

२ जायसी-ग्रन्थावली, पृ० ३१५

३ पदमावत, पृ० १३७

'मानसर' समुद्र के वर्णन को देखकर कोई सहज मे ही इसे प्रतीकात्मक अर्थ से परिपूर्ण कहेगा

देखि म  र रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा ॥
गा अधियार रैनि मसि छूटी। भा भिनुसार किरिन रवि फूटी ॥
अस्तु अस्तु साथी सब बोले। अंध जो अहे नैन विधि खोले ॥
कंवल विगस तह विहंसी देही। भवर दसन होइ होइ रस लेहीं ॥
हंसहि हंस औ करहि किरीरा। चुनहि रतन मुकताहल हीरा ॥
जौं अस साधि आव तप जोगू। पूजै आस मान रस भोगू ॥
भवर जो मनसा मानसर लीन्ह कंवल रस आइ।
घुन जो हियाव न कै सका झूर काठ तस खाइ ॥ १५८ ॥[1]

कवि उसमान ने साधना की शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत की अवस्थाओ के प्रतीकस्वरूप भोगपुर, गोरखपुर, नेहनगर और रूपनगर का वर्णन किया है। साधक-यात्री जब रूपनगर को प्रस्थान करता है तो सर्वप्रथम भोगपुर पडता है। वास्तव मे यह भोग-विलास सामग्री का प्रतीक है। इस नगर में इन्द्रियाकर्षक वस्तुएँ हैं परन्तु साधक उनकी ओर बिना आकर्षित हुए आगे बढता है। मार्ग तो दुरूह है ही, इसी से कहा है कि इस पर वही चल सकता है जिसका कलेजा लोहे का हो :

जाइ सोई जो जिउ परतेजा। सार पासुली लोह करेजा ॥[2]

जब भोगपुर में साधक अपनी विजय पाता है तब वह गोरखपुर पहुचकर गुरु की सहायता से योग साधता है। जब उसे अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है तब वह नेहनगर को प्रस्थान करता है और वहीं पहुँचकर उसे प्रेम की पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाती है। जब सासारिक कोई मोह नही रहता तब वह रूपनगर में पहुँचता है। यही उसका अतिम लक्ष्य था। परन्तु यह मार्ग असिधार के तुल्य है।[3] सूफी कवियो ने सात समुद्र अथवा चार अवस्थाओ के विवेचन मे अलग-अलग उपमानो का प्रयोग किया है। नूरमुहम्मद ने

---

१. पदमावत, पृ० १५१.

२ चित्रावली, पृ० ७९

३ वही, पृ० ८४

शरीर की स्थिति दिखाते हुए शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारिफत की स्थिति को ही समझाया है। शरीर एक मूर्तिमान् मन्दिर है, उसमें मन एक फुलवारी है। तीसरी अवस्था मे जीव एक हकीकत है। चौथी अवस्था मारिफत 'ज्योतिसदन' है जहा अज्ञानान्धकार का पूर्ण क्षय हो जाता है

एक सरीर मदिर छविधारी। दूसर है यह मन फुलवारी ॥
तीसरे माहिं जीवन अस्थाना। चौथा जोति सदन हम जाना ॥[1]

जायसी ने सिंहलगढ का वर्णन करते समय जिन सात चढावो का वर्णन किया है वे भी साधना के क्षेत्र मे प्रतीक हैं

कहौ तोहि सिंघलगढ है खड सात चढाउ।
फिरा न कोई जिअति जिउ सरग पंथ दै पाउ ॥[2]

इसी प्रकार नव द्वार इद्रियो के प्रतीक के लिए, पाँच हरकारा ज्ञानेन्द्रियो आदि के लिए अनेक प्रतीकात्मक शब्द इन सूफी काव्यो मे मिल जाते हैं।

साधनात्मक प्रतीको के अतिरिक्त सूफियो ने जीवात्मा और परमात्मा के प्रेम स्थापन मे शुक, बुलबुल, चमन, चन्द्रमा-चकोर, सूर्य-कमल, पतग-दीपक, भौरा-गुलाब, जल-मीन और बाँसुरी आदि प्रेम-प्रतीको की सहायता ली। जब सूफी कवि कमल और सूर्य के प्रीति निर्वाह की बात कहता है तब वह जीवात्मा और परमात्मा के प्रेम की ओर इगित करता है। नूरमुहम्मद कमल सूरज और चुम्बक तथा लोहे का वर्णन प्रतीकात्मक ही करते हैं

तौ उत्तम को ध्यान भला है, कमल सुरज को प्रीति निबाहै।
कहा मयंक कहा ससिनेही, दीपक कहा कहा तमगेही ॥[3]
आनवस्तु पर उपनत दोहा, चुम्बक पाहन चाहत लोहा।
देखौ पतग गृह्य मन रीझा, मन भावन मरा ऊपर सीझा।
पंकरुह तिमिरारि लुभाना, जलमह ताहि देखि बिगसाना।

---

१ इन्द्रावती, पृ० ७१

२ पदमावत पृ० २०८

३. अनुराग बासुरी, पृ० १०४

पाइ गुलाब गुलाब सनेही, चहचहात आनन्द देही ।
अमरकोस मृगमद नित रागी, प्रेम की रीति निरार सुभागी ॥[1]

पद्मावती को जब रतनसेन का वियोग सताता है तो उसे रात्रि को नीद नही आती । शय्या पर लेटती है तो उसे ऐसा लगता है कि वहा किसी ने कॅच ( केच की कली के रेशे से शरीर पर अत्यधिक जलन और खुजाल होती है ) लगा दी है। चन्द्रमा, चन्दनादि सभी उसे ताप देते है । विरहाग्नि मे शरीर झुलसता हे । रात्रिकाल एक युग के समान बीतता हे आदि—

पदुमावति तेहि जोग सजोगा । परी पेम बस गहे बियोगा ॥
नींद न परै रैनि जौं आवा । सेज केवाछ जानु कोई लावा ॥
दहै चाँद औ चन्दन चीरू । दगध करै तन बिरह गभीरू ॥
कलप समान रैनि हठि वाढी । तिल तिल मरि जुग जुग बर गाढी ॥[2]

जीवात्मा जब प्रियतम परमात्मा के वियोग मे तडफती है तो उसकी दशा वही होती है जो जल के बिना मछली की । इसी वात को जायसी ने पद्मावती के सदर्भ मे प्रकट किया है । पद्मावती मछली की तरह तडफती है और 'पिउ-पिउ' रटते-रटते पपीही हो हो गई है

कौन मोहनी दहुँ हुत तोही । जो तोहि बिद्या सो उपनी मोही ॥
बिनु जल मीन तलफ जस जीऊ । चातकि भइउ कहत 'पिउ-पिऊ' ॥

चन्द्रमा और चकोर का प्रेम बहुचर्चित है । जिस प्रकार साधक जीवात्मा परमात्मा से मिलने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है उसी प्रकार चन्द्रमा को पाने के लिए चकोर मडराता ही रहता है । सूफियो ने चन्द्र और चकोर का प्रतीको के लिए उपयोग किया है । कवि नूरमुहम्मद ने एक स्थान पर नेत्र के लिए चकोर और मुख के लिए चन्द्रमा का रूपक दिया है

मन लोचन मो चंद दिसि, रहिगा चितै चकोर ।
चंद बिलोकत रहि गयउ, जिन चकोर की ओर ॥[3]

---

१ अनुराग बासुरी, पृ० ११२

२ पदमावत, पृ० १६१.

३ इन्द्रावती पृ० ६०

सूफी काव्यो मे सूर्य-चन्द्र का उपमानो के रूप मे बहुतायत से प्रयोग किया गया है। भारतीय शास्त्रो मे सूर्य को अग्नितत्त्व और चन्द्रमा को सोमतत्त्व माना है। यह जगत् इन्ही दोनो तत्त्वो का प्रतिफल है। सूर्य को अग्नितत्त्व मानने का मूल कारण यह है कि वही सासारिक जीवन मे प्राणो का सचार करता है। सोमतत्त्व अर्थात् शीतल तत्त्व अर्थात् मातृतत्त्व है। जब सोमतत्त्व और अग्नितत्त्व का मिलन होता है तब सृष्टि की रचना होती है। जब तक सूर्य और चन्द्र या यो कहे कि पुरुषतत्त्व और स्त्रीतत्त्व का सयोग न हो तो सृष्टि ही न हो। इसी रूप को ध्यान मे रखकर सूफियो के प्रेमी-प्रेमिकाओ अथवा नायक-नायिकाओ तथा जीवात्मा व परमात्मा के लिए प्रयुक्त सूर्य-चन्द्र की व्याख्या से ज्ञात होता है कि उन्होने अनेक बार प्रतीकात्मक ढग से इन शब्दो का प्रयोग किया है। रतनसेन से पद्मावती के सौन्दर्य के विषय मे जब सुग्गा कहता है कि जिस प्रकार उगते हुए सूर्य की धूप से चाँद छिप जाता है उसी प्रकार सब स्त्रियाँ पद्मावती के रूप के आगे छिप जाती हैं :

> उअत सूर जस देखिअ चांद छपै तेहि धूप।
> अैसे सबै जाहि छपि पदुमावति के रूप ॥[1]

तव रतनसेन को कहना पडता है

> तुइ सुरंग मूरति वह कही। चित महं लागि चित्र होइ रही ॥
> जनु होइ सुरुज आइ मन बसी। सब घट पूरि हिएं परगसी ॥[2]

अर्थात् पद्मावतीरूपी सूर्य ने उसके शरीर मे प्रवेशकर हृदय को प्रकाशित कर दिया। प्रकाशित ही नही किया अपितु उसे सूर्यरूप कर दिया और स्वय छायारूप हो गई

> अव हौं सुरुज चाँद वह छाया।[3]

अव रतनसेन सूर्य है और पद्मावती छाया और चन्द्र है। यही उपयुक्त भी है। स्त्रीतत्त्व ही शीतल और सोम होता है। इन दोनो का लय या

---

१ पदमावत, पृ० ९२
२ वही, पृ० ९३
३ वही

एकात्म होना ही सूफियो की अतिम परिणति है। जायसी ने पद्मावती के कानो के कुण्डलो को सूर्य और चन्द्रमा के समान चमकीला वताया है

दुहु दिसि चाँद सुरुज चमकाही। नखतन्ह भरे निरखि नहिं जाही।[1]

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सोम अथवा चन्द्र स्त्री का प्रतीक है और सूर्य पुरुप का प्रतीक है। जायसी ने एक स्थान पर स्पष्ट ही लिखा है।

सखी देखावहिं चमकहु बाहू। तू जस चाँद सुरुज तोर नाहू॥
छपा न रहे सुरुज परगासू। देखि कवल मन भएउ हुलासू॥[2]

अर्थात् पद्मावती को सखिया उसके पति को दिखाकर कहती हैं कि तू जैसे 'चाँद' है वैसे ही तेरा पति 'सूरज' है। सूर्य के प्रकाश से रात्रिरूपी अधकार नष्ट हो जाता है। कमल खिल उठते हैं। सूर्य और चन्द्रमा का मिलन सभव नही दिखाई पडता परन्तु जायसी ने प्रतीको के माध्यम से वह भी सभव कर दिखाया और इस वात की भी पुष्टि कर दी कि चन्द्र स्त्री का और सूर्य पुरुप का प्रतीक है

चाँद सुरुज दुइ निरमल दुवौ संजोग अनूप।
सुरुज चाँद सौं भूला चाँद सुरुज के रूप॥

पद्मावती ने रतनसेन को देखा तो उसके मन मे काम के आठो भाव जाग्रत हो गए। जायसी ने इसे इस प्रकार लिखा है।

देखा सुरुज जस साजा। अस्टौ भाउ मदन तन गाजा॥[4]

सूर्य और चन्द्र के प्रतीक रूपो को देखा। दीपक और पतग का प्रेम भी किसी से छिपा नही। जव तक दीपक की लौ से पतग जलकर राख नही हो जाता, वह दीपक पर ही मडराता रहता है। इसे उसकी प्रीति, स्वभाव अथवा यदि मानते हैं तो नियति भी कह सकते है

१ वही, पृ० १०७
२ वही, पृ० २६५
३ वही, पृ० २७२
४ वही, पृ० २६५

दीपक प्रीति पलंग जेउं जनम निबाह् करेउं ।
नेवछावरि चहुँ पास होइ कठ लागि जिउ देउ ॥[१]

पदमावत मे जायसी ने कथा को प्रतीको के आधार पर खडा किया है। कथा मे चित्तौड तन का प्रतोक और राजा रतनसेन मन का प्रतीक है। सिहल उसका हृदय है, पद्मावती बुद्धि है, नागमती दुनिया-धधा है, सुआ गुरु है और राघव शैतान तथा अलाउद्दीन माया के प्रतीक हैं।[२] वास्तव मे हठयोग की साधना-प्रक्रिया को जायसी ने प्रतीको के माध्यम से समझाने की चेष्टा की है। सिहलगढ का जब वे वर्णन करते है तो कुडलिनी और ब्रह्माण्ड तक का चित्र उपस्थित हो जाता है

तरहिं कुरुंम बासुकि कै पीठी । ऊपर इन्द्रलोक पर डीठी ॥
परा खोह चहुदिसि तस बाका । कापै जाघि जाइ नहिं झाका ॥
अगम असूझ देखि डर खाई । परै सो सप्त पतारन्ह् जाई ॥
नव पवरी बाकी नव खडा । नवहु जो चढै जाइ ब्रह्मडा ॥
कचन कोट जरे कौसीसा । नखतन्ह भरा बीजु अस दीसा ॥
लका चाहि ऊच गढ ताका । निरखि न जाइ दिस्टि मन थाका ॥

हिज न समाइ दिस्टि नहिं पहुचै जानहु ठाढ सुमेरु ।
कहं लगि कहौं ऊंचाई ताकरि कह लगि बरनौं फेरु ॥४०॥[३]

गढ मे जो नौ द्वार और नौ मजिलें है वही शरीर के नौ द्वारो के प्रतीक हैं। जो इन नवो स्थानो को पार कर लेता है वह ब्रह्माण्ड को पा लेता है। परन्तु उसे पाने के लिए गढ के वज्र किवाडो को तोडकर जाना होता है जो इतना सरल नहीं। उसकी ऊचाई भी अधिक है। नौ खण्डो पर नौ द्वार हैं। उनमे वज्र के किवाड लगे हैं। उन पर चार पडाव देकर चढना चाहिये और इसके लिए जो सत्यमार्ग का अनुसरण करेगा वही चढ पायेगा।

नवौ खड नव पवरीं और तह वज्र केवार ।
चारि वसेरे सो चढै सत सौं चढै जो पार ॥[४]

---

१ वही, पृ० ७०१

२ जायसी-ग्रन्थावली, उपसहार पृ० ३८१

३ पदमावत, पृ० ८०

४ वही, पृ० ८१

उक्त दोहे मे जो चार वसेरे की वात कही गई है वह स्पष्ट ही सूफियो के शरीअत, तरीकत, मारिफत और हकीकत इन चार अवस्थाओ की ओर लक्ष्य करके कही गई है। ये कुछ ऐसे उद्धरण है जिनमे हठयोग आदि सम्वन्धी अर्थो को प्रतिपादित करने मे आयास और श्रम की अपेक्षा नही।

श्वास प्रक्रिया से कुडलिनी को जाग्रत किया जाता है। उसी के द्वारा साधक ब्रह्माण्ड तक अथवा ब्रह्मज्ञान की स्थिति तक पहुँचता है। इसमे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धाख्य, आज्ञा और सहस्रादि चक्रो को स्थिति से गुजरना होता है। इस मार्ग को ऊचाई से तय करना अत्यधिक कठिन होता है। जायसी ने ब्रह्माण्ड की ऊँचाई का और उस तक पहुँचने के मार्ग का वर्णन सिंहलगढ के माध्यम से इस प्रकार किया है ·

सो गढ देखु गगनु तें ऊंचा। नैन देख कर नाहि पहूँचा॥
विजुरी चक्र फिरै चहुं फेरी। औ जमकात फिरै जम केरी॥
धाइ जो वाजा कै मन साधा। मारा चक्र भएउ दुइ आधा॥
चंद सुरुज औ नखत तराईं। तेहि डर अंतरिख फिरैं सवाईं॥
पवन जाइ तहं पहुंचै चहा। मारा तैस टूटि भुइ वहा॥[1]

हठयोगी साधना की दुरूहता भी किसी से छिपी नही है। उक्त उद्धरण से यह वात और भी स्पष्ट हो जाती है। जायसी ने एक अन्य स्थान पर दशम द्वार का उल्लेख किया है जो कि यौगिक प्रक्रिया से ही सवधित जान पडता है

दसवं दुवार तारु का लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा॥
जाइ सो जाइ सांस मन वदी। जस धंसि लीन्ह कान्ह कालिन्दी॥[2]

अर्थात् दशम द्वार अथवा ब्रह्माण्ड अत्यधिक ऊंचे स्थान पर है। जिसने अपनी दृष्टि अन्य वस्तुओ से हटाकर उसी ओर लगा दी है वही उसे देख सकता है। जिसका प्राण मन के साथ वध जाता है वही उसके समीप पहुँच पाता है। गढ को शरीर की रचना द्वारा जायसी जव समझाने लगते हैं तव उनकी प्रतीकात्मक शैली की वात और भी मुखर होकर सामने आ जाती है। जायसी लिखते हैं

---

१ पदमावत, पृ० १५४

२ वही, पृ० २०७

गढ तस बाक जैसि तोरि काया । परखि देखु तैं ओहि की छाया ॥
पाइअ नाहिं जूझि हठि कीन्हे । जेइ पावा तेइं आपुहि चीन्हे ॥
नौ पौरी तेहि गढ मंझिआरा । औ तह फिरहिं पांच कोटवारा ॥
दसवं दुआर गुपुत एक नाॅकी । अगम चढ़ाव बाट सुठि बाकी ॥
भेदी कोइ जाइ ओहि घाटी । जौं लै भेद चढै होइ चाटी ॥
गढ तर सुरङ्ग कुंड अवगाहा । तेहि मह पंथ कहो तोहि पाहां ॥
चोर पैठि जस सेंधि सवारी । जुआ पैंत जेउ लाव जुआरी ॥
जस मरजिया समुन्द धंसि मारैं हाथ आव तब सीप ।
ढूंढि लेहि ओहि सरग दुवारी और चढु सिंघलदीप ॥१२५॥[1]

अर्थात् गढ वैसा ही बाका है जैसा तेरा शरीर । तू परीक्षा करके देख कि दोनो मे साम्य है कि नही। जिसने आत्मा को पहचान लिया उसने सिद्धि प्राप्त कर ली। शरीर मे नौ इन्द्रिय-द्वार हैं और पच प्राण उसकी रक्षा करने वाले कोतवाल हैं। ब्रह्मरन्ध्र उसका दशम गुप्त द्वार है। उस तक पहुचने का मार्ग दुर्गम्य और टेढा है। उसका भेद गुरु से जानकर ही कोई भेदी पिपीलिका गति से उस घाटी तक पहुँच सकता है। इस शरीर-रूपी गढ मे सबसे नीचे सुषुम्नारूपी सुरग है जो मूलाधाररूपी अगाध कुड से आरम्भ होती है। ब्रह्माण्ड तक पहुँचने का मार्ग उसी मे होकर गया है। जिस प्रकार चोर चुपचाप सेंध लगाकर घुसता है उसी प्रकार जो गुप्त साधना करता है, जिस प्रकार जुआरी अपनी सारी पूँजी दाव पर लगाकर जुआ खेलता है उसी प्रकार जो साधक अपना माया-मोह त्यागकर साधना करता है और समुद्र मे घुसने वाले गोताखोर की भाति जोकि प्राणो को हथेलो पर लेकर योग-साधना करता है उसी को ब्रह्मरूपी मणि प्राप्त होती है। जो सुषुम्ना के इस स्वर्गद्वार नामक आरम्भ को पा लेता है वही अतिम सिद्धि-स्थान तक पहुँचता है।

दशम द्वार को कोई मर्मी ही खोल सकता है, इसकी जानकारी नूर-मुहम्मद को भलीभाँति थी

दसई द्वार न खोलत कोई । तब खोलैं जा मरमी होई ॥[2]

---

१ वही, पृ० २०५

२ इन्द्रावती, पृ० ७७

साधनात्मक प्रसगो मे सूफी कवियो ने दर्पण का उल्लेख हृदय के प्रतीकार्थ मे किया है। साधक को चाहिये कि वह अपने हृदयरूपी दर्पण पर धूल न जमने दे अन्यथा वह अपने इष्ट का प्रतिबिम्ब नही देख सकेगा। इसीलिए उसमान दर्पण को सभालने की बात कहते है

यह दरपन तुम्ह लेहु सभारी, जेहि महं देखहु दरस पियारो।
अब नहिं लावहु चित वैरागा, मांजत रहव जो मैल न लागा ॥[1]

नूरमुहम्मद का कथन है

पै हवही नहि उचित परगट देउ देखाय।
दखे मेरो छाया, ऐसे करहु उपाय ॥
झांका दरपन मो परछाही, परी वदन की बिछुरी नाही ॥[2]

वास्तव मे सूफियो को 'दर्पण' प्रतीक योजना से एक रहस्योद्घाटन होता है। भारतीय विचारधारा मे ईश्वर को विराटस्वरूप माना गया है। उस विराट को साक्षात् देखने की शक्ति साधारण प्राणी मे कैसे सभावित है ? वह तो उस स्वरूप को हृदयरूपी दर्पण मे उतारता है—देखता है। सूफी भी अपने प्रिय अर्थात् परमात्मा को हृदयरूपी दर्पण मे देखता है

तेहि रूपवंती रूप सो, दरपन पायउ रूप।[3]

इन्द्रावती मे कुवर को स्वप्नदर्शन होता है। कुवर अपनी अनुभूति को इस प्रकार व्यक्त करता है

मोहिं अचरज हिरदय मो आही। कैसे मुकुर म देखा ताही ॥
यह सपने को को पतियाई। मुकुर सौहं बिनु देखिन जाई ॥[4]

जायसी ने लिखा कि अमुक-अमुक वस्तुओ ने दर्पण के समान पद्मावती के अगो का प्रतिविम्व ग्रहण किया

१ चित्रावली, पृ० १०२
२. 'इद्रावती, पृ० ११४
३ वही, पृ० १०
४ वही, पृ० ११.

पाए रूप रूप जस चहे। ससि मुख सब दरपन होइ रहे॥
नैन जो देखे कंवल भए निरमर नीर सरीर।
हसत जो देखे हंस भए दसन जोति नग हीर॥[१]

इन प्रतीको के अतिरिक्त सूफियो ने दैनिक जीवनोपयोगी पदार्थों का भी प्रतीकार्थों के लिए प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ जायसी ने कत्था, चूना, पान और सुपारी का उल्लेख किया है। ये चारो पदार्थ चार प्रकार की शून्य अवस्थाओ के प्रतीक हैं। पान शून्य, सुपारी अति शून्य, कत्था महाशून्य और चूना सर्वशून्य के प्रतीक हैं।[२]

पान सुपारी खैर दुहु मेरै करै चक चून।
तब लगि रंग न राचै जब लगि होइ न चून॥[३]

सूफी प्रतीको के सदर्भ मे डॉ० सरला शुक्ल ने 'इजिप्शियन लायब्रेरी' के हस्तलिखित ग्रन्थ 'अल सिर्रफि अनफास अल सूफिया' मे वर्णित सूफी मत को उनतीस परिभाषाओ को उद्धृत किया है[४] जो इस प्रकार हैं

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| अलिफ | — | सूफी मत का तात्पर्य | | सद्गुणो की प्राप्ति एव दुर्गुणो का अभाव है। |
| बे | — | ,, | ,, | आत्मा की खोज एव लौकिक सुखो का त्याग है। |
| ते | — | ,, | ,, | सिद्धात-रक्षा एव तुच्छ विचारो का त्याग है। |
| टे | — | ,, | ,, | परमेश्वर की सेवा म हृदय की दृढता है। |
| जीम | — | ,, | ,, | विषय-वासनाओ पर नियन्त्रण रखना है। |
| हे | — | ,, | ,, | गुप्त भेद की सुरक्षा, धर्मात्माओ की श्रद्धा एव पतितो का पार्थक्य है। |
| खे | — | ,, | ,, | सग्रह-त्याग ही नही, उसकी आशा का भी त्याग है। |

---

१. पदमावत, पृ० ६५
२. देखिए—पदमावत में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का प्राक्कथन, पृ० ४७.
३ वही.
४ हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० २२५.

जोय—सूफीमत का तात्पर्य कष्टो की उपस्थिति मे भी हर्ष एव कृतज्ञता प्रदर्शित करना है ।

ऐन— ,, ,, महान् उद्देश्य एव ईश्वर की महान् अनुकम्पा है ।

गैन— ,, ,, अवैध वस्तुओ से घृणा एव परमात्मप्रसाद से प्रेम है ।

फे— ,, ,, मानवत्व से ऊपर उठकर परमात्मा तक पहुँचना है ।

काफ— ,, ,, उस प्रकाश की प्राप्ति है जो मुक्ति देता है ।

काफ— ,, ,, वास्तविकता-लाभ एव क्षणिकता का विनाश है ।

लाम— ,, ,, परमेश्वर से एकत्व तथा अन्य वस्तुओ से विछोह है ।'

मीम— ,, ,, आत्मचिन्तन है ।

नून— ,, ,, लालसा साफल्य की प्राप्ति की आतुरता है ।

हे— ,, ,, परमेश्वर का क्रोध एव दण्ड देने के समय भी निर्विकार होना है ।

वाव— ,, ,, सत्यमार्ग के परिपालन से परमेश्वर की प्राप्ति है ।

लाम-अलिफ— ,, ,, परमेश्वर की सत्ता के गुप्त भेद का प्रकाश है ।

ये— ,, ,, पाप-कारण के समूलनाश का दृढ निश्चय है ।

'इन परिभाषाओ का मनन करने से सूफीमत की सहनशीलता, उदारता एव स्नेहार्द्रता का परिचय मिलता है'[1] इसमे सदेह नही, परन्तु ये प्रतीको की श्रेणी मे रखे जाने चाहिये अथवा नही, यह अवश्य विचारणीय है । सूफी साहित्य मे वर्णमाला पर आधारित प्रतीको का उल्लेख मेरी दृष्टि मे नही आया । उर्दू के कुछ अक्षर ऐसे है जिनमे विन्दु (नुक्ते) के हेर-फेर से शब्दो मे काफी अन्तर पड जाता है, जैसे खुदा से जुदा

१ हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० २२६

हो जाता है। बुल्लेशाह ने अद्वैत की भावना के सम्बन्ध में उर्दू के ऐन व गैन का उल्लेख किया है कि ऐन पर एक बिन्दु ( नुक्ता ) लगा देने से गैन बन जाता है और उसी बिन्दु को हटा देने पर पुन गैन से ऐन बन जाता है

दुक बूझ कवन छप आया है।
इक नुकते मे जो फेर पड़ा, तब ऐन गैन का नाम धरा।
जब मुरसद नुकता दूर किया, तब ऐनो ऐन कहाया है॥[1]

परन्तु इन उद्धरणो का प्रतीको के सन्दर्भ मे कोई महत्त्व नही है। कहने का भाव यह है कि उर्दू वर्णमाला के २९ अक्षरो पर आधारित सूफियो की जो परिभाषाएँ है वे प्रतीक नही अपितु परिभाषाएँ ही हैं।

जिन सूफी कवियो ने जान-बूझकर अपने काव्यो मे प्रतीको को स्थान दिया है, उनमे से अधिकाश ने कथा को आध्यात्मिक धरातल पर उतारने के लिए ही उनका प्रयोग किया है। जायसी ने पदमावत के प्रारम्भ मे ही कथा के रहस्यपूर्ण अथवा आध्यात्मिक अर्थ की ओर स्पष्ट सकेत कर दिया है

आदि अंत जसि कथ्था अहे। लिखि भाषा चौपाई कहै।
कबि विआस रस कौंला पूरी। दूरिहि निअर निअर भा दूरी॥
भंवर आइ बनखण्ड हुति लेहि कंवल के बास।
दादुर बास न पावहिं भलेहिं जो आछहिं पास॥[2]

पहले सकेत किया जा चुका है कि सूफियो का काव्य एव अध्यात्म पक्ष प्रेमभक्ति पर खडा है। प्रेम की साधना से एक साधक वह सब कुछ पा लेता है जो उसे इष्ट होता है। प्रेम ऐसा माध्यम है जो परमात्मा से साक्षात्कार ही नही अपितु सामरस्य की स्थिति ला देता है। सूफी परिभाषा मे परमात्मा ही प्रेमिका है। जायसी ने पदमावत मे प्रमुख पात्रो के रूप में जिन प्रतीको की स्थापना की है वे कथा को आध्यात्मिकता पर प्रकाश डालते है। पद्मावती विश्वज्योति के रूप मे अवतरित होती है। वह प्रकाश की प्रतीक है

१ सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० १५६.
२ पदमावत, पृ० २८

जानहु सुरज किरिन हुति काढी। सूरुज करा घाटि वह वाढी।
भा निसि माह दिन क परगासू। सब उजिआर भएउ कविलासू॥[1]

ग्रन्थ के अन्त मे जायसी ने सभी पात्रो के प्रतीकार्थो को स्पष्ट करके भ्रम-निवारण कर दिया है

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। विनु गुरु जगत का निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धधा। वांचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोई सतानू। माया अलाउद्दीं सुलतानू॥
प्रेम कथा एहि भाति विचारहु। बूझि लेहु जौ वूझै पारहु॥[2]

कथा मे चित्तौड शरीर का, रतनसेन मन का, सिंहल हृदय का, पद्मावती वुद्धि की, हीरामन तोता गुरु का, नागमती प्रपच, राघव शैतान और अलाउद्दीन माया का प्रतीक है। प्रसगात् इसका उल्लेख पहले भी किया गया है। साधना के क्षेत्र मे इन सबकी उपयोगिता एव अनुपयोगिता का प्रश्न है। गुरु साधना-मार्ग का निदेशक होता है। गुरु की कृपा से ही शिष्य साधना के भेद को जानता है

चेला सिद्धि सो पावै, गुरु सौं करै अछेद।
गुरु करै जो किरिया, पावै चेला भेद॥[3]

हीरामन सुआ गुरु का प्रतीक है :

हीरामनि राजा सौं बोला। एही समुद आइ सत डोला॥
एहि ठाउ कहं गुरु सग कीजै। गुरु सग होइ पार तौ लीजै॥[4]
पूछा राजैं कह गुरु सुआ। न जनौ आज कहा दिन उवा॥[5]

पदमावत की कथा मे रतनसेनरूपी साधक प्रेममार्ग की नागमती-रूपी प्रपच, राघव शैतान और अलाउद्दीनरूपी माया आदि बाधाओ को हटाता हुआ सिंहल द्वीप अर्थात् हृदय मे पहुँचता है। वहाँ से पुन नौ द्वारो को पार करता हुआ दशम द्वार या ब्रह्मरन्ध्र मे पहुँचता है। वही

१ पदमावत, पृ० ५१
२ जायसी-ग्रन्थावली, पृ० ३०१
३ वही, पृ० १०८
४. पदमावत, पृ० १४९.
५ वही, पृ० १७३

उसे उसकी प्रेमिका पद्मावती अर्थात् सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार कथा के आध्यात्मिक तथ्यो से परिचित हुआ जा सकता है।

सूफी प्रेमाख्यानको मे ही कथा को आध्यात्मिक ढाँचे मे ढालने के लिए प्रतीको का प्रयोग नही हुआ है वरन् हिन्दू काव्यो मे भी ऐसा पाया जाता है। पुहुकर कवि ने रसरतन वैरागर को वैराग्य रूप और सूरसेन राजा को जीवनी सज्ञा से अभिहित किया है। उसके सत्सगति और सद्बुद्धि नामक दो पत्नियाँ है। इन्ही के सहारे प्रीत की ज्योति जलाकर, विषयादिक सुखो का त्याग करके इष्टलाभ लेना चाहता है :

**वैरागर वैराग वपु, हीरा हित हरि नाम।**
**प्रीत जोत जिय जगमगै, हरै त्रिविध तनु ताप॥**
**सतसगति सतबुद्धि उर, विव घरनी सग लाय।**
**ज्ञान बान प्रस्थान करि, तजै विषै सुख पाय॥**[1]

उसमान कवि की रचना चित्रावली का कथासार द्वितीय अध्याय मे दिया गया है। कथा के अध्ययन से लगता है कि इनका आध्यात्मिक पक्ष जायसी की रचना से प्रभावित है। कवि की अद्वैत भावना का तब पता चलता है जबकि वह स्वय कहता है

**सब वही भीतर वह सब माही। सबै आपु दूसर कोउ नाही॥**
**दूसर जगत नामु जिन पावा। जैसे लहरी उदधि कहावा॥**[2]

पात्रो को प्रतीक रूप मे देखा जा सकता है। चित्रावली विद्या और कवलावती अविद्या की प्रतीक है। चित्रावली ईश्वरीय शक्ति की प्रतीक भी है। जब वह जल मे अदृष्ट हो जाती है तब उसकी सखियाँ कहती है कि तू प्रकट रूप मे भी छिपी रहती है फिर गुप्त रूप मे हम तुझे क्या जान सकते है। ब्रह्मा चारो वेदो को पढकर भी तुम्हे न खोज सका और तुम्हारे भेद को न जान सका। शकर भी सेवा करके हार गये और पार न पा सके। हम ऐसी अधी है कि अपना आपा ही नही सूझता तब तुम्हारा भेद कैसे जानेंगी? तुम्हारा ऐसा कौनसा स्थान है जहाँ तुम नही हो? तुम सर्वत्र हो परन्तु हमारी नेत्र-ज्योति ऐसी नही जो तुम्हे देख सके। योगी होने अथवा पोथियो के पढने से कुछ नही होता। तुम्हे तो वही पा सकता है जिसे तुम स्वय मार्ग दिखाती हो

---

१. रसरतन, सपा०—डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० २६८.

२. चित्रावली, पृ० ?

गुपुत तोहि पावहिं का जानी। परगट मह जो रहहि छपानी ॥
चतुरानन पढि चारौ वेदू। रहा खोजि पै पाव न भेदू ॥
संकर पुनि हारे कै सेवा। ताहि न मिलिज आर को देवा ॥
हम अंधी जेहि आप न सूझा। भेद तुम्हार कहाँ लौं वूझा ॥
कौन सो ठाऊ जहाँ तुम नाही। हम चषु जोति न देखहि काही ॥
पावै खोज तुम्हार सो, जेहि देखलावहु पथ।
कहा होइ जोगी भए, और पुनि पढे गरंथ ॥[1]

कथा मे राजकुमार सुजान का सुवुद्धि नामक मित्र है, वह भी आध्यात्मिक दृष्टि का ही प्रतीक है। साधना विना सद्वुद्धि के योग के नही होती। सद्वुद्धि गुरु देता है। उसमान गुरु के महत्त्व को स्वीकार करते हैं

कथा मान कवि गायेउ नई। गुरु परसाद समापत भई ॥[2]

जैसा कि लिखा जा चुका है कि चित्रावली विद्या की प्रतीक है और सुजानरूपी साधक उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। चित्रावली के स्वरूप का वर्णन कथा मे परेवा द्वारा कराया गया है। उसका वह स्वरूप पूर्णत आध्यात्मिक है। परेवा कहता है कि चित्रावली वह है जिसका तीनो लोको मे ध्यान किया जाता है। देवलोक मे सभी उसका ध्यान करते है। पाताललोक मे सभी उसकी सेवा करते हैं। मर्त्यलोक मे प्रत्येक घर मे उसकी चर्चा होती है। पक्षी उसी को पाने के लिए उदास घूमते है। पर्वत एकस्थ होकर उसके नाम का जाप करते है। पृथ्वी एक पग पर खडी हो उसी की सेवा करती है। जो व्यक्ति जानबूझकर उसके नाम को भूलता है वह व्यक्ति जीवित होते हुए भी अभागा हैं। चित्रावली का स्वरूप ऐसा दीप्तिमान है कि चन्द्र-सूर्य भी उसकी समता नही कर सकते। वह व्यक्ति धन्य है और उस व्यक्ति का हृदय धन्य है जिसने ऐसे स्वरूप वाली चित्रावली के मार्ग पर अपना मन लगा दिया है :

वहु चित्रावलि आहै सोई। तीन लोक वेदै सब कोई ॥
सुरपुर सवै ध्यान ओहि धरहीं। अहिपुर सवै सेव तेहि करहीं ॥

---

१. चित्रावली, पृ० ४७-४८
२ वही, पृ० २३६

ऋतुमंडल जो देखा हेरी। घर-घर चलै बात तेहि केरी॥
पछी वोहि लगि फिरहिं उदासा। जल के सुत ओहि नाउ पिपासा॥
परवत जपहिं मौन होइ नाऊं। आसन मारि बैठि एक ठाउं॥
पहुमी दहु जो सरग लहु बाढी। सेवा करतहि एक पग ठाड़ी॥
जानि बूझि जो ताहि बिसारा। सो मनु जियतहिं मरा अड़ारा॥
अति सुरूप चित्रावली रवि ससि सर न करेइ।
धन सो पुरुष और धन हिया, ओहिक पथ जिउ देइ॥[1]

उसमान की कथा को आध्यात्मिक प्रमाणित करने के लिए इतने तथ्य पर्याप्त हैं। कवि ने एक स्थान पर परमात्मा अथवा प्रिय तक पहुँचने के लिए चार नगरो—जोकि शरीअत, तरीकत, मारीफत आदि चार स्थितियो के प्रतीक है—को पार करने का उल्लेख किया है। विपयादिक वासनाओ का प्रतीक पहला नगर भोगपुर है। यहाँ साधक की प्रथम भूमिका होती है। साधक को इस भूमिका अथवा अवस्था से निकलना कठिन होता है क्योकि सासारिक माया अपनी ओर खीचती है। दूसरा नगर गोरखपुर है जिसमे साधक गुरु से योगमार्ग की शिक्षा ग्रहण करके पथ पर अग्रसर होता है और तृतीय नेहनगर मे प्रवेश पाता है। यहाँ वह परमात्मा अथवा प्रेमिका से समन्वय स्थापित करता है। इसके बाद की अतिम स्थिति रूपनगर है जहाँ वह उस रूप की सत्ता मे एकाकार हो जाता है। साधना के मार्ग आदि के उल्लेख के अतिरिक्त कवि ने सत्य, पाप और पुण्य को भी व्याख्या की है जिसका धार्मिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। सत्य के विपय मे उसमान कहते है

सत्य समान पूत जग नाही। सत सो रहे नाउ जग माही॥
कोखि पूत एक देस बखाना। सत्य पूत चारो खड जाना॥
निश्चय सत्य अमर की मूरी। प्रगट देखिये हरिचन्द पूरी॥[2]

पाप-पुण्य

पाप न रहे छिपाए छिपा। छिपे पुण्य जो अहनिसि जपा॥
पापहि गोइ कहा कोउ सोवा। आपहि पाप जनम तेहि खोवा॥
तजहु पाप पयहि जिर जानी। करहु पुन्य ओ रहे कहानी॥
पुन्य करत जनि लावहु धोखा। जासौं होइ दुहु जग मोखा॥[3]

---

१ चित्रावली, पृ० ७८
२ वही, पृ० २८
३ वही, पृ० ५८

इन आधारो पर चित्रावली की कथा के आध्यात्मिक स्वरूप से हम परिचित हो सकते है।

सूफी कवि कासिमशाहकृत हसजवाहिर नामक प्रेमाख्यान भी इन्ही के समान आध्यात्मिक तथ्य प्रकट करता है। कवि ससार की नश्वरता के विपय मे अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं

कासिम जक्त जान सब धोखा, जो जग भूल गयो सो खोखा।
धोखा गगन फरै दिन राती, धोखा देखि वलवला माती।
धोखा नगर कोटि घर वारा, धोखा द्रव्य और रूप सिंगारा।
धोखा राजकाज सुख भोगू, धोखा सब लक्षण कुल लोगू।
धोखा ि पुरुष जहं पाई, धोखा अहै सवै दुनियाई ॥[1]

नूरमुहम्मद का इन्द्रावती नामक एक प्रेमाख्यानक है। इसकी कथा मे कवि ने एक-दो पात्रो के अतिरिक्त सभी पात्रो के नाम प्रतीकात्मक ही रखे हैं। अन्य सूफी काव्यो की भाँति ही इसमे राजकुमार जीवात्मा और इन्द्रावती व्रह्मज्योति है। कवि ने इस विपय मे स्वय ही कहा है कि इन्द्रावती उस दीपक-ज्योति के समान है जिस पर ससार ही पतगा वन गया है

जेहि दरसन के दीप पर है पतग संसार।
प्रेम तेहिक तुम लीन्हा मरै न नाम तोहार ॥[2]

इन्द्रावती के दिव्य सौन्दर्य को विना देखे ही लोग सराहते रहते हैं। उसके रूप मे दैवीय शक्ति है। वह अपनी दृष्टि से जिसको देख लेती है फिर उसे ससार अच्छा नही लगता। वह परमात्मा की ओर उन्मुख हो जाता है

जो काहुअ पर डारै डीटी। सो जन देइ जगत दिस पीठी ॥
अस रूपवन्ती सुन्दर आहे। विनु देखे सव ताहि सराहे ॥[3]

सूफी काव्यो मे चन्द्र-सूर्य का उल्लेख प्रतीको के लिए किया गया है, इसका उल्लेख पीछे किया गया है। हर भक्त अथवा साधक सारे ससार को उसी परमात्मा से प्रकाशित मानता है। इन्द्रावती का तेज कवि ने

---

१ हस-जवाहिर, पृ० २१

२. इन्द्रावती, पृ० ४५

३ वही

ईश्वरीय सिद्ध किया है। उस परम ज्योति से चन्द्रमा प्रकाशवान है। आकाश सहस्रो तारागणरूपी नेत्रो से उस परमज्योति के दर्शन करता है

> है तेहि चन्द्र बदन लखि, जगत नयन उजियार।
> गगन सहस लोचन सो, निरखे तेहिक सिंगार ॥[1]

इन्द्रावती मे आने वाली अवान्तर कथाओ के माध्यम से कवि ने अध्यात्मवाद को पर्याप्त स्थान दिया है। कुवर योगी के भेष मे इन्द्रावती की प्राप्ति के लिए उसकी फुलवारी मे साधना करता है, यह वृत्तान्त इन्द्रावती को उसकी चेता नामक मालिन से मिला। इन्द्रावती फुलवारी मे गई। कुमार देखकर मूर्च्छित हो गया। इन्द्रावती एक पत्र लिखकर वहाँ से चली आई। इस पत्र मे जिस कहानी को लिखा गया है उससे कथा की आध्यात्मिकता पर अच्छा प्रकाश पड सकता है। अत उस पत्र को दे देना उपयुक्त होगा—'जीव नाम के राजा का जन्म शरीरपुर मे हुआ। वह नगर की शोभा देखकर सब भूल गया। उसी नगर मे दुर्जन नाम का राजा भी था जो जीव राजा को मोह-माया द्वारा उसके मार्ग मे बाधक था। जीव राजा ने बुद्ध नामक अपने मन्त्री से यह वृत्तान्त कहा कि एक नगर मे दो राजा नही रह सकते। मन्त्री ने उसे सावधानीपूर्वक राज्य चलाने की मन्त्रणा दी। जीव राजा के मन नाम का एक पुत्र था। वह एक सुन्दरी पर आसक्त था परन्तु वह उसे प्राप्त नही हुई तो उसने दुर्जन से सब बात कह दी। दुर्जन ने जीव राजा को सलाह दी कि कायापुर के राजा दर्शन को रूप नामक सुन्दरी कन्या से मन का विवाह करा दिया जाये। राजा ने इसे उचित मानकर दृष्टि नामक अपना दूत कायापुर भेजा। दर्शन ने अपनी कन्या से पूछा तो उसने अस्वीकार कर दिया। जीव क्रुद्ध हो उठा। उसने पुन बुद्ध मन्त्री को भेजकर सारा वृत्तान्त मगाया। दर्शन की कन्या रूप ने अपनी दासी चितवन को मन का रूप आदि देखने को भेजा। रूप को मन पर दया आई। मन रूप के यहाँ आने-जाने लगा। दोनो का विवाह हो गया। मन को पुत्र-पुत्री भी हो गए। जीव राजा बालको मे फँस गया और राज-काज दुर्जन को सौप दिया। जीव के सेवक दुर्बल हो गए। बुद्ध ने जीव के हाल को साहस

[1] इन्द्रावती, पृ० ८५

तपी से कहा। साहस तपी ने कहा कि प्रीतपुर नामक स्थान पर कृपा नाम के राजा के पास जाने से तुम्हारा काम सिद्ध हो जायेगा। कृपा के पास पहुँचने पर कृपा ने वुद्ध के सहयोग से जीव के हृदय मे प्रेम सचार कर दिया। इस प्रकार महाराज सुखदाता के प्रसाद से जीव पुन शरीरपुर के अधिपति बन गए।' इस पत्र मे जीव, मन, दुर्जन, शरीर, काया, दृष्टि, चितवन आदि शब्द प्रतीकात्मक है। अत कथा को आध्यात्मिकता स्वत सिद्ध है।

इसी प्रकार अनुराग-वासुरी की कथा मे मन फुलवारी, मूरतिपुर नामक नगर मे जीव नाम का राजा तथा उसके अन्त करण नाम का पुत्र। अन्त करण के सकल्प और विकल्प नामक दो साथी। इनके अतिरिक्त वुद्धि, चित्त और अहंकार नामक तीन मित्र। ये सभी प्रतीक हैं जो साधनात्मक स्थिति के अग ही है। कथा मे और भी इसी प्रकार के विद्यापुर, मोहनमाला, ज्ञातस्वाद, सनेह, दर्शनराय, सर्वमगला आदि ऐसे पात्र हैं जो पूरी तरह प्रतीकान्तर्गत आते है। इस कथा मे अन्य कथाओ की अपेक्षा अध्यात्म तत्त्व अधिक स्पष्ट होकर सामने आते है। यही कारण है कि कथा को पढने मात्र से ही कथा का उद्देश्य समझ मे आ जाता है। इन कवियो की प्रेम के माध्यम से अध्यात्म का प्रचार करने की सूझ-वूझ सराहनीय रही है।

सूफी काव्यो और हिन्दू-काव्यो के शिल्प, मसनवी एव चरितकाव्यो के तुलनात्मक अध्ययन तथा प्रतीक व आध्यात्मिकता पर विचार करने के वाद स्वभावत एक प्रश्न उभरने लगता है। वह यह कि सूफी काव्यो का प्रासाद सूफियो ने पूर्णत भारतीय ईंट-पत्थर और गारे से खडा किया अथवा उसमे विदेशी उपादानो का ही उपयोग किया ? इस सम्बन्ध मे जहाँ तक शिल्प का सवाल है मैं अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर चुका हूँ कि मगलाचरण, स्तुति-निंदा, कवि-विवेचन, शाहेवक्त का उल्लेख और कथानक रूढियो का उल्लेख सूफी कवियो ने भारतीय साहित्य विशेपकर अपभ्रश साहित्य के अनुसार ही किया है। मसनवियो की एक विशेपता यह वताई जाती है कि विपयानुसार विवेचन करते समय ऊपर शीर्पक देकर कवि या लेखक उसका वर्णन करता है। हमारे यहाँ भी कवि या तो आरम्भ मे ही अथवा अध्याय, परिच्छेद या सर्ग के अन्त मे विपयगत सूचना दे देता है। उदाहरण के लिए मयणपराजयचरिउ के रचयिता

प्रथम सन्धि समाप्त होने पर लिखते है—'इय मयणपराजयचरिए हरिएवकइ विरइए मयणरायवण्णणोणाय पढमो सधी परिछेउ समत्तो' अर्थात् 'इस प्रकार हरिदेव कविकृत मदनपराजयचरित्र मे मदनराज-वर्णन नामक प्रथम सन्धि परिच्छेद समाप्त हुआ।' इसमे कवि ने सूचित कर दिया कि प्रथम परिच्छेद मे मदनराज का सविस्तार वर्णन किया गया है। इसी प्रकार अन्य अपभ्रश-प्राकृत और सस्कृत की रचनाओ मे देखा जा सकता है। जहाँ तक सूफी सिद्धान्त का सवाल है उसमे विदेशी प्रभाव का पाया जाना स्वाभाविक है। बिना खीचा-तानी के यह कहना ठीक और न्यायसगत होगा कि सूफी काव्यो का मुख्य उपादान भारतीय है।

सूफियो ने जिन प्रतीको को अपने काव्यो का उपादान बनाया वे भारतीय चिन्तनधारा के ही प्रतीक है। डा० वीरेन्द्र सिंह का कथन इस सदर्भ मे महत्त्वपूर्ण है। सूफियो ने 'जिन भारतीय चिन्तन पर आश्रित प्रतीको को ग्रहण किया है उन्हे उन्होने अधिकतर भारतीय रूप मे ही चित्रित किया है। दूसरी ओर अपने सूफी प्रतीको को भारतीय वातावरण के अनुकूल रूपातरित किया है। उनकी गाथाओ मे जो भी पात्र है वे सूफी प्रभाव से कही अधिक भारतीय प्रभाव के द्योतक हैं। उनके योग-परक प्रतीको मे भारतीय प्रणय-भावना तथा वस्तुएँ ही अधिक है। उनके तत्त्वनिर्देशो मे वेदान्त, योग तथा सूफी विचारधाराओ का समन्वय है और उनकी वर्णन शैली पर भारतीय प्रभाव है।'[1]

मूलत प्रतीको की भारतीय परम्परा ही थी। वैदिक, उपनिषद्, पुराण और जैन-बौद्ध एव सिद्ध साहित्य आदि भारतीय साहित्य मे प्रतीको की योजना को स्थान दिया गया है। वैदिक ऋषियो ने अग्नि, वायु, आकाश, मेघ, सूर्य आदि को प्रकृति के प्रकोप का रूप समझकर प्रतीक के रूप मे इन्हे स्तुत्य कहा। वेद मे ससार, आत्मा एव परमात्मा को एक रूपक द्वारा समझाया गया है, वह प्रतीकात्मक ही तो है। एक वृक्ष पर दो पक्षी रहते हैं। उनमे से एक स्वादिष्ट फल खाता है तथा दूसरा पक्षी कुछ खाता नही, बस देखता भर है

---

१ डा० वीरेन्द्र सिंह, हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास, पृ० २६२–६३

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्ष परिषस्वजाते ।
तयोरन्य. पिप्पल स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ।।[1]

—अ० २, सू० १६४

इसमे वृक्ष ससार का प्रतीक है, जो दो पक्षी है वे जीवात्मा और परमात्मा के प्रतीक है। जीवात्मारूपी पक्षी ससार के मोह-मायारूपी फलो को खाने मे लगा रहता है और परमात्मा निर्लिप्त रहता है। वेद का ही एक उदाहरण और देखने से पता चलता है कि उसमे दस युवतियो को दस उगलियो का प्रतीक माना गया है। उत्तम उद्देश्य वाली दो भिन्न रूपिणी स्त्रियाँ गमनशील है। दोनो एक-दूसरे के बालको का पोषण करती है। एक से सूर्य अन्त प्राप्त कराता और दूसरी से अग्नि सुन्दर दीप्ति से युक्त होता है। त्वष्टा के इस खेलने वाले शिशु को निरालस्य दसो युवतियाँ ( दस उगलियाँ ) प्रकट करती ह

द्वे विरूपे चरत स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्या भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्या ददृशे सुवर्चाः ।।
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परिषीनयन्ति ।।[2]

—अ० १, सू० ९५.

ऋग्वेद मे ही बताया गया है कि केशयुक्त तीन देवता नियमक्रम से दर्शन देते है। एक वर्ष मे बोता है. एक बलो से ससार को देखता है और एक का रूप दिखाई नही पडता। इसमे प्रतीकात्मक शैली मे ही यह बताया गया है कि जिन दो देवताओ का रूप दिखाई पडता है वे हैं अग्नि और सूर्य तथा जिसका रूप दिखाई नही पडता वह वायु है

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत्त एक एषाम् ।[3]
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ।।

—अ० २, सू० १६४

एक अन्य स्थान पर वर्ष भर की ऋतुओं, माह और दिनो की संख्या को प्रतीको के माध्यम से ही समझाया है

---

१ ऋग्वेद ( प्रथम खण्ड ), सपा०—प० श्रीराम शर्मा, पृ० ३१६

२ वही, पृ० १८६

३ वही, पृ० ३२०

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।[1]
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः॥
—अ० २, सू० १६४.

अर्थात् जिस रथ के बारह घेरे, एक चक्र और तीन नाभियाँ हैं उस रथ का ज्ञाता कौन है ? उसमे तीन सौ साठ मेखलाएँ ठुकी हैं जो कभी ढीली नही होती। इसमे एक चक्र अर्थात् एक वर्ष, तीन नाभियाँ अर्थात् तीन ऋतुएँ और तीन सौ साठ मेखलाएँ है जो वर्ष के तीन सौ साठ दिन ही है।

सामान्यत 'अर्णव' समुद्र के लिए प्रयुक्त होता है। परन्तु वेद मे कई स्थानो पर 'तेजोराशि' के लिए अर्णव शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे—

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः। अमश्चरति रोरुवत्।
सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी। अतन्नहेव सूर्यः॥[2]

अर्थात् जिस सरस्वती के अनन्त-निर्बाध वेगवान अर्णव है और जिसकी शब्दायमान शक्ति भ्रमण करती रहती है, सूर्य जैसे दिन को लाते है वैसे ही सरस्वती सत्य ज्योति से भरी हुई अपनी बहिनो ( शक्तियो ) के साथ सबके शत्रुओ को पराभूत कर दे। एक दूसरे स्थान पर भी अर्णव का प्रयोग देखिए

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः॥[3]

'सबको उत्पन्न करने वाले सूर्य की महाज्योति और तेजोराशि प्रकट हो रही है। समान रूप से यह चक्र को घुमाती है, जिसकी धुरी मे लगे हुए हरे रंग ( एतश ) के घोडे खीचते हैं।'

हिनरिख ज़िमर ने अपनी पुस्तक Myths and Symbols in Indian Arts and Civilization मे हिन्दू मिथक और प्रतीक कथाओ पर बहुत विस्तार से लिखा है। ज़िमर के अनुसार सभी भारतीय देवताओ

---

१ ऋग्वेद, पृ० ३२१

२ वही, ६ ५ ६१ ८-९

३ वही, ७ ६ ६३.२

का रूप प्रतीकात्मक है। शिव का चन्द्रमा वागोद्भव का, नाश कास्मिक शक्ति का, त्रिशूल इच्छा-क्रिया-ज्ञान का प्रतीक है। इसी प्रकार अनेक उपादानो और तत्त्वो की उन्होने बडी विशद व्याख्या की है।

प्राय ही भारतीय देवताओ के स्वरूप को लेकर विदेशी विद्वानो ने गलत धारणाए व्यक्त की है। यदि भारतीय देवता के चार हाथ है और उनमे शख, चक्र, गदा और पद्म लगा है तो उनको इसमे कला का भोडापन ही दिखाई देता है। उनमे से अधिकाश की वुद्धि प्रतीकात्मक प्रक्रिया तक पहुँच ही कैसे सकती थी ? अस्तु, वेद मे विष्णु का प्रतीक आया है, उसके सम्बन्ध मे श्री अरविन्द का कथन है यह वैदिक वाक्यालकार पुराणो की समान प्रतीकात्मक कल्पनाओ पर प्रकाश डालता है, विशेपकर उस प्रतीक पर जिसमे कि विष्णु प्रलय के बाद क्षीरसागर मे अनन्तनाग के वलय पर सोये हुए है। सभवतः कुछ लोग यह आक्षेप कर सकते हैं कि पुराण अन्धविश्वासी हिन्दू पुरोहितो या कवियो द्वारा लिखे गए थे, जिनका विश्वास था कि ग्रहण एक दैत्य के कारण होता है, जो सूर्य और चन्द्रमा को खाता है, वे सरलता से इस वात पर विश्वास कर लेते थे कि जब भी विसृष्टिकाल होता है तब सर्वोच्च देव अपने स्थूल शरीर से क्षीरसमुद्र मे शेषनाग पर सोने चला जाता है और इसलिए इन लोककथाओ या गपाष्टको से आध्यात्मिक अर्थ खोजना कोई बुद्धिमत्ता नही होगी। मैं उत्तर दूँगा कि वास्तव मे ऐसे अर्थो को खोजने की कोई आवश्यकता नही है क्योकि उन अन्धविश्वासी कवियो ने सामान्यरूप से सबके सामने अपनी बात बडे सरल ढङ्ग से रख दी है। उन्होने विष्णु के सर्प का अनन्त नाम दिया है और अनन्त का अर्थ होता है अनादि, इसीलिए उन्होने स्पष्ट कहा है कि यह कल्पना अलकार मात्र है और विष्णु अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड मे व्याप्त शक्ति विसृष्टि के काल मे उस अनन्त के वलय पर सोती है। समुद्र के सदर्भ मे वैदिक कल्पना स्पष्ट कर देती है कि यह समुद्र का अस्तित्व अनादि सत्ता का प्रतीक है और यह अनादि सत्ता का समुद्र पूर्ण माधुर्य का सागर है, दूसरे शब्दो मे महानन्द का निधि है। क्योकि मधुर क्षीर (स्वय एक वैदिक कल्पना) और मधु मे कोई तात्त्विक भेद नही है, मधु अथवा माधुर्य वामदेवो का स्तोत्र है।

इस प्रकार हम देखते है कि वेद और पुराण दोनो एक ही प्रकार की प्रतीकात्मक धाराए रखते है, उनके लिए समुद्र अनन्त सत्ता का प्रतीक

है। हम देखते हैं कि नदियाँ अथवा बहती हुई धाराओ की कल्पना चेतना के प्रवाह के प्रतीकार्थ की गई है। इसी प्रकार सरस्वती जो सात नदियो मे से एक नदी है तत्त्वज्ञान से बहती हुई चेतना की धारा है। इसी प्रकार हम अन्य छ नदियो को भी मनोवैज्ञानिक प्रतीक मान सकते है।[1]

इसी अध्याय मे हिन्दी प्रेमाख्यानको के प्रतीको पर विचार करते समय सख्यावाची प्रतीको का उल्लेख हम कर चुके है। वेद मे सप्त सख्या का बडा महत्त्व है। इस पर विचार करते हुए श्री अरविन्द लिखते हैं 'अन्य प्राचीन विचारधाराओ के समान ही वैदिक पद्धति मे सात सख्या का बडा महत्त्व है। वेद मे बार-बार आता है—सात प्रकार के आनन्द, सप्त रत्नानि, अग्नि की सात लपटे, जिह्वा या किरणे, सप्त अर्चिष, सप्त ज्वालाएँ, अध्ययन के सात प्रकार, सप्त धीतय, सात किरणें अथवा गौवे, अवध्य गौवे, देवमाता अदिति, सप्त गाव, सप्त नदियाँ, सप्त माताएँ अथवा धातृ गौवे, सप्त मातरः, सप्त धेनव, धेनु शब्द किरणो और नदियो के लिए समान रूप से व्यवहृत होता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये सप्त वर्ग वेद के सैद्धान्तिक मूलोद्देश्यो के वर्गीकरण व सत्ता के तत्त्वो पर आधारित है। इन तत्त्वो की जानकारी मे प्राचीन विचारको का मन खूब लगता था और भारतीय दर्शन मे हमे विभिन्न प्रकार के एक से बीस तक उत्तर मिलते है।'[2]

इसके आगे श्री अरविन्द वैदिक प्रतीको की ग्रन्थि खोलते हुए लिखते हैं 'बृहस्पति सात किरणो वाले मनीषी हैं, सप्तगु, सप्तरश्मि, वे सात-मुख वाले अगिरस है जो नौ किरणो वाले, दस किरणो वाले अनेक रूपो मे उत्पन्न होते हैं। सात मुख सात अगिरा है जो दिव्य शब्द ब्रह्म का उच्चारण करते रहते हैं, जो सत्य के स्रोत स्वर से निकलता है और जिसके वे स्वामी ( ब्रह्मस्पति ) है। प्रत्येक बृहस्पति की सात किरणो मे से वे एक-एक किरण है। इसलिए वे सात भविष्यद्रष्टा है, सप्तविप्रा और सप्तऋषय है जो उन सात ज्ञान की किरणो को अलग-अलग मूर्त रूप देते है। ये सप्त किरणे सूर्य के सात घोड़े है, सप्त हरित और उनका सगठन अयम्य का सप्तमुख विचार बन जाता है जिसके द्वारा खोये हुए सूर्य का पुनरुद्धार होना है। वही [illegible] पृ. सात नदियो के रूप

मे आता है, ये सात दैवीय और मानवीय सिद्धान्त मिलकर पूर्ण आध्यात्मिक सत्ता का रूप बनते है। वृत्त द्वारा जीती गई सात नदियो और बल द्वारा सात किरणो के अवरोध से और सभी प्रकार के मिथ्यापन से सत्य द्वारा मुक्ति मिल जाने से शुद्ध चेतना की प्राप्ति होती है और स्वर्लोक पर अधिकार हो जाता है, आत्मप्रवाह के हो जाने से मिथ्याज्ञान और अन्धकार का नाश होकर मानसिक और शारीरिक आनन्द मिलता है, हममे दैवीय तत्त्वो के बढने से हम मृत्यु एव अन्धकार पर विजय पा लेते है।'[1]

वेदो के समान ही उपनिषदो मे भी प्रतीक-योजनासम्बन्धी सामग्री उपलब्ध हो जाती है। जैसा कि ससार के लिए वेद मे वृक्ष का प्रतीक आया है उसी प्रकार कठोपनिषत् मे ब्रह्म ही ससारवृक्ष के रूप मे अवस्थित है

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातन ॥
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥
तस्मिल्लोकाः श्रि : सर्वे तदु नात्येति कश्चन
एतद्वै तत् ॥[2]

अर्थात् मूल ऊपर है, शाखाएँ नीचे की ओर है। यह चिरन्तन अश्वत्थ है। यही तेज है, यही ब्रह्म है, इसे ही अमृत कहते है। इसी से सब लोक लगे हुए है। इसका अतिक्रमण कोई नही कर सकता। यही वह है।

स वृ लाकृतिभि परोऽन्यो।[3]

वह वृक्ष, काल, आकृति आदि से परे और कुछ है।

इनके अतिरिक्त उपनिषदो मे जिस प्रणव अथवा ओऽम् की व्याख्या है, स्वयं एक प्रतीक ही है।

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम् ॥[4]

ओऽम् ब्रह्म है। ओऽम् ही यह सब कुछ है।

---

1 Ibid, p 207
२ कठोपनिषत्, २ २ १
३. श्वेताश्वतरोपनिषत्, ६ ६
४ तैत्तिरीयोपनिषत्, १ ८

ब्रह्मपुराण मे ओम् की व्याख्या इस प्रकार की गई है

सैव वागम्भवी देवी प्रकृतिर्याभिधीयते ।
विष्णुना प्रेरिता माता जगदीशा जगन्मयी ॥
ओंकारभूता या देवी मातृरूपा जगन्मयी ॥[1]

वही देवी वाक् जो प्रकृति कहलाती है, माता जगदीशा, जगद्रूपिणी है। जो ओम्कार बनी हुई है उसने विष्णु से प्रेरित होकर कहा।

बौद्ध साहित्य मे प्रदीप, नौका, जुआ, पञ्चेन्द्रिया, पञ्चस्कन्ध, ब्राह्मण, नगर, गृह, वृक्ष, अन्धकार और उसपार आदि बहुत से प्रतीकात्मक शब्द उपलब्ध है। 'उसपार' का अर्थ बौद्धो मे निर्वाण से लिया जाता है अथवा यो कह सकते है कि निर्वाण का 'उसपार' प्रतीक है। धम्मपद की एक गाथा है जिसमे उसपारबोधक एव निर्वाण के लिए प्रयुक्त प्रतीक को देखा जा सकता है

अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो ।
अथाय इतरा पजा तीरमेवानुधावति ॥[2]

इसी प्रकार सिद्ध साहित्य मे भी प्रतीकों की भरमार है। यहाँ कुछ शब्दो का उल्लेख मात्र कर देना पर्याप्त होगा। सिद्ध साहित्य मे वृक्ष को शरीर का प्रतीक माना गया है। स्मरण रहे कि ऋग्वेद मे वृक्ष को ससार के प्रतीक के लिए प्रयोग मे लाया गया है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। चादर को भी तन का प्रतीक माना है। गगा-यमुना को इडा-पिगला अथवा सुषुम्ना का, गाय को इद्रियो का, हस को चित्त, मन, पवन या प्राण का, हरिणी को माया का, चोर को दुष्ट मन का, दशमद्वार को ब्रह्मरन्ध्र का, काग को अज्ञानी चित्त का, कमल को चक्रो का, ससुराल को ब्रह्मलोक का प्रतीक मानकर प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार के अन्य प्रयोग भी मिल जाते है। वास्तव मे सिद्धो ने योगमार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रतीको को अपने साहित्य मे स्थान दिया।

अन्य साहित्यो की भाँति जैन साहित्य मे भी प्रतीको का महत्त्व था। इस विषय मे मयणपराजयचरिउ की प्रस्तावना मे डा० हीरालाल जैन ने 'प्रतीकात्मक नाटक परम्परा' शीर्षक से विशद अध्ययन प्रस्तुत किया है। जैन दर्शन मे प्रतीको का निक्षेप से तात्पर्य है। डाक्टर साहब ने लिखा है

---

१ ब्रह्मपुराण ( आनन्दाश्रम, पूना ), अध्याय १६१, श्लोक १४, १८.
२ धम्मपद, गाथा ८५

कि इन प्रतीको को जैन दर्शन मे निक्षेप कहा है। जब हम बोलकर कुछ कहना चाहते हैं तब वस्तुओ के जो ध्वन्यात्मक नाम लेते है वह नाम निक्षेप है। जब चित्र खीचकर या मूर्ति बनाकर उसे प्रकट करते है तब हम स्थापना निक्षेप की सहायता ले रहे है। जब हम उसके बाह्य मूर्त-स्वरूप को सन्मुख रखते है तब वह द्रव्य निक्षेप कहलाता है और जब उसके आभ्यन्तर स्वरूप को व्यक्त करने लगते है तब वह भाव निक्षेप कहलाता है। इस प्रकार निक्षेपो द्वारा हम प्रकृति के तथ्यो को उनकी अनुपस्थिति मे दूसरो को उनका अनुभव कराने का प्रयत्न करते है।[1] यहाँ किसी विशेप साहित्य के प्रतीको की व्याख्या करना इष्ट नही है। मेरा ध्येय सिर्फ इतना है कि सूफी साहित्य की प्रतीक परम्परा से पूर्व भारतीयो के पास प्रतीक परम्परा थी अथवा नही—इसका पता लग सके। प्रतीकात्मक नाटको की भारतीय परम्परा प्राचीन रही है। अश्वघोष के नाटको के पात्र प्रतीकात्मक है। वे पात्र कोई सामान्य व्यक्ति नही किन्तु वुद्धि, कीर्ति, धृति आदि भाव है। वे रगमच पर आते है और वार्तालाप करते है।[2] डा० हीरालाल जी ने कृष्ण मिश्र द्वारा लिखित प्रबोध-चन्द्रोदय ( ११वी शताब्दी ) नाटक का उल्लेख किया है, उसके निवृत्ति, विवेक, प्रवोधोदय, उपनिपत्, मति आदि पात्र भी प्रतीकात्मक है। श्रद्धा, शम, दम आदि अनेक पात्र हैं जो प्रतीको की कोटि मे ही आते है। प्रतीकात्मक शैली का ही एक जैन नाटक मोहराजपराजय है। इसकी रचना यश पाल ने सन् १२२९-३२ के बीच की थी।[3] इस नाटक के कथा-पात्र ज्ञानदर्पण, विवेकचन्द्र, कृपासुन्दरी, शान्ति आदि प्रतीकात्मक ही रखे गए हैं। मनोनगर राज्य मन का प्रतीक है। इस प्रकार प्रतीकात्मक कथाओ की जैन परम्परा ही थी। जैनो के उत्तराध्ययनसूत्र, णायाधम्म-कहाओ, वसुदेवहिण्डी, हरिभद्रसूरिकृत समरादित्यकथा और उपमिति-भवप्रपचाकथा आदि ऐसे कई ग्रन्थ हैं जिनमे प्रतीकात्मक शैली अपनाई गई है।

अपभ्रश भापा की मयणपराजयचरिउ ( १२वी और १५वी शती के मध्य ) रचना प्रतीकात्मक शैली की एक प्रमुख रचना है। इस रचना

१ डा० हीरालाल जैन द्वारा सपादित मयणपराजयचरिउ की प्रस्तावना, पृ० ३८
२ वही, पृ० ३९
३. वही

मे जीव द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का उपाय प्रतीकरूप मे बताया गया है। मोक्ष-मार्ग क्या और अग्रसर होने मे जीव को किन-किन बाधाओं का सामना करना होता है उसका भी विशद वर्णन इस रचना मे है। कवि ने मंगलाचरण आदि के बाद कथा प्रारम्भ की है। कथा के प्रारम्भिक अंश को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे रचना की प्रतीकात्मक शैली पर प्रकाश पड़ेगा। 'भवनगर नामक पट्टन के राजा मकरध्वज अपने महामन्त्री मोह और रति-प्रीति नामक दोनों पत्नियों के साथ सभाभवन मे बैठे थे। वहाँ शल्य, गर्व, कर्म, मिथ्यात्व, दोष, आस्रव, विषय व क्रोध, लोभ, रौद्र व आर्त, मद, मान, असंयम व व्यसन आदि बली योद्धा विराजमान थे। इस प्रकार अमरेन्द्र नरपतियों तथा तीनों लोकों के प्रभुओं से सेव्यमान मकरध्वज राज कर रहा था।'[1] इस प्रकार इसमे जितने भी नाम हैं सभी साधना के साधक और बाधक रूप के प्रतीक है। अतः कथा का प्रतीकात्मक होना स्वतः प्रमाणित है।

पर्युक्त आधार पर प्रतीकों की अपनी एक भारतीय परम्परा थी जो वैदिक काल से सूफी काव्यों के समय तथा उनके बाद यानी आज तक चली आ रही है। पुनः मैं इस बात को दुहराना चाहूँगा कि सूफियों की रचनाओं पर भारतीयता की छाप विदेशीपन की अपेक्षा कहीं अधिक है। मूलतः प्रतीकों के सन्दर्भ मे यह बात और भी दृढ़ता से कही जानी चाहिए। कुछ अतिशय प्रगतिवादियों का विरोध हो सकता है कि प्रायः ही लोग अपनी बात को वेदों से जोड़कर प्रमाणित करने का प्रयत्न करते है। उनसे मेरा विनम्र अनुरोध इतना ही है कि यदि बिना आयास के हमे वेदों मे भी अपनी बात की पुष्टि मिलती है और उससे हमारी शृंखला विघटित होने से बच जाती है तो निरर्थक क्या है? हाँ, हमे तथ्यों को नकारने भर का दुःसाहस नहीं करना चाहिए।

●

---

१ डा० हीरालाल जैन द्वारा संपादित मयणपराजयचरिउ की प्रस्तावना, पृ० २

अध्याय ८

# अपभ्रंश कथा : परिभाषा, व्याप्ति और वर्गीकरण

अपभ्रंश-कथाकाव्यो के शैली-शिल्प पर लिखने के पूर्व कथा के काव्य-रूप ( पोइटिक फार्म ) पर विचार कर लेना आवश्यक है। कथा शब्द इतना रूढ हो गया था कि इसका प्रयोग नाना अर्थो मे होने लगा था। सस्कृत की कथ धातु से इस शब्द की रचना हुई। इस अर्थ मे कथन मात्र को कथा कहा जा सकता है। आज भी बगला मे कुशल समाचार पूछने के लिए 'कथा' का तथा मैथिली मे 'कहनी' का प्रयोग होता है। साहित्यिक विधा के रूप मे इस शब्द का भिन्न अर्थ और परिभाषा है। कथा अथवा कथाकाव्यो की परिभाषाओ के सम्बन्ध मे दण्डी, भामह, रुद्रट आदि सस्कृत लक्षणकारो की मान्यताओ का उल्लेख प्रबन्ध के प्रास्ताविक मे कर दिया गया है। 'जो कुछ कहा जाता है' वह अनिवार्यत कथा नही हो सकती फिर भी कथाकाव्य एक ऐसा व्यापक और लचीला काव्य-रूप रहा है कि इसके अन्तर्गत चरित, रास, विलास, पुराण, धर्मकथा, वार्ता, ख्याल, लीला आदि अनेक काव्यरूप समाहित हो गए हैं। कथा-काव्य के विषय मे प्रचलित कतिपय मान्यताओ तथा धारणाओ का अव-लोकन करने से इसकी पुष्टि होगी।

'कथा का विशिष्ट अर्थ हो गया है किसी ऐसी कथित घटना का कहना, वर्णन करना जिसका निश्चित परिणाम हो। घटना किसी से भी सम्बन्धित हो सकती है—मनुष्य, अन्य जीवधारी, पशु-पक्षी आदि तथा जगत् के नाना पदार्थ जिनका अनुभव किया जा चुका है या जो कल्पित किये जा सकते हैं। जिस किसी से सम्बन्धित घटना हो, उसकी किसी विशेष परिस्थिति या परिस्थितियो का ( निश्चित आदि और अन्त से युक्त ) वर्णन ही 'कथा' कहलाता है। कथाएँ अनेक प्रकार की होती हैं, परन्तु उन्हे दो प्रधान वर्गों मे बाँटा जा सकता है १. इतिहास-पुराण की कथाएँ और २. कल्पित कथाएँ। ऐतिहासिक कथाओ के आधार पर निर्मित महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक आदि को साधारणतया कथा-साहित्य या कथाकाव्य नही कहते। यद्यपि उपन्यास और कथा-कहानियो का एक

वर्ग ऐतिहासिक भी माना जा सकता है, किन्तु ऐतिहासिक कथा, उप-न्यास या कहानी में प्रयुक्त होने पर अनिवार्यतः कल्पना मिश्रित हो जाती है। कल्पनाप्रसूत या प्रधानरूप से कल्पनाप्रसूत कथाएँ ही कथा-साहित्य का आधार बनती हैं। यों तो साहित्य और काव्य समानार्थी शब्द हैं और काव्य का पद्यबद्ध होना अनिवार्य नहीं है। परन्तु साधारणतया पद्यबद्ध कथाओं को कथाकाव्य और गद्य में रचित कथाओं को कथा-साहित्य उपन्यास, उपन्यासिका, कहानी आदि कहते हैं। आधुनिक साहित्य में कथा-साहित्य शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'फिक्शन' के अर्थ में होता है।'[1]

काव्यरूपों के विकास के प्रसंग में डा० शम्भूनाथ सिंह ने वीरभावना प्रधान, रोमांसिक तत्त्वों से युक्त प्रेमभावना प्रधान और लोकविश्वासों एवं निजन्धरी पात्रों से सम्बन्धित तथा धर्मभावना प्रधान इन तीन गाथा-चक्रों से काव्यरूपों का विकास माना है। उनकी मान्यता के अनुसार 'विकासोन्मुख सामन्तयुग में समाज के वर्गविभक्त हो जाने और अभि-जात वर्ग के उदय के बाद सामन्ती दरबारी वातावरण में विशिष्ट कवियों द्वारा विकसनशील महाकाव्यों के अनुकरण पर रोमांसिक कथा-आख्या-यिकाओं या प्रेमाख्यानों की रचना होने लगी। इस तरह प्रबन्धकाव्य (महाकाव्य-खण्डकाव्य) तथा कथाकाव्य में दो भिन्न रूप हो गए। प्रबन्धकाव्य और कथाकाव्य का यह भेद भारतवर्ष में ही नहीं, पाश्चात्य देशों में भी बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। यूनान में चौथी शताब्दी में इलियड आडेसी के रोमांसिक तत्त्वों और साहसपूर्ण कार्यों के अनुकरण में गद्यबद्ध रोमांसिक कथाओं की रचना हुई और पुनर्जागरण-युग में महाकाव्यों के पुनः उत्थान के पहले तक सारे योरप में इस काव्य-रूप का बहुत प्रचार रहा। मध्ययुग के अन्तिम भाग में ये कथाएँ गद्य-बद्ध और पद्यबद्ध दोनों प्रकार की होती थीं। उत्तर मध्ययुग में पद्यबद्ध कथाकाव्य बहुत ही लोकप्रिय काव्यरूप था। गद्यबद्ध रोमांस को आगे चलकर इटली और स्पेन में नावेला और इग्लैंड में 'नावेल' कहा जाने लगा और वही आधुनिक उपन्यास या कहानी का आदि रूप था।'

'मध्ययुग में अभिजातवर्गीय रोमन क्लासिकल परम्परा के विरुद्ध रोमांसिक स्वच्छंदता की प्रवृत्ति ने जो विद्रोह किया उसके परिणामस्वरूप

---

१. सपा०—डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १८३–८४.

महाकाव्य के शास्त्रीय और गुरुगम्भीर काव्यरूप की जगह सरल और रोमासिक कथाकाव्य का बहुत प्रचार हुआ। सर्वप्रथम फ्रास मे १२वी शती के उत्तरार्द्ध तथा १३वी शती के पूर्वार्द्ध मे किंग आर्थर और उसके सामतो के वीरतापूर्ण कार्यों तथा प्रेम की रोमासिक कथाओ को पद्यबद्ध कथाकाव्य ( ले ) का रूप दिया गया ( एनसाइक्लोपीडिया आफ लिटरेचर—शिपले, पृ० २९२–९३ )। इग्लैंड मे भी १३वी शताब्दी मे आर्थर-गाथा-चक्र से सम्बन्धित अनेकानेक पद्यबद्ध कथाकाव्य लिखे गये। इन सभी कथाकाव्यो मे काल्पनिकता, रोमासिकता, उद्दाम साहस और सामन्ती प्रेम भावना की अधिकता दिखाई पडती है। कथाकाव्य के विकास का यह क्रम बहुत कुछ इसी रूप मे भारतवर्ष मे दिखलाई पडता है। रामायण-महाभारत के अनुकरण पर, किन्तु अलकृत शैली मे, सस्कृत के महाकाव्यो की परम्परा विकसित हुई और उन्ही दोनो महाकाव्यो के रोमासिक तत्त्वो और साहसिक कार्यों का अनुकरण करके 'वृहत्कथा' के सम्बन्ध मे तो अधिकाश विद्वान् एकमत है कि उसका मूलरूप भी पद्यबद्ध रहा होगा। उसके सस्कृत रूपान्तर तो पद्यबद्ध है ही आदि।'[1]

कथाकाव्यो के विकास के मूल मे हमे कथा के दो रूपो का दर्शन होता है। उनमे पहला कथा का मौखिक रूप है और दूसरा लिखित रूप। वास्तव मे जब लेखन प्रणाली का श्रीगणेश नही हुआ था तब कथा का रूप मौखिक ही था। वैसे आज भी ग्रामीण क्षेत्रो मे मौखिक कथाओ का प्रचलन है। श्री सत्यव्रत अवस्थी मौखिक कथा-साहित्य को भारतीय कथा का आदिम रूप मानते है। अवस्थी जी ने मौखिक कथा-साहित्य को दो भागो मे विभक्त किया है—(अ) लोक-काव्य-कथा या लोक-गाथा, पद्य-रूप, (ब) लोक-कथा, गद्य-रूप।[2] लोकगाथा या लोककाव्य कथा से तात्पर्य ऐसी कथा से है जो काव्यरूप मे लोक मे प्रचलित हो।[3] लोक-कथा का तात्पर्य उस कथा से है जो लोक मे गद्यरूप मे प्रचलित रही हो। लिखित कथाओ के भी दो रूप गिनाए गए हैं १. पौराणिक कथाएँ, २. साहित्यिक कथाएँ।

---

१ सपा०—डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १८२-८३

२. सत्यव्रत अवस्थी, लोकसाहित्य की भूमिका, पृ० ५६.

३ वही, पृ० ४५२

भारतीय आचार्यों—लक्षणकारों के कथा-आख्यायिकाओं के लक्षणों के आधार पर डा० शम्भूनाथ सिंह ने एक रूपरेखा प्रस्तुत की है, जो इस प्रकार है

१ कथा-आख्यायिकाओं में रोमानी तत्त्वों और साहसिक कार्यों जैसे युद्ध, बलपूर्वक विवाह, कन्याहरण, भयंकर यात्रा, मार्ग की दुरूह कठिनाइयाँ, देव-असुर, गन्धर्व, यक्ष आदि के अलौकिक कार्य आदि का बहुत अधिक विस्तार होता है।

२ कथा-आख्यायिका का कथानक अधिक प्रवाहयुक्त, इतिवृत्तात्मक और आकर्षक होता है किन्तु उसका मूलाधार यथार्थ जीवन नही होता। ( बाण की 'हर्षचरित' सदृश कुछ रचनाएँ इसके लिए अपवादस्वरूप है ) इसमे कल्पनाजन्य अलौकिक, अतिमानवीय एव अतिप्राकृत तत्त्वो, पात्रो तथा असभव घटनाओं की अधिकता होती है। परिणामस्वरूप उसमें काल्पनिक कथा का चमत्कार और असम्भव या अविश्वमनीय घटनाओ की भरमार होती है।

३ कथा-आख्यायिका मे कथानक की कोई शृंखलित योजना नही होती। उसका कथानक स्फीतियुक्त, उलझा हुआ और जटिल होता है। प्राय उसका प्रारम्भ ही कथातर से होता है और फिर उसमे कथा के भीतर कथा और उस अन्तर्गत कथा मे भी गर्भ-कथाएँ भरी रहती है। कुछ कथाएँ ऐसी भी होती है जिनमे अनेक कथाएँ किसी एक सूत्र से परस्पर बाँध दी गई रहती हैं। यद्यपि उन सबका अस्तित्व अलग-अलग ही रहता है।

४. कथा-आख्यायिकाओ की कथाओ मे विवाह और उसके लिए युद्ध तथा प्रेम के सयोग एव वियोग पक्ष के वर्णन पर अधिक स्थान दिया जाता है। परिणामस्वरूप उसके नायक प्रायः धीरललित होते हैं और उनका जीवन अयथार्थ पर आधारित होता है। वे प्राय. निजन्धरी होते हैं या कथाकार द्वारा निजन्धरी ऊँचाई तक पहुँचा दिये जाते है। भारतीय कथाओ मे विक्रमादित्य, सातवाहन, उदयन, दुष्यत, नल आदि ऐसे ही चरित्र है जो ऐतिहासिक होते हुए भी निजन्धरी व्यक्तित्व द्वारा गढे गए है। युद्ध, साहस और वीरता के कार्यो का वर्णन कथा-आख्यायिकाओ मे भी होता है पर वैसा नही जैसा अलकृत काव्यो मे होता है।

कथाकार युद्ध और वीरता को प्रेम और शृंगार का साधनमात्र समझता है, जिससे उसका मन इन बातो मे ही रमता है।[1]

कथाकाव्यो के काव्यरूप पर विचार करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि चरितकाव्यो को निस्सन्देह रूप से इन कथाकाव्यो की कोटि मे परिगणित करना चाहिए। जहाँ एक ओर हम इन्हे कथाकाव्यो की श्रेणी मे लाकर बैठाने का प्रयत्न करते है वही दूसरी ओर चरितकाव्य स्वय अपने को कथाकाव्य घोषित करते है। कहने का अभिप्राय यह कि अपभ्रश के चरित-लेखको ने स्वय ही णायकुमारचरिउ, करकडुचरिउ, जसहरचरिउ, भविसयत्तकहा, पज्जुण्णकहा, रिट्ठणेमिचरिउ, पुप्फदत-कहा, महापुराण आदि रचनाओ मे उनको कही कथा, कही चरित और कही पुराण कहा है। वास्तव मे सर्वत्र उनका कहने का ध्येय 'कहा' से ही रहा है। चरितकाव्यो के स्वरूप-विकास एव लक्षण पर प्रथम अध्याय मे विचार कर चुके है। *आगे हम कथाकाव्यो के अन्तर्गत आने वाले रास* अथवा रासक पर विचार करेंगे।

रास, रासो, रासक आदि के विषय मे हिन्दी साहित्य के इतिहासो मे एव अन्यत्र फुटकर निबन्धो के रूप म सविस्तार विवरण अथवा उसके इतिहास की चर्चा हुई है। आचार्य हेमचन्द्र ने रासक को गेय उपरूपक माना है—'**गेयं डोम्बिका भाण प्रस्थान शिगक भाणिका प्रेरण रामाक्रीड़ हल्लीसक रासक गोष्ठी श्रीगदित राग काव्यादि**'[2] अर्थात् प्रेक्ष्य काव्य मे डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, शिंगक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक, रासक आदि गेय उपरूपको के अन्तर्गत हैं। वाग्भट्ट ने भी इसी प्रकार को स्वीकार किया है—'**डोम्बिका-भाण-प्रस्थान-भाणिका-प्रेरण-शिगक-रामाक्रीड-हल्लीसकरासकगोष्ठीप्रभृतीनि गेयानि**' अर्थात् इनके अभिनयात्मक स्वभाव के कारण ये डोम्बिकादि सभी गेय रूपक है

**पदार्थाभिनयस्वभावानि गोम्बिकादीनि गेयनिरूपकाणि चिरन्तनैरुक्तानि।**

उक्त आचार्यो के बहुत पूर्व यानी बाणभट्ट (७वी शताब्दी) के हर्षचरित मे रासक पदो के गाये जाने का उल्लेख मिलता है—'**पदे पदे झणझणितभूषणरवैरपि सहृदयैरिवानुवर्त्तमानताललया., कोकिला इव**

१ डा० शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्यो का स्वरूप और विकास, पृ० ४०१-४

२ हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, ८ ४.

मदकलकाकलीकोमलालापिन्यो विटाना कर्णामृतान्यश्लीलरासकप-
गायन्त्य ।'[1]

अभिनवगुप्त ने अभिनव-भारती में रासक की जो परिभाषा दी। उससे स्पष्ट होता है कि रासक एक ऐसा गेय रूपक है जिसमें अनेक नर्तकियाँ एवं अनेक प्रकार के ताल-लयादि होते हैं और उसमें चौसठ नर्तक युगल भाग लेते हैं

> अनेकनर्तकीयोज्य चित्रताललयान्वितम् ।
> आचतुषष्टियुगलाद्रासक मसृणोद्धतम् ।।[2]

रास अथवा रासकों की रचनाएँ अपभ्रंश के प्रारम्भिक काल में ही मिलनी शुरू हो जाती है। गेय और नृत्य पदों के रूप में बाणभट्ट के समय तक इसका प्रचलन पर्याप्त मात्रा में हो चुका था। अधिकाश रासो रचनाएँ राजस्थानी और गुजराती भाषा के जैन साहित्य में मिलती हैं। जैन रासा ग्रन्थों में अनेक प्रकार के रासकों का उल्लेख मिलता है। उन रचनाओं से पता चलता है कि जन लोग ताली बजा-बजाकर मन्दिरों में रात्रि के समय गाते थे। दिन में पुरुष-स्त्री लगुडाराम करते थे।

जैनो के यहाँ ये दोनों रास १३वीं-१४वीं शताब्दी तक भी खेले जाते थे। इसका प्रमाण सप्तक्षेत्रीरासु (स० १३२७) नामक रचना के एक उद्धरण से ही मिल जायेगा

> वइसइ सहूइ श्रमणसघ सावय गुणवता ।
> जोयइ इच्छवु जिनह भुवणि मनि हरख धरता ।।
> तीछे तालारस पडइ वहु भाट पढता ।
> अनइ लकुटारस जोईई खेला नाचता ।। ४८ ।।
>
> सविहू सरीखा सिणगार सवि तेवड तेवडा ।
> नाचइ धामीय रंभरे तउ भावहि रूडा ।।
> सुललित वाणी मधुरि सादि जिणगुण वायता ।
> ताल मानु छद गीत मेलु वाजित्र वाजता ।। ४९ ।।[3]

---

१ हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्वास

२ भरतनाट्यशास्त्र, भाग १, पृ० १८३

३. प्राचीन गुर्जर काव्यसग्रह, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, १९१६, पृ० ५२

परन्तु रात्रि एव दिन मे खेले जाने वाले तालारासु और लगुडारास का जैनो मे निषेध किया गया क्योकि इस तरह के खेलो से जीवहिंसा की सभावना रहती है

ताला रासु रयणि नहि देइ, लउड़ा रासु मूलह वारेइ।[1]

शारदातनय ( १२वी शती ) ने रासक के तीन भेद लतारासक, दण्ड-रासक तथा मण्डलरासक बताये हैं

लतारासक नाम त्रे स्यात्त्रेधा रासक भवेत्।
दण्डरासकमेकन्तु तथा मण्डलरासकम्॥[2]

हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने रासक का लक्षण अपनी गुरु-परम्परा से भिन्न दिया है

षोडश द्वादशाष्टौ वा यस्मिन्नृत्यन्ति नायिका।
पिण्डीबन्धादिविन्यासै. रासकं तदुदाहृतम्॥
पिण्डनात् तु भवेत् पिण्डी गुम्फनाच्छृङ्खला भवेत्।
भेदनाद् भेद्यको जातो लताजालापनोदत.॥
कामिनीभिर्भुवो भर्तुश्चेष्टितं यत्तु नृत्यते।
रागाद् वसन्तमासाद्य स ज्ञेयो नाट्यरासक.॥[3]

हेमचन्द्राचार्य के गीत-नृत्यादि के तत्त्व को रामचन्द्र ने स्वीकार किया है।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने रासक को नाटक का रूप माना है। उसका लक्षण इस प्रकार किया है

रासक पंचपात्र स्यान्मुखनिर्वहणान्वितम्।
भाषा विभाषा भूयिष्ठं भारती केशिकी युतम्॥
असूत्रधारमेकाकं सवोध्यंग कलान्वितम्।
श्लिष्टनान्दीयुतं ख्यातनायिकं मूर्खनायकम्॥
उदात्तभावविन्याससश्रित चोत्तरोत्तरम्।
इह प्रतिमुखं सधिमपि केचित्प्रचक्षते॥[4]

---

१ प्राचीन गुर्जर काव्यसग्रह, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज़, १९१६, पृ० ८०

२. डा० शिवप्रसाद सिंह, सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० ३२९ से उद्धृत

३ नाट्यदर्पण, ओरियण्टल इस्टिट्यूट, बडौदा, १९२१, भाग १, पृ० २१४

४. साहित्यदर्पण, पृ० १०४-५

रासक की शैली पृथक् गेय शैली ही थी। सम्भवतः इसीलिए कुछ विद्वानों ने रासक की व्युत्पत्ति रास से मानी है। इस सन्दर्भ में पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कथन है—'रास शब्द का विशेष आग्रह हो तो स्वार्थ में 'क' मानकर इस रासक को नाट्यरासक या रासक नामक उपरूपकों से पृथक् श्रव्यकाव्य का वाचक मान लिया जा सकता है। रासक शब्द को इसलिए भी ग्रहण करना चाहिए कि रासो शब्द के विभिन्न रूपों की निष्पत्ति रासक से ही सुभीते के साथ होती है।'[1] यों रास का उत्सवरूप में प्रयोग भागवतपुराण में मिलता है

> तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रते ।
> स्त्रीरत्नैरन्वित प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभि ।
> रासोत्सव सप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डित ।
> योगेश्वरेण कृष्णेन तासा मध्यो द्वयार्द्वयो. ॥[2]

उपर्युक्त विवेचन से हम इस मन्तव्य पर पहुँचे है कि प्रारम्भिक अवस्था मे रासक गेय रूपक था और कालान्तर मे इसने ही नाट्यरासक का रूप ग्रहण कर लिया। यही से इसमे विकासोन्मुख धारा का प्रवाह हुआ। आगे चलकर इसमे काफी परिवर्तन आ गया। 'वस्तुत रासक काव्य परम्परा पर मध्यकालीन चरितकाव्यो खासतौर से सस्कृत के ऐतिहासिक चरितकाव्यो का इतना व्यापक प्रभाव पडा कि इसका रूप ही बदल गया।'[3] हमारा सकेत इसी बदले हुए रूप की ओर है कि इस प्रकार के 'रासो' नामक काव्य कथाकाव्यो के अन्तर्गत ही आते है। श्री अगरचन्द नाहटा का भी कथन है कि 'पीछे रास, रासु अथवा राउस शब्द प्रधानतया कथाकाव्यो के लिए रूढ-सा हो गया और रसप्रधान रचना रास मानी जाने लगी।'[4]

मारवाडी भापा मे रासो का भिन्न अर्थ है। मुशी देवीप्रसाद जी के अनुसार 'रासे के मायने कथा के हैं। यह रूढी शब्द है। एकवचन 'रासो' और बहुवचन 'रासा' है। मेवाड, ढूढाड और मारवाड मे झगडे

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, प्र० भाग, पृ० ५५

२. भागवत, १०. ३३ २

३. डा० शिवप्रसाद सिंह, सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० ३३०.

४ प्राचीन काव्यो की रूप-परम्परा, पृ० ५

को भी रासा कहते है। जैसे यदि कई आदमी झगड रहे हो या वाद-विवाद कर रहे हो तो तीसरा आदमी आकर पूछेगा—'काई रासो है'। लंबी चौडी वार्ता को भी रासो और रामायण कहते हैं। बकवाद को भी रामायण और रासा ढूढाड मे वोलते है। 'काई रामायण है' क्या बकवाद है। यह एक मुहावरा है। ऐसे ही 'रासा' भी इस विपय मे बोला जाता है।'[1] इसी प्रसग मे पडित मोहनलाल विष्णुलाल जी पड्या का मत भी उद्धरणीय है—'हिन्दी 'रासो' शब्द संस्कृत 'रास' अथवा 'रासक' से है और संस्कृत भापा मे 'रास' के शब्द, ध्वनि, क्रीडा, शृंखला, विलास, गर्जन, नृत्य और कोलाहल आदि के अर्थ और 'रासक' के काव्य अथवा दृश्यकाव्यादि के अर्थ परम प्रसिद्ध है। यह 'रासो' शब्द आजकल की व्रजभापा मे भी अप्रचलित नही है, किन्तु अन्वेपण करने से वह काव्य के अर्थ के अतिरिक्त अन्य अनेक अर्थों मे भी प्रयोग होता हुआ दृष्टि आवेगा, जैसे—हमने चौदे के गदर को एक 'रासो' जोड्यौ है—कल बहादुर सिंघ जी की वैठक मे वदर ने गदर कौ रासो गायो हौ—फिर मैने भरतपुर के राजा सूरजमल को रासौ गायो सो सव देखते ही रह गए—अजी ये कहा रासौ हैं—मै तो कल्ल एक रासे मे फस गयौ यासू तुमारे वहा नाय आय सक्यौ—अजी राम गोपाल बडौ दिवारिया है, वाके रासे मे फस कै रूपैया मत विगाड दोजो। हम नै आज दिन कौ रासो नियराय दीनौ है—देखौ साव! रासे के सग रासौ है, वुरी मत मानौ—तथा लुगाइये भी गाया करती है

गीत— मत काचो तोन्ह रखियो घानी नान्ह करूगी अत रासा।<br>
गुर राख, पकावा, मत काचा। इत्यादि ॥ १ ॥<br>
जिव लोगन की 'रास' उठेगी तौन्ह के खाक उठावेगा।<br>
हलजोत नहो पछतावेगा। इत्यादि ॥ २ ॥[2]

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि राम, रासो, रासक आदि का प्रारम्भिक रूप जो भी रहा हो परन्तु वाद मे उसका प्रचलन कथाकाव्यो के रूप मे दृढ हो गया। रासा संज्ञक अधिकाश रचनाओ को कथाकाव्यो की श्रेणी मे रखा जा सकता है। पृथ्वीराजरासो को आचार्य हजारीप्रसाद

१ सरस्वती, भाग ३, पृ० ९८<br>
२ हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० ५३ से उद्धृत

जी ने कथाकाव्य मानते हुए लिखा है कि 'पृथ्वीराजरासो आरम्भ में ऐसा कथाकाव्य था जो प्रधानरूप से उद्धत प्रयोग प्रधान मसृण प्रयोग युक्त गेयरूपक था।'[1] अपभ्रंश में सदेशरासक और पुरानी हिन्दी का कोमल-देवरासो शुद्ध मसृण रासक हैं। हिन्दी में आगे चलकर उद्धत रासो की परम्परा ही फूली-फली। रासा सज्ञक रचनाओं में ही कहीं उन्हें चरित, कहीं चौपाई, कहीं कथा तथा कहीं रास नाम दिए गए हैं।[2] १५वीं शताब्दी के बाद के रास काव्यों में चरित्र-वर्णन की परिपाटी चल पड़ी थी। समयसुन्दर ने अपने चार 'रास' ग्रन्थों में से एक को कथा, एक को प्रबन्ध और चारों को चौपाईबन्ध करने का उल्लेख किया है

साव पजुनक कथा सरस प्रत्येक बुद्ध प्रबन्ध।
नलदमयंती मृगावती चउपई चार सम्बन्ध॥[3]
—सीतारामचउपई

इस प्रकार अनेक जैन रासग्रन्थों में प्रेम-कथानकों के माध्यम से जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। यहाँ मानकविकृत हंसराज-वच्छराज रास की सक्षिप्त कथा द्वारा यह भलीभाति स्पष्ट हो जायेगा कि इस प्रकार की रचनाएँ कथाकाव्य के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। कथा का सक्षेप इस प्रकार है—नरवाहन नामक जम्बूद्वीप का एक राजा था। उसके सालिवाहन नाम का एक पुत्र और शक्तिकुमार नाम का छोटा भाई था। एक बार राजा को स्वप्न में परमसुन्दरी के दर्शन हुए। राजा सुखद स्वप्न के कारण अधिक देर तक उसी में निमग्न सोता रहा। मन्त्री ने राजा की निद्रा भग कर दी। अत वह राजा का कोपभाजन हुआ। राजा ने मन्त्री को आदेश दिया कि वह स्वप्न में देखी गई कन्या को एक माह के अन्दर उसके समक्ष प्रस्तुत करे। मन्त्री का सारा सुख-चैन जाता रहा। विभिन्न सूत्रों से उसे पता चला कि कणयापुर की हसाउली नामक राज-कुमारी परम सुन्दरी है परन्तु वहाँ तक पहुँचने के लिए ही तीन माह की अवधि चाहिए थी। मत्री ने राजकार्य राजा के छोटे भाई शक्तिकुमार को सौंपकर स्वय जोगी का भेष रमाया। वह किसी प्रकार कणयापुर

१ प० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ६०
२ डा० रामबाबू शर्मा, हिन्दी काव्यरूपों का अध्ययन पृ० १७०.
३ वही.

पहुँचा। वहाँ उसकी एक मालिन से भेट हुई। जोगी को उसने बत्तीस लक्षणो से युक्त पाया अत अपने घर मे स्थान दिया। मालिन ने उसे वताया कि राजकुमारी देवी के मदिर मे नर-बलि चढाती है। अत वह पहले से ही देवी के मदिर मे छिप गया। राजकुमारी जब देवी के मदिर मे गई तो उसने नरवलि को हेय वताया। राजकुमारी ने समझा कि देवी का आदेग है अत उसने वलि न चढाने की शपथ ली। मन्त्री ने नगर मे अपने को एक वडा चित्रकार घोपित कराया। राजकुमारी को जव इसकी सूचना मिली तो उसने चित्रकार को वुलवा भेजा। यह गया और गम, कृष्ण के चित्रो को दिखाने के बाद नरवाहन का चित्र दिखाते हुए उसके गुणो का वखान किया। कुमारी उस चित्र पर मोहित हो गई। मन्त्री ने राजकुमारी से कहा कि वह एक माह के अन्दर उसकी भेट राजा से करा देगा। इसी वचन के आधार पर दोनो का विवाह हो गया। राजा नरवाहन और हसाउली सुखपूर्वक दिवस व्यतीत करने लगे। समयानुसार हसाउली के दो पुत्र उत्पन्न हुए। दोनो पुत्र अत्यधिक वलिष्ठ और सुन्दर थे। वे जगल मे शिकार आदि भी खेलने जाते। नरवाहन की दूसरी रानी लीलावती हसराज के रूप पर आसक्त हो गई। रानी ने हसराज से अपना प्रस्ताव वताया। हसराज सुशील था। उसने कहा कि आप तो मेरी माता है। इस पर लीलावती ने राजा से शिकायत कर दी कि हसराज ने उसे अपमानित किया है। राजा ने उसकी शिकायत पर दोनो पुत्रो को निष्कासित कर दिया। मार्ग मे चलते-चलते हसराज को प्यास लग गई। वच्छराज जल लेने चला गया। लौटकर आया तो उसने हसराज को सर्पदश से मृत पाया। वह वहुत दु खित हुआ और समीप के नगर मे उसका अन्तिम सस्कार करने के लिए उसे ले गया। वच्छराज को नगर के कोटपाल ने पुत्र न होने के कारण पुत्ररूप मे स्वीकार किया। उसी नगर मे अरिमर्दन नामक राजा था। वच्छराज को उसने नगर मे भ्रमण करते समय देख लिया। राजा ने उसे वत्तीस लक्षणो से पूर्ण पाकर विचार किया कि वह उसकी पुत्री त्रिलोचना के लिए उपयुक्त वर होगा। वच्छ-राज ने जव विवाह की वात सुनी तो वह नगर छोडकर चला गया। इस व्यवहार मे कुमारी त्रिलोचना को महान् विरह सहना पडा। अन्त मे किसी प्रकार हसराज को उसने जीवित पा लिया। इस वीच उन्हे अनेक कष्टो मे गुजरना पडा। वाद मे दोनो ने विवाह कर लिये और अपने

नगर को वापिस हुए। उधर भी सब शात हो चुका था। ...
ने अपने किये का प्रायश्चित्त किया। सभी सुखपूर्वक रहने

यही उक्त रास की कथा है। मै नहीं समझता कि इस
काव्य के गुण नही पाये जाते। स्वप्न-दर्शन, चित्रदर्शन, जो
मा का प्रणय-निवेदन, सर्पदंश आदि कथानक-रूढियो तक ...
जाना इस बात का प्रमाण है। रास सज्ञक सभी रचनाओ ...
मे स्वीकार करने का मेरा आग्रह कदापि नही है। डा० द...
रास ग्रन्थो की सख्या के विषय मे लिखा है कि 'उपलब्ध
सख्या न्यूनाधिक एक सहस्र तक पहुँच जाती है।'[1] ऊपर ...
राज रास सज्ञक रचना की कथा के आधार पर एव अद्दह...
भ्रंश भाषा मे रचित सदेशरासक आदि रचनाओ के आ...
रासको को कथाकाव्यो के अन्तर्गत समाविष्ट करना ...
समझते।

इसी प्रकार चरित एव रास का पर्याय विलास भी होत...
इसे पर्याय न माने तो समानार्थक शब्द मान सकते है। पं...
शकर हीराचन्द जी ओझा का कथन है कि 'मै रासा शब्द ...
सस्कृत के रास शब्द से होना मानता हूँ। रास शब्द का ...
भी होता है ( शब्दकल्पद्रुम, चतुर्थ खण्ड, पृ० १५९ ) और वि...
चरित, इतिहास आदि के अर्थ मे प्रचलित है। जयविलास, भ...
आदि ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रसिद्ध है और प्राचीन गुजराती भाषा
राजाओ के इतिवृत्त रास नाम से प्रसिद्ध है ( कुमारपालरास,
रास आदि )।[2] अत विलास भी चरितादि काव्यो की श्रेणी
जाता है।

पुराण-साहित्य कथा-साहित्य के अन्तर्गत आता है अथव...
यह प्रश्न विचारणीय है। वास्तव मे परपरया स्मृतियो से प्राप्त ...
का वर्णन करना ही पुराण का कार्य है और वही उसका लक्षण है

पुरा परंपरा वक्ति पुराण तेन वै स्मृतम्।[3]

---

१ डा० दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ० ९१
२ काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हस्तलेख सख्या २९ की पुष्पिका से
३ वायुपुराण, १ २ ५३

पुराणो के प्रयोजन के सम्बन्ध मे कहा गया है—'लोक सग्राहक कृष्ण द्वैपायन व्यास ने भारतीय युद्ध के बाद की देश की एव लोगो की, विशेषकर स्त्रियो, शूद्रो तथा नाम मात्र से द्विजो की, स्थिति का आलोचन किया, और चारो वेदो का अर्थ, जो अत्यन्त गूढ है, सभी लोग सरलता से समझें जिससे उनका कल्याण हो, इस हेतु इतिहास और पुराण रूपी सीधा मार्ग निर्माण किया।[1] इन पुराणो मे विधि और निषेध रूप मे धर्मो का विवेचन किया गया।'[2]

आचार्य जिनसेनकृत जैन आदिपुराण मे पुरातन आख्यानो को पुराण कहा गया है—'पुरातन पुराण स्यात्।'[3] पुराणो का अर्थ ही है पुरानी कहानियाँ अथवा पुराने इतिहास के ग्रन्थ।[4] अनेक पुराणो मे पुराण की जो परिभाषाएँ उपलब्ध हैं उनमे पुरातन कहानियो से युक्त उन्हे अवश्य बतलाया गया है। विष्णुपुराण मे पुराण उसे कहा गया है जो इन पाँच बातो से युक्त हो

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वशानुचरितं च यत्॥[5]

आगे पुराण के वर्ण्य विषय के सम्बन्ध मे भी वही उल्लेख किया गया है कि पुराण मे आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि के अन्तर्गत वर्णन होने चाहिए

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभि· कल्पशुद्धिभि·।
पुराणसहिता चक्रे पुराणार्थविशारद॥[6]

महाभारत मे पुराणो के वर्ण्य विषय के सन्दर्भ मे कहा गया है कि उनमे दिव्य कथाओं और श्रेष्ठ चिन्तको का चरित्र वर्णित होना चाहिए

पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते ये पुरास्माभि· श्रुतपूर्वा पितुस्तव॥[7]

---

१ हिन्दी विश्वकोश, खड ७, पृ० २८०
२ वही, पृ० २५०
३ आदिपुराण, १ २१
४ रामप्रताप त्रिपाठी, पुराणो की अमर कहानियाँ, भाग १ का निवेदन.
५ विष्णुपुराण ( गीताप्रेस, गोरखपुर ), ३ ६ २५
६ वही, ३ ६ १५
७ महाभारत, १ ५ २

हिन्दू धर्मानुसार पुराणो की सख्या अठारह मानी गई है

१ ब्रह्मपुराण, २. पद्मपुराण, ३ विष्णुपुराण, ४. शिवपुराण, ५. श्रीमद्भागवतपुराण, ६. नारदपुराण, ७ मार्कण्डेयपुराण, ८ अग्निपुराण, ९ भविष्यपुराण, १० ब्रह्मवैवर्तपुराण, ११ लिंगपुराण, १२ वराहपुराण, १३ स्कदपुराण, १४ वामनपुराण, १५ कूर्मपुराण, १६ मत्स्यपुराण, १७ गरुडपुराण, १८. ब्रह्माण्डपुराण।[1] गणेशपुराण और मुद्गलपुराण ये दो उपपुराण है।[2]

जैन पुराण-साहित्य मे पुराणो की सख्या निर्धारित नही है। फिर भी यह मान्य है कि त्रेसठ शलाका पुरुषो अथवा महापुरुपो के जीवन-चरित को उद्घाटित करने वाली कथा ही पुराण-कथा होती है। ये त्रेसठ शलाका पुरुष प्रत्येक काल मे अलग-अलग होते हैं। जैनो के वर्तमान शलाका पुरुषो मे २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ बलदेव और ९ प्रतिवासुदेवो को गणना की जाती है।

**तीर्थंकर** · १ ऋषभनाथ, २ अजितनाथ, ३ सभवनाथ, ४ अभिनदननाथ, ५ सुमतिनाथ, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्वनाथ, ८ चद्रप्रभ, ९ पुष्पदन्त, १० शीतलनाथ, ११ श्रेयासनाथ, १२ वासुपूज्य, १३ विमलनाथ, १४ अनतनाथ, १५ धर्मनाथ, १६ शातिनाथ, १७ कुथुनाथ, १८ अरहनाथ, १९. मल्लिनाथ, २० मुनिसुव्रतनाथ, २१ नमिनाथ, २२ नेमिनाथ, २३ पार्श्वनाथ, २४ महावीर।

**चक्रवर्ती** १ भरत, २ सगर, ३. मघवा, ४ सनत्कुमार, ५ शाति, ६ कुथु, ७ अर, ८ सुभौम, ९. पद्म, १०. हरिषेण, ११ जय १२ ब्रह्मदत्त।[3]

**वासुदेव** १ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयभू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ पुडरीक, ७ दत्त, ८ लक्ष्मण, ९ कृष्ण।[4]

**बलदेव** १. अचल, २ विजय, ३ भद्र, ४ सुप्रभ, ५ सुदर्शन, ६ आनद, ७ नदन, ८. पद्म अथवा राम, ९ बलराम।[5]

**प्रतिवासुदेव** : १ अश्वग्रीव, २ तारक, ३ मेरक, ४ मधु, ५ निशुभ, ६ बलि, ७ प्रहलाद, ८ रावण, ९ मगधेश्वर जरासध।[6]

---

१ हिन्दी विश्वकोश, खड ७, पृ० २४८

२ वही, पृ० २६०-६१

३–६. अभिधानचिन्तामणि, श्लो० ६९२–६९९

जिस प्रकार हिन्दुओ मे पुराण और उपपुराण हैं उसी प्रकार जैनो मे भी पुराण एव महापुराण माने गये हैं। जिस पुराण मे एक शलाका पुरुष का चरित वर्णित होता है वह पुराण है और जिसमे त्रेसठ शलाका पुरुषो का चरित वर्णित होता है वह महापुराण है। पुराण का लक्षण देते हुए आचार्य जिनसेन (ई० सन् ८वी शती) लिखते हैं कि जो पुराण का अर्थ है वही धर्म है, यह पुराण पाच प्रकार का है—क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुष और सत्पुरुष का चरित्र

स च धर्म पुराणार्थं पुराणं पञ्चधा विदु ।
क्षेत्रं कालश्च तीर्थञ्च सत्पुसस्तद्विचेष्टितम् ॥[1]

आचार्य ने क्षेत्र, काल और तीर्थादि को अलग-अलग स्पष्ट किया है। आकाश, मर्त्य और पाताल लोक के विन्यास को क्षेत्र, भूत, भविष्य और वर्तमान तीन कालो के विस्तार को काल, मोक्षप्राप्ति के उपाय को तीर्थ कहते हैं और तीर्थ का सेवन करने वाले शलाका पुरुष कहलाते हैं

क्षेत्र त्रैलोक्यविन्यास. कालस्त्रैकाल्यविस्तर ।
मुक्त्युपायो भवेत्तीर्थं पुरुषास्तन्निषेविण· ॥[2]

आदिपुराण मे पुराण के वर्ण्य पर विचार करते हुए लोक, देश, नगर, राज्य, तीर्थ, दान-तप, गति और फल इन आठ का पुराणो मे वर्णन आवश्यक वतलाया गया है :

लोको देश· पुरं राज्य तीर्थं दानतपोऽन्वयम् ।
पुराणेष्वष्टधाख्येय गतय. फलमित्यपि ॥ ३ ॥[3]

लोक का नाम कहना, उसकी व्युत्पत्ति वतलाना, प्रत्येक दिशा तथा उसके अन्तरालों की लम्बाई, चौडाई आदि वतलाना, इनके सिवाय और भी अनेक वातो का विस्तार के साथ वर्णन करना लोकाख्यान कहलाता है। लोक के किसी एक भाग मे पहाड, द्वीप तथा समुद्र आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन करने को जानकार सम्यग्ज्ञानी देशाख्यान कहते हैं। भारतवर्ष आदि क्षेत्रो मे राजधानी का वर्णन करना पुराण जानने वाले आचार्यों के मत मे पुराख्यान कहलाता है। उस देश का यह भाग अमुक राजा के

---

1. आदिपुराण, २ ३८
2. वही, २ ३९
3. वही, ४ ३.

प्राकृत, अपभ्रश और हिन्दी तक मे विपुलरूप से उपलब्ध है। नीचे जैनो के पुराण-साहित्य की एक सूची दी जा रही है[1]

| | पुराण का नाम | लेखक | समय |
|---|---|---|---|
| १ | पद्मपुराण—पद्मचरित | रविषेण | ७०५ वि० स० |
| २ | महापुराण ( आदिपुराण ) | जिनसेन | नवी शती |
| ३ | उत्तरपुराण | गुणभद्र | १०वी शती |
| ४. | अजितपुराण | अरुणमणि | १७१६ वि० स० |
| ५. | आदिपुराण ( कन्नड ) | कवि पप | |
| ६ | आदिपुराण | भट्टारक चन्द्रकीर्ति | १७वी शती |
| ७ | आदिपुराण | ,, सकलकीर्ति | १५वी शती |
| ८ | उत्तरपुराण | ,, ,, | |
| ९. | कर्णामृतपुराण | केशवसेन | १६८८ वि० स० |
| १० | जयकुमारपुराण | ब्र० कामराज | १५५५ |
| ११ | चन्द्रप्रभपुराण | कवि अगामदेव | |
| १२ | चामुण्डपुराण | चामुण्डराय | ९८० शक स० |
| १३. | धर्मनाथपुराण | कवि वाहुबली | |
| १४. | नेमिनाथपुराण | ब्र० नेमिदत्त | |
| १५ | पद्मनाभपुराण | भ० शुभचन्द्र | १७वी शती |
| १६ | पउमचरिय ( अपभ्रश ) | चतुर्मुखदेव | अनुपलब्ध |
| १७ | ,, ,, | स्वयभूदेव | |
| १८ | पद्मपुराण | भ० सोमसेन | |
| १९ | पद्मपुराण | भ० धर्मकीर्ति | १६५६ |
| २० | पद्मपुराण ( अपभ्रश ) | कवि रइधू | १५–१६वी शती |
| २१ | ,, | भ० चन्द्रकीर्ति | १७वी शती |
| २२ | ,, | ब्रह्म जिनदास | १५-१६वी शती |
| २३ | पाण्डवपुराण | भ० शुभचन्द्र | १६०८ |
| २४ | ,, ( अपभ्रश ) | भ० यश कीर्ति | १४९७ |
| २५ | ,, | भ० श्रीभूपण | १६५७ |

१ प्रस्तुत सूची हिन्दी विश्वकोश, खड ७, पृ० २६४–६५ एव जिनसेनकृत आदिपुराण, प्रथम भाग की प्रस्तावना पृ० ८-९ के आधार पर दी गई है। हिन्दी विश्वकोश के अनुसार क्र० स० १६,१७,२७–३०, ४५–४६, ४८-५२ अपभ्रश भापा मे लिखित है।

के अतिरिक्त उनका सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश का कथा-साहित्य धार्मिक कोटि मे डालकर बहुत पहले वहिष्कृत किया जा चुका था। विशेपरूप से यहाँ अपभ्रश रचनाओ की चर्चा करना आवश्यक है। अपभ्रश साहित्य की प्राप्त रचनाओ मे से अधिकतम रचनाएँ जैन कवियों-लेखको द्वारा लिखी गई है। उनका विपय भी जैन शलाका पुरुपो की कथा अथवा अन्य जैन कथाओ से सम्बन्धित होता है। यद्यपि जैन कथाओं के नायको को जैन सिद्धान्तो का पालन करते हुए मोक्ष-प्राप्त्यर्थ दीक्षित होते दिखाया गया है तथापि इन कथाओ मे शृगारिकता एव व्यावहारिक पक्ष किसी बात मे कम दिखाई नही पडता। साधारणतया जैन साहित्य मे जैनधर्म का ही शान्त वातावरण व्याप्त है, सन्त के हृदय मे शृगार कैसा ?[1] डा० रामकुमार वर्मा के इस कथन पर डा० शिवप्रसाद सिह की टिप्पणी विवेकपूर्ण और यथार्थ है—'जैन काव्य मे शान्ति या शम की प्रधानता है अवश्य किन्तु वह आरम्भ नही, परिणति हे। सभवत पूरे जीवन को शम या विरक्ति का क्षेत्र बना देना प्रकृति का विरोध है। जैन कवि इसे अच्छी तरह जानता है इसीलिए उसने शम या विरक्ति को उद्देश्य के रूप मे मानते हुए भी सासारिक वैभव, रूप, विलास और कामासक्ति का चित्रण भी पूरे यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है।'[2] इस टिप्पणी का प्रथम वाक्य अत्यधिक मार्मिक और जैन साहित्य की सम्पूर्ण व्याख्या के लिए एक तथ्य है। असल मे जो लोग सिर्फ इतना जानते है कि जैनधर्म निवृत्ति मार्ग का पोषक है वे ही जैनधर्म की अपूर्ण जानकारी होने के कारण धर्म एव साहित्य पर अनेक दोपारोपण थोपते हैं। जैन साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि उसमे भारतीय कला, विद्या एव अन्य लोक पक्ष अथवा परलोक पक्ष आदि विषयो के अन्तर्गत एक व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जैनो के यहाँ जीवन को दो भागो मे विभक्त किया गया है १ मुनिधर्म और २ गृहस्थधर्म। इन्ही दोनो धाराओ की छाप उनके साहित्य पर पडती है। 'मुनिधर्म के द्वारा एक ऐसे वर्ग की स्थापना का प्रयत्न किया गया हे जो सर्वथा नि स्वार्थ, नि स्पृह और निरीह होकर वीतराग भाव से अपने व दूसरो के कल्याण मे ही अपना समस्त समय व शक्ति लगावे। साथ ही गृहस्थधर्म की

---

१ डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ १००

२ डा० शिवप्रसाद सिंह, सूरपूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० २८२

अन्यत्र भी ऐसे अनेकानेक उद्धरणों से अपभ्रंश काव्य भरे पड़े हैं। अपभ्रंश भाषा के उत्कृष्ट कवि स्वयंभू और पुष्पदंत आदि कवियों की साहित्य-समाज को बहुत बड़ा देन है। इसीलिए राहुल जी ने स्वयंभू का मूल्यांकन इन शब्दों में किया 'हिन्दी कविता के पांचों युगों—सिद्ध सामन्त युग, सूफी युग, भक्त युग, दरबारी युग और नवजागरण युग के जितने भी कवियों को हमने यहाँ संगृहीत किया है, उनमें यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि स्वयंभू सबसे बड़ा कवि था।'[1] इतने से भी जब महापंडित राहुल जी को संतोष नहीं होता तो वे कहते हैं कि 'राम के नामों मुक्ति पाने वालों का जब हमारे देश में नाम भी नहीं रह जायेगा तब भी तुलसी की कद्र होगी, स्वयंभू के जैनधर्म का अस्तित्व भी न रहने पर वह नास्तिक भारत का महान् कवि रहेगा। उसकी वाणी में हमेशा वह शक्ति रहेगी कि कहीं अपने पाठकों को हर्षोत्फुल्ल कर दे, कहीं शरीर को रोमांचित कर दे और कहीं आंखों को भीगने के लिये मजबूर कर दे।'[2]

उक्त विद्वानों के निष्पक्ष वक्तव्यों से अपभ्रंश साहित्य को प्रकाश में लाने की प्रेरणा लोगों को मिली। आज अपभ्रंश साहित्य की प्रतिष्ठा हिन्दी के आदि स्रोत के रूप में हो चुकी है। यदि जैनेतर कहानियों की धार्मिक रचनाएँ कथा-कोटि में रखी जा सकती हैं तो न्यायोचित यही है कि हमें पक्षपातरहित होकर अपभ्रंश कथाकाव्यों की धार्मिक रचनाओं पर विचार करना चाहिये। कथासरित्सागर कथाकाव्य है परन्तु वह भी धार्मिक उद्देश्यपूर्ण है। इसकी पुष्टि डा० सत्येन्द्र के कथन से होगी— 'कथासरित्सागर की भाँति के अनेक ग्रन्थ भारतीय साहित्य में मिलते हैं और इनमें से अधिकांश धार्मिक उद्देश्यनिहित हैं। कथासरित्सागर भी साम्प्रदायिक भावना से मुक्त नहीं है। शैव और शाक्त भावनाओं का इसमें प्राधान्य है। शिव और देवी की पूजा और व्रत, इनके दिये वरदान तथा विद्याधरत्व प्राप्त करना ये सभी साम्प्रदायिक दृष्टि की पुष्टि करते हैं। ऐसी ही विलक्षण दिव्यतापूर्ण कहानियाँ जैनियों के साहित्य में मिलती हैं। कथासरित्सागर के विद्याधर-विद्याधरियाँ आदि शिव-परिकर के हैं, जिन-परिकर के नहीं।'[3] इस प्रकार के बन्धन यदि स्वीकार किये

---

१ राहुल सांकृत्यायन, हिंदी काव्यधारा, प्रयाग, १९५४, पृ० ५०

२ वही, पृ० ५४

३ डा० सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० १६१

विज्जासिप्पमुवाओ अणिवेओ सचओ य दक्खत्त ।
साम दडो भेओ उवप्पयाण च अत्थकहा ॥ १८९ ॥[1]

अर्थात् विद्या, शिल्प, उपाय, साम, दड और भेद का जिस कथा मे वर्णन हो वह अर्थकथा है। मूलत अर्थकथाओ मे अर्थसम्बन्धी अथवा अर्थोपार्जनसम्बन्धी बातो की प्रधानता रहती है। अतएव उसे अर्थकथा सज्ञा से अभिहित किया जाता है।

कामकथा का लक्षण इस प्रकार है—रूप, अवस्था, वेश, दाक्षिण्य, शिक्षा आदि विषयो की एव कला-शिक्षा की दृष्टि, श्रुति, अनुभूति और सस्तुति कामकथा है।

रूव वओ य वेसो दक्खत्त सिक्खिया च विसएसु ।
दिट्ठ सुयमणुभूय च सथवो चेव कामकहा ॥ १९२ ॥[2]

दशवैकालिक मे धर्मकथा आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, सवेगिनी और निर्वेदिनी चार प्रकार की कही गई है। आक्षेपिणी कथा मे आचार, व्यवहार, प्रज्ञप्ति और दृष्टिवाद ये चार बाते मुख्यतया होती हैं

धम्मकहा बोद्धव्वा चउव्विहा धीरपुरिसपन्नत्ता ।
अक्खेवणि विक्खेवणि सवेगे चेव निव्वेए ॥
आयारे ववहारे पन्नत्ती चेव दिट्ठीवाए य ।
एसा चउव्विहा खलु कहा उ अक्खेवणी होइ ॥१९४-१९५॥[3]

विक्षेपिणी कथा चार प्रकार की होती है—अपने शास्त्र के कथनोपरान्त परशास्त्र का कथन करना, परशास्त्र के कथनोपरान्त अपने शास्त्र का कथन, मिथ्यात्व का वर्णन करके सम्यक्त्व का कथन, और सम्यक्त्व का विवेचन करके मिथ्यात्व का वर्णन करना।

विक्खेवणी सा चउव्विहा पण्णत्ता, तजहा—ससमय कहेत्ता परसमय कहेइ, परसमय कहेत्ता ससमयं कहेइ, मिच्छावाद कहेत्ता सम्मावादं कहेइ, सम्मावाद कहेत्ता मिच्छावायं कहेइ ॥[4]

---

१ वही
२ वही, पृ० २१८.
३ वही, पृ० २१९
४ दशवैकालिक-सूत्र · हरिभद्रवृत्ति, म०म० प्रिंटिंग वर्क्स, पृ० २२१

धार्मिक कथान्तर्गत निर्वेदिनी कथा पापाचरण से छुटकारा दिलाने के लिए कही जाती है। इसके चार भेद है। प्रथम प्रकार की निर्वेदिनी कथाए वे होती है जो इस लोक मे किए गए दुराचरणो का फल इसी लोक मे पाने का कथन करके व्यक्ति मे वैराग्योत्पादन करती है। इस जन्म के किये गये कार्यकलापो का फल जन्मजन्मान्तरो तक भोगना पडता है, इसका कथन करके व्यक्ति मे निर्वेद उत्पन्न करनेवाली कथा दूसरा प्रकार है। इसी प्रकार परलोकसम्बन्धी क्रियाकलापो का सरस वर्णन करने वाली निर्वेदिनी कथा तीसरा प्रकार है। चतुर्थ प्रकार सहित निर्वेदिनी कथाए सरस ढग से व्यक्ति को वैराग्योन्मुख करने मे सहायक होती है। इस कथा का दशवैकालिक मे निम्नलिखित स्वरूप है

**पावाणं कम्माण असुभविवागो कहिज्जए जत्थ।**
**इह य परत्थ य लोए कहा उ णिव्वेयणो नाम ॥**
**थोवपि पमायकयं कम्मं साहिज्जई जहिं नियमा।**
**पउरासुहपरिणाम कहाइ निव्वेयणीइ रसो ॥[1]**

दशवैकालिक मे कथा के जो चार प्रकार बताए है उनमे चौथी मिश्रित कथा होती है। मिश्रित कथा मे धर्म, अर्थ, काम इन तीनो प्रकार की कथाओ का मिश्रित रूप होता है। जिस कथा मे किसी एक पुरुषार्थ की प्रधानता न होकर तीनो ही पुरुषार्थों के वर्णन मे समानता रहे वह मिश्रकथा कहलाती है

**सा पुन. 'मिश्रा' मिश्रानाम सकीर्णपुरुषार्थाभिधानात्।[2]**

हरिभद्रसूरि ने 'समराइच्चकहा' मे उक्त चार प्रकार की ही कथाओं का उल्लेख किया है—**एत्थ सामन्नओ चत्तारि कहाओ हवन्ति। तं जहा। अत्थकहा, कहा, धम्मकहा, सकिण्णकहा य।**[3] इन कथाओ के अलग-अलग लक्षण भी दिये गये है। अर्थकथा और कामकथा के लक्षण लगभग दशवैकालिक ग्रन्थ के लक्षणो के समान ही हैं।[4] हरिभद्रसूरि के

---

१ दशवैकालिक, पृ० २१९
२ दशवैकालिक-सूत्र हरिभद्रवृत्ति, पृ० २२८
३ समराइच्चकहा, सपा०—एम० सी० मोदी, भाग २, पृ० २
४ तत्थ अत्थकहा नाम—जा अत्थोवायाणपडिबद्धा असिमसिकसिवाणिज्ज-सिप्पसगया विचित्तधाऊवायाइपमुहमहोवायसपउत्ता सामभेयउवप्पयाणदण्डा-इपयत्थविरइया, सा अत्थकह त्ति भणइ। जा उण कामोवायाणविसया वित्तवपुव्वयकलादक्खिणपरिगया अणुरायपुलइयपडिवत्तिजोयसारा दूईवावा-ररमियभावाणुवत्तणाइपयत्थसगया, सा कामकह त्ति भणइ।—वही, पृ०२–३

अनुसार धर्मकथा वह है जिसमें क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, संयम, सत्य, शौच, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य, अणुव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, भोग परिभोग, अतिथिसंविभाग, अनुकम्पा तथा अकाम निर्जरा के साधना की प्रमुखता से वर्णन हो

जा उण धम्मोवायाणगोयरा खमामद्दवज्जवमुत्तितवसंजमसच्चसोयाकिंचण्णबंभचेरपहाणा अणुव्वयदिसिदेसाणत्थदण्डविरईसामाइयपोसहोववासोवभोगपरिभोगातिहिसंविभागकलिया अणुकम्पाकामनिज्जराइपयत्थसंपउत्ता, सा धम्मकह त्ति।[1]

मिश्रकथा धर्म, अर्थ और काम त्रिवर्गों का कथन करने वाली तथा उदाहरण, हेतु और कारणों से पुष्ट होती है

जा उण तिवग्गोवायाणसंबद्धा कव्वकहागन्थत्थवित्थरविरइया लोइयवेयसमयपसिद्धा उयाहरणहेउकारणोववेया, सा संकिण्णकह त्ति वुच्चइ।[2]

आचार्य जिनसेन ने कथा के सद्धर्मकथा या सत्कथा एवं विकथा ये दो भेद माने है। उनका कथन है कि मोक्ष पुरुषार्थ के लिए उपयोगी होने से धर्म, अर्थ तथा काम का कथन करना कथा कहलाती है। जिसमें धर्म का विशेष निरूपण होता है उसे बुद्धिमान् सत्कथा कहते हैं। धर्म के फलस्वरूप जिन अभ्युदयों की प्राप्ति होती है उनमें अर्थ और काम भी मुख्य है अतः धर्म का फल दिखाने के लिए अर्थ और काम का वर्णन करना भी कथा कहलाती है। यदि यह अर्थ और काम की कथा धर्मकथा से रहित हो तो विकथा ही कहलायेगी जो मात्र पापाश्रव का कारण होती है। जिससे जीवो को स्वर्गादि अभ्युदय तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है वास्तव में वही धर्म कहलाता है, उससे सम्बन्ध रखनेवाली कथा को सद्धर्मकथा कहते है

> पुरुषार्थोपयोगित्वात्त्रिवर्गकथनं कथा।
> तत्रापि सत्कथां धर्म्यामामनन्ति मनीषिणः ॥ ११८ ॥
> तत्फलाभ्युदयाङ्गत्वादर्थकामकथा कथा।
> अन्यथा विकथैवासावपुण्यास्रवकारणम् ॥ ११९ ॥

---

१ वही, पृ० ३

२ वही

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसार्थसंसिद्धिरञ्जसा ।
सद्धर्मस्तन्निबद्धा या सा सद्धर्मकथा स्मृता ॥ १२० ॥[1]

सद्धर्मकथा के द्रव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल, भाव, महाफल और प्रकृत ये सात अग होते है । जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छ द्रव्य हैं, ऊर्ध्व, मध्य और पाताल ये तीन लोक क्षेत्र है । जिनेन्द्र देव का चरित्र ही तीर्थ है, भूत, भविष्य और वर्तमान तीन प्रकार के काल है, क्षायोपशमिक अथवा क्षायिक ये दो भाव है, तत्त्वज्ञान का होना फल कहलाता है और वर्णनीय कथावस्तु को प्रकृत कहते हैं । उक्त सात अग जिस कथा मे पाये जायें उसे सत्कथा कहते हैं

द्रव्यं क्षेत्र तथा तीर्थं कालो भाव फलं महत् ।
प्रकृत चेत्यमून्याहु सप्ताङ्गानि कथामुखे ॥ १२२ ॥
द्रव्य जीवादि षोढा स्यात्क्षेत्र त्रिभुवनस्थितिः ।
जिनेन्द्रचरित तीर्थं कालस्त्रेधा प्रकीर्तित. ॥ १२३ ॥
प्रकृत स्यात् कथावस्तु फल तत्त्वावबोधनम् ।
भाव क्षयोपशमजस्तस्य स्यात्क्षायिकोऽथवा ॥ १२४ ॥
इत्यमूनि कथाङ्गानि यत्र सा सत्कथा मता ।
यथावसरमेवैषा प्रपञ्चो दर्शयिष्यते ॥ १२५ ॥[2]

कथा के लक्षणो के साथ-साथ ही इन आचार्यो ने वक्ता और श्रोता के लक्षण भी वताये है ।[3] कथा का विस्तार न तो अधिक हो और न अति सक्षेप हो तो वह कथा महान् अर्थ वाली कथा होती है :

महार्थापि कथा अपरिक्लेशवहुला कथयितव्या ।[4]

उद्योतनसूरि ने कथा के पाच भेद स्वीकार किये है सकलकथा, खडकथा, उल्लापकथा, परिहासकथा और सकीर्णकथा—ताओ पुण पच कहाओ । त जहा । सयलकहा, खडकहा, उल्लावकहा, परिहासकहा, तहा वरा कहिय त्ति सकिण्ण कहत्ति ।[5]

---

१ जिनसेन, आदिपुराण, पृ० १८

२. वही.

३ वही, पृ० १८-२०

४ दशवैकालिक-सूत्र हरिभद्रवृत्ति, पृ० २३०

५ उद्योतनसूरि, कुवलयमाला, पृ० ४

आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन मे कथाओ के १ कथा, २. उपाख्यान, ३ आख्यान, ४ निदर्शन, ५ प्रवल्हिका, ६ मन्थल्लिका, ७ मणिकुल्या, ८ परिकथा, ९ खडकथा, १०. सकलकथा, ११ उपकथा, १२ बृहत्कथा के भेद से १२ भेद गिनाए है। उनका कथन है कि धीर-प्रशान्त नायक द्वारा समस्त भाषाओ मे गद्य अथवा पद्य मे अपना वृत्तान्त लिखा जाना कथा है। धीर-प्रशान्त नायक की अन्य कवि द्वारा कोई गद्यमय रचना जैसे कादम्बरी, कोई पद्यमय रचना जैसे लीलावती कथा है और समस्त भाषाओं मे कोई सस्कृत, कोई प्राकृत, कोई मागधी, शौरसेनी, पैशाची अथवा कोई अपभ्रंश भाषा मे निबद्ध वृत्तात कथा है।

किसी प्रबन्ध मे प्रबोधनार्थ उदाहरणस्वरूप जो कथा आये वह उपाख्यान है, जैसे नलोपाख्यान। आख्यान अभिनय, पठन, गायन के रूप मे ग्रन्थिक द्वारा कहा गया होता है—जैसे गोविन्दाख्यान। जहाँ अनेक प्रकार की चेष्टाओ द्वारा कार्य-अकार्य, उचित-अनुचित का निश्चय किया जाय और जिसके पात्र धूर्त, विट, कुट्टिनी, मयूर और मार्जारादि हो, वहाँ निदर्शन होता है, जैसे—पचतन्त्र। जहाँ दो विवादो मे एक की प्रधानता दिखायी जाय और जो अर्ध-प्राकृत मे रची गई हो वह प्रवल्हिका है, जैसे—चेटक। प्रेत महाराष्ट्री भाषा मे लिखी गई क्षुद्रकथा को मन्थल्लिका कहते हैं, जैसे—अनगवती। जिसमे पुरोहित, अमात्य, तापसी आदि का प्रारब्धनिर्वाह मे वर्णन हो वह भी मन्थल्लिका है। जिसमे वस्तु का पूर्व मे प्रकाशन न होकर बाद मे हो, वह मणिकुल्या है, जैसे—मत्स्यहसित। धर्म, अर्थ, कामादि पुरुपार्थों मे से किसी एक पुरुपार्थ को उद्देश्य कर लिखी गई कथा जो अनेक वृत्तान्त, वर्णन प्रधान हो वह परिकथा कहलाती है, जैसे—शूद्रक। जिसका मुख्य इतिवृत्त रचना के मध्य या अन्त के समीप वर्णित हो, वह खण्डकथा है, जैसे—इन्दुमती। ऐसा इतिवृत्त जिसके अन्त मे समस्त फलो की सिद्धि हो जाय वह सकलकथा है, जैसे—समरादित्य। प्रसिद्ध कथा के अन्तर्गत किसी एक पात्र के आश्रय से उपनिर्वधित कथा उपकथा होती है। लम्भ चिह्न से अङ्कित अद्भुत अर्थ वाली कथा बृहत्कथा कहलाती है, जैसे—नरवाहनदत्तचरितादि

धीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा ॥ अ०८, सू०८॥

आख्यायिकावन्न स्वचरितव्यावर्णकोऽपि तु धीरशान्तो नायक, तस्य तु वृत्तमन्येन कविना वा यत्र वर्ण्यते, या च काचिद् गद्यमयी यथा

कादम्बरी, काचित्पद्यमयी यथा लीलावती, या च सर्वभाषा काचित् संस्कृतेन काचित् प्राकृतेन काचिन्मागध्या काचिच्छूरसेन्या काचित् पिशाच्या काचिदपभ्रंशेन बध्यते सा कथा।

प्रबन्धमध्ये परबोधनार्थं नलाद्युपाख्यानमिवोपाख्यानमभिनयन् पठन् गायन् यदेको ग्रन्थिकः कथयति तद्गोविन्दवदाख्यानम्।

तिरश्चामतिरश्चा वा चेष्टाभिर्यत्र कार्यमकार्यं वा निश्चीयते तत्पञ्चतन्त्रादिवत्, धूर्तविटकुट्टनीमतमयूरमार्जारिकादिवच्च निदर्शनम्।

(पृ० ४६३)

प्रधानमधिकृत्य यत्र द्वयोर्ि : सार्धंप्राकृतरचिता चेटकादिवत् प्रवाह्लिका।

प्रेतमहाराष्ट्रभाषया क्षुद्रकथा गोरोचना-अनङ्गवत्यादिवन्मन्थल्लिका। यस्या पुरोहितामात्यतापसादीना प्रारब्धनिर्वाहे उपहास. सापि मन्थल्लिका।

यस्या पूर्वं वस्तु न लक्ष्यते पश्चात्तु प्रकाश्यते सा मत्स्यहसितादिवन्मणिकुल्या।

एक धर्मादिपुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकारवैचित्र्येणानन्तवृत्तान्तवर्णनप्रधाना शूद्रकादिवत् परिकथा।

(पृ० ४६४)

मध्यादुपान्ततो वा ग्रन्थान्तरप्रसिद्धमितिवृत्त यस्या वर्ण्यते सा इन्दुमत्यादिवत् खण्डकथा। समस्तफलान्तेतिवृत्तवर्णना समरादित्यादिवत् सकलकथा। एकतरचरिताश्रयेण प्रसिद्धकथान्तरोपनिबन्ध उपकथा। लम्भाङ्कितादद्भुतार्था नरवाहनदत्तादिचरितवद् बृहत्कथा। एते च कथाप्रभेदा एवेति न पृथग्लक्षिता ॥

(पृ० ४६५)

उपाख्यानमिति। यदाह—

नलसावित्रीपोडशराजोपख्यानवत्प्रबन्धान्त ।
अन्यप्रबोधनार्थं यदुपाख्यात ह्युपाख्यानम् ॥

आख्यानमिति। तथा चाह—

आख्यानकसंज्ञा तल्लभते यद्यभिनयन् पठन् गायन्।
ग्रन्थिक एक कथयति गोविन्दवदवहिते सदसि ॥

निदर्शनमिति । तथा च—

निश्चीयते तिरश्चामतिरश्चा वापि यत्र चेष्टाभिः ।
कार्यमकार्यं वा तन्निदर्शनं पञ्चतन्त्रादि ॥

(पृ० ४६३)

धूर्तविटकुट्टनीमतमयूरमार्जारिकादि यल्लोके ।
कार्याकार्यनिरूपणरूपमिह निदर्शनं तदपि ॥

प्रवह्लिकेति । तथा च—

यत्र द्वयोर्विवादः प्रधानमधिकृत्य जायते सदसि ।
सार्धप्राकृतरचिता प्रवह्लिका चेटकप्रभृति ॥

मन्थल्लिकेति । तथा च—

क्षुद्रकथा मन्थल्ली प्रेतमहाराष्ट्रभाषया भवति ।
गोरोचनेव कार्या सानङ्गवतीव वा कविभिः ॥

सापीति । तथा च—

यस्यामुपहासः स्यात्पुरोहितामात्यतापसादीनाम् ।
प्रारब्धनिर्वाहे सापि हि मन्थल्लिका भवति ॥

मणिकुल्येति । तथा च—

मणिकुल्यायां जलमिव न लक्ष्यते तत्र पूर्वतो वस्तु ।
पश्चात्प्रकाशते सा मणिकुल्या मत्स्यहसितादि ॥

परिकथेति । तथा च—

पर्यायेण बहूना यत्र प्रतियोगिनां कथाः कुशलैः ।
श्रूयन्ते शूद्रकवज्जिगीषुभिः परिकथा सा तु ॥

(पृ० ४६४)

खण्डकथेति । तथा च—

ग्रन्थांतरप्रसिद्धं यस्यामितिवृत्तमुच्यते विबुधैः ।
मध्यादुपान्ततो वा सा खण्डकथा यथेन्दुमती ॥

सकलकथेति । चरितमित्यर्थं ।

उपकथेति । तथा च—

यत्राश्रित्य कथान्तरमतिप्रसिद्धं निबध्यते कविभिः ।
चरितं विचित्रमन्यत्सोपकथा चित्रलेखादि ॥

बृहत्कथेति । तथा च—

लम्भाङ्किताद्भुतार्था पिशाचभाषामयी महाविषया ।
नरवाहनदत्तादेश्चरितमिव बृहत्कथा भवति ॥
( पृ० ४६५ )

कौतूहल कवि ने लीलावईकहा को दिव्यमानुषी कथा कहा है। दिव्यमानुषी कथा पाठको को आकर्षित करती है। अपनी कथा के सन्दर्भ मे कवि कहता है कि उसकी पत्नी ने उससे कहा कि वह मुग्ध युवतियो के लिए प्राकृत भापा मे, जिसमे देशी शब्द भी हो, एक दिव्य-मानुपी कथा कहे

एमेयमुद्ध-जुयई-मणोहर पाययाए भासाए ।
पविरल-देसि-सुलक्ख कहसु कह दिव्व-माणुसिय ॥
त तह सोऊण पुणो भणियं उव्विव-वाल-हरिणच्छि ।
जइ एव ता सुव्वउ सुसधि-वध कहा-वत्थु ॥[1]

और कवि कौतूहल त्रस्त वालहरिणो के समान नेत्रवाली अपनी पत्नी के आग्रह को स्वीकार कर दिव्यमानुषी लीलावतीकथा की रचना कर देते है। उन्होने आगे सस्कृत, प्राकृत और मिश्र भापा मे रची जाने वाली कथाओ का भी सदर्भ दिया है अर्थात् इसे उनके अनुसार भापा के आधार पर कथाओ का भेद माना जा सकता है

अण्ण सक्कय-पायय-सकिण्ण-विहा सुवण्ण-रइयाओ ।
सुव्वति महा-कह-पुगवेहि विविहाउ सुकहाओ ॥[2]

अर्थात् सस्कृत, प्राकृत एव मिश्र भापा मे सुन्दर शब्दावली मे रचित महाकवियो की विविध कथाएँ सुनी जाती हैं।

मुख्यत प्राकृत-अपभ्रश का अधिकतम भाग जैन साहित्यान्तर्गत है। आगे जिन अपभ्रश कथाकाव्यो के विपय मे विशद विचार करेंगे वे भी उक्त साहित्य मे से ही होगे। डा० ए० एन० उपाध्ये ने जैन कथा-साहित्य को पाँच भागो मे विभक्त किया है[3]

---

१. लीलावईकहा, पृ० ११
२ वही, पृ० १०
३ वृहत्कथाकोश की प्रस्तावना, पृ० ३५

१ प्रबन्ध काव्य के रूप में शलाका पुरुषों के चरित।
२ शलाका पुरुषों में से किसी एक का विस्तृत चरित।
३ रामाण्टिक धर्मकथाएँ।
४ अर्ध-ऐतिहासिक प्रबन्ध कथाएँ।
५ उपदेशप्रद कथाओं के संग्रह— कथाकोश।

डा० उपाध्ये ने यह वर्गीकरण समग्र जैन कथा-साहित्य को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किया है किन्तु यही वर्गीकरण अपभ्रंश कथा साहित्य पर भी पूर्णतः लागू हो सकता है। विशेष द्रष्टव्य यह है कि अपभ्रंश रचनाकारों ने मिश्रित अथवा मिश्रकथा को प्रधानता दी अथवा यों कहे कि अपभ्रंश कथाकाव्यों में मिश्र ढग की कथाए अधिक है। प्राकृत कथा-साहित्य मे समराइच्चकहा को हरिभद्र ने धर्मकथा माना है परन्तु जब हम उन्ही के बताए मिश्रकथा के लक्षणो की कसौटी पर इस कथा को कसते है तो यह मिश्रकथा ही ठहरती है।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि लौकिक एव पारलौकिक दोनो ही दृष्टियो से मिश्रकथा की प्रशसा की जा सकती है। इसका एक कारण यह है कि इस प्रकार की कथा मे लेखक को पात्रो की अभिव्यक्तियो अथवा इसके मिस अपने अनुभवो को अभिव्यक्त करने का अवसर रहता है। अपभ्रंश कथाकाव्यो के अध्ययन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। अपभ्रंश की जिन रचनाओ को हमने कथाकाव्यो की कोटि मे स्वीकार किया है उनके कथानको को सक्षिप्त रूप मे यहाँ प्रस्तुत करेंगे। इन कथानको से जहाँ हम एक ओर ( उनमे वर्णित विषयो के आधार पर ) उनकी कथात्मकता से परिचित होगे वही दूसरी ओर हमे हिन्दी प्रेमाख्यानको पर उनके प्रभाव की बात को समीक्षात्मक दृष्टिकोण से विचार करने का अवसर भी मिलेगा।

**लीलावईकहा**

इस कथा[2] के रचनाकार कवि कोऊहल ( कौतूहल ) है। ग्रन्थ की रचना ई० सन् आठवी शताब्दी के लगभग हुई।[3] कौतूहल ने अपने वश

---

१. समराइच्चकहा, पृ० २
२. डा० ए० एन० उपाध्ये द्वारा सपादित, सिंघी जैन ग्र० बम्बई से १९४९ ई० में प्रकाशित
३ डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५२९

का परिचय दिया है। इनके पितामह वहुलादित्य प्रकाण्ड पण्डित थे। अत पाण्डित्य इन्हे विरासत मे मिला। इस कथा को कवि ने 'दिव्य-मानुषी' कहा है।[1] अपनी पत्नी की विनती पर कवि ने 'मरहट्ठ-देसिभासा' मे इसकी रचना की। मूलत यह रचना अपभ्रंश-भाषा की नही है तथापि एक महत्त्वपूर्ण प्रेमकथा होने के कारण यहाँ इसका उल्लेख करना आवश्यक समझा गया है। दूसरी प्रमुख वात यह है कि इसे सस्कृत की कादम्वरी के टक्कर की रचना घोषित किया गया है। जो हो, प्राकृत-अपभ्रंश की कड़ी मे इसे एक कडी ही समझना चाहिए। इसका कथा-साराश इस प्रकार है

मगलाचरणादि के वाद मूल विषय प्रारम्भ होता है। प्रतिष्ठान नामक एक रमणीक नगर था। वहाँ का राजा सातवाहन था। कथा का नायक राजा सातवाहन ही है। राजा विपुलाशय की अप्सरा रम्भा से कुवलयावलि नाम की पुत्री थी। गन्धर्वकुमार चित्रागद से उसका प्रेम हो गया और उसने गन्धर्व-विवाह कर लिया। जव राजा विपुलाशय को इस वात का पता लगा तो उसने चित्रागद को राक्षस होने का शाप दे दिया। वह भीषणानन नामक राक्षस वन गया। कुवलयावलि वहुत दु खित होती है और आत्महत्या करने लगती है। परन्तु उसकी मा रम्भा उसे रोक देती है। रम्भा ने उसे सान्त्वना दी तथा यक्षराज नलकूवर के पास छोड दिया। इस यक्षराज की पत्नी एक विद्याधरी वसन्तश्री थी जिससे महानुमति नामक पुत्री हुई। महानुमति का कुवलयावलि मे स्नेह वढता गया और दोनो अच्छी सखियाँ वन गईं। एक वार दोनो सखियाँ विमान द्वारा मलयगिरि पर गईं। वहाँ सिद्धकुमारियो के साथ झूला झूलते हुए कुवलयावलि की आँखें सिद्धकुमार माधवानिल से मिल गई और वह प्रेमाविद्ध हो गई। वहाँ से वह घर वापिस आई तो उसकी व्याकुलता वढने लगी। कुवलयावलि सखी की दशा देखकर सिद्धकुमार का पता लगाने मलय पर्वत पर गई। वहाँ पहुँचने पर पता चला कि माधवानिल को उसका कोई शत्रु पाताललोक मे ले गया है। कुवलयावलि अपनी सखी के पास लौट आती है और उसे धैर्य वधाती है। दोनो सखियो ने अपनी इष्टसिद्धि के लिए भवानी-पूजन

---

1 लीलावईकहा, पृ० ११

का निदान किया और वे गोदावरी नदी के किनारे भवानी की पूजा करने लगी।

कथा की नायिका लीलावती सिंहलद्वीप की राजकुमारी थी। इसके पिता सिंहलराज शिलामेघ थे और माता शारदश्री वसन्तश्री की बहन थी। लीलावती ने राजा सातवाहन का चित्र देखा और वह मोहित हो गई। राजा सातवाहन को वह स्वप्न में देखती। उसने माता-पिता की आज्ञा ली और अपने प्रिय की खोज में निकल पड़ी। मार्ग में गोदावरी नदी पड़ी वहाँ उसका दल ठहर गया। यहीं उसकी मौसी वसन्तश्री की पुत्री महानुमति और उसकी सखी कुवलयावलि से भेंट हो गई। दो से तीन विरहिणियाँ हो गई और एक साथ रहने लगी।

राजा सातवाहन को साम्राज्य-विस्तार की इच्छा हुई। अत वह सेना लेकर सिंहल की ओर चला। राजा के दूत ने सातवाहन को मंत्रणा दी कि सिंहलराज से शत्रुता नहीं बढ़ानी चाहिए। अत सातवाहन ने विजयानन्द सेनापति को दूत बनाकर सिंहलराज के पास भेजा। वह रामेश्वर के मार्ग से सिंहल रवाना हुआ। विजयानन्द जिस नौका से जा रहा था वह टूट गई अत उसे गोदावरी के तट पर रुक जाना पड़ा। यहाँ पर उसे नग्न पाशुपत के दर्शन हुए। उसे पता लगा कि सिंहलराज की पुत्री अपनी सखियों के साथ यहीं रहती है। विजयानन्द लौट आया और सातवाहन से आकर पूरा वृत्तान्त कहा। सातवाहन ने उससे विवाह करने की इच्छा व्यक्त की। सातवाहन सेनासहित उपस्थित हुआ। परन्तु लीलावती ने कहा कि जब तक महानुमति का प्रिय नहीं मिलेगा तब तक वह विवाह नहीं करेगी। राजा पाताललोक गया और माधवानिल को छुड़ा लाया। राजा ने अपनी राजधानी लौटकर भीषणानन राक्षस पर आक्रमण किया तो चोट खाते ही वह राजकुमार बन गया।

संयोगात् यक्षराज नलकूबर, विद्याधर हंस और शिलामेघ एक ही स्थान पर एकत्रित होते हैं। नलकूबर अपनी पुत्री महानुमति का उसके प्रिय सिद्धकुमार माधवानिल से, विद्याधर हंस अपनी कन्या कुवलयावलि का चित्रांगद से और सिंहलनरेश अपनी राजकुमारी लीलावती का राजा सातवाहन के साथ विवाह कर देते हैं।

## पउमसिरीचरिउ

कवि धाहिल का लिखा हुआ पउमसिरीचरिउ[1] चार संधियो मे समाप्त एक प्रेमकथा है। जैसा कि जैनो के अन्य काव्यो मे भी धार्मिक उद्देश्य अधिक निहित रहता है, वैसा ही इसमे भी है। धाहिल ने स्वयं ही अपने को दिव्यदृष्टि कहा है—'धाहिलु दिव्वदिट्ठि कवि जपइ'। इनका समय वि० ८वी श० के बाद और बारहवी शताब्दी के पूर्व माना गया है। कथा सक्षेप मे इस प्रकार है

भगवान् चन्द्रप्रभ एव सरस्वती की स्तुति के बाद कवि कथा आरम्भ करता है। भरत क्षेत्र के मध्यदेश मे बसन्तपुर नामक एक नगर था। वहा के राजा का नाम जितशत्रु था और लीलावती नामक उसकी रानी थी। उसी नगर मे अतुल धनराशि का स्वामी धनसेन नामक एक श्रेष्ठी रहता था। धनश्री नामक उसकी दिव्यस्वरूपा एक कन्या और धनदत्त तथा धनावह नामक दो पुत्र थे। कन्या की शादी तो हो गई परन्तु दुर्भाग्य से वह विधवा हो गई। अपना जीवन बिताने के लिए वह अपने भाइयो के घर रहने लगी और भजन-पूजन करने के साथ घर की भी देखभाल करती थी।

एक दिन नगर मे धर्मघोष नामक एक मुनिवर आये। उनके उपदेशो का धनश्री पर बहुत प्रभाव हुआ। धनश्री नित्य पूजन-दानादि कर्म करने लगी। चूंकि धन भाइयो का था अत भाभियो को बुरा लगा और वे कभी-कभी धनश्री पर व्यग्य करती थीं। धनश्री स्त्री थी अत उसके मन मे दूषित भाव आ गए और उसने भाइयो को भाभियो के विरुद्ध कर दिया। बाद मे उसने उन दोनो भाई-भाभियो के भेद-भाव को मिटा दिया। इस प्रकार धनश्री ने अच्छे धर्मध्यान-पूर्वक मरणोपरान्त देवलोक पाया।

धनदत्त ने दूसरे जन्म मे अयोध्या के राजा अशोकदत्त के यहाँ पुत्ररूप मे जन्म लिया। इसके भाई धनावह ने भी इसी राजा के यहा जन्म लिया। यहा धनदत्त का नाम समुद्रदत्त और धनावह का वृषभदत्त

१ एच० भायाणी तथा एम० मोदी द्वारा सम्पादित, भा० वि० भ० बम्बई, वि० स० २००५ मे प्रकाशित

मे कवि जिन-स्तुति एव सज्जन-दुर्जनप्रशसा करता है। तत्पश्चात् मूल विषय आरम्भ होता है। कवि ने अपने काव्य को दो भागो मे विभक्त किया है—'विहि खडहिं वावीसहिं सधिहिं परिचिंतिय नियहेउ निबधिहि।'[1] परन्तु हर्मन जेकोबी ने कथा को तीन भागो मे विभक्त किया है। प्रथम भाग मे धनपाल नामक एक व्यापारी के पुत्र भविष्यदत्त के भाग्य का वर्णन है। प्रारम्भ मे भविष्यदत्त को उसका सौतेला भाई धोखा देता है अत. भविष्यदत्त को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। वाद मे वह अतुल धनराशि पाता है। द्वितीय भाग मे कुरुराज और तक्षशिलाराज मे युद्ध वर्णित है। भविष्यदत्त की इसमे महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसको विजय के फलस्वरूप कुरुराज्य का अर्द्धभाग प्राप्त होता है। तृतीय भाग मे भविष्यदत्त एव उसके साथियो के पूर्वजन्म तथा उत्तरजन्मो का विवरण है। कथा सक्षेप मे इस प्रकार है

गजपुर नामक समृद्ध नगर मे एक व्यापारी था जिसका नाम धनपाल था। उसकी कमलश्री नामक पत्नी थी जो मन को हरनेवाली और अरविन्द के समान मुखवाली थी। किसी पुत्र के न होने से दोनो चिन्तित थे। कमलश्री एक वार मुनि श्रेष्ठ के पास गई और पुत्र न होने की वातें कही। मुनि ने पुत्र होने का आशीर्वाद दिया। समयानुसार मुनि का आशीर्वाद फलित हुआ। विलक्षण प्रतिभा के लक्षणो से युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम भविष्यदत्त रखा गया। धनपाल सरूपा नामक सुन्दरी से अपना दूसरा विवाह कर लेता है और कमलश्री तथा भविष्यदत्त को भूलने लगता है। सरूपा से वधुदत्त नामक पुत्र उत्पन्न होता है। वधुदत्त का लालन-पालन होता है और वह वडा हो जाता है। वधुदत्त व्यापार करने के लिए देशान्तर की तैयारी कर लेता है। वह अन्य ५०० व्यापारियो के साथ कचनपुर की यात्रा करता है। वधुदत्त को देशान्तर जाते हुए देखकर भविष्यदत्त ने उसके साथ जाने का कमलश्री से आग्रह किया। कमलश्री के वहुत मना करने पर भी भविष्यदत्त ने वधुदत्त का विश्वास किया और उसके साथ हो लिया। यात्रा पर चलने के पूर्व कमलश्री ने अपने पुत्र को सदाचार का उपदेश दिया और सरूपा ने अपने पुत्र वधुदत्त से कहा कि वह भविष्यदत्त को समुद्र

१ भविसयत्तकहा, पृ० १४९

इच्छा बलवती होती है। अत भविष्यदत्त अपने माता-पिता, सुमित्रा आदि को लेकर मैनाक द्वीप की यात्रा पर निकल पडता है। मैनाक द्वीप पर उन्हे एक जेन मुनि के दर्शन होते हैं। वे उन्हे धर्मोपदेश देते है। वहाँ कुछ दिन रहने के पश्चात् वे सब अपने घर वापिस आ जाते है। एक वार मुनि विमलबुद्धि वहाँ आते हैं। भविष्यदत्त उनके दर्शनो को जाता है तो मुनि ने धर्मोपदेश के साथ उसके पूर्वभव की कथा सुनाई। भविष्यदत्त को वैराग्य हो जाता है और वह अपने पुत्र को राज्यभार सौपकर स्वय जगल चला जाता है। उसकी पत्नियाँ एव माता भी उसी के साथ तपस्या करती हैं। अन्त मे समाधिमरण होता है और उच्च-पद प्राप्त करके मोक्ष हो जाता है। कथा के अन्त मे श्रुतपचमी का माहात्म्य वताया गया है।

### जसहरचरिउ

इस चरितकाव्य[१] के रचयिता पुष्पदन्त १०वी शताब्दी के कवि माने जाते हे। प्रस्तुत ग्रन्थ चार सन्धियो मे समाप्त है। कथा का अतिम उद्देश्य अहिंसा के माहात्म्य को सिद्ध करना है। ग्रन्थ की कथा सक्षेप मे इस प्रकार है

अन्य चरितकाव्यो के समान मगलाचरण, जिनस्तुति के वाद कथा प्रारम्भ होती है। यौधेय नामक एक रमणीक देश था जिसकी राजधानी राजपुर थी। इसका मारिदत्त नामक राजा था जो अपना अधिकाश समय रानियो के साथ विलास मे व्यतीत करता था। एक दिन भैरवानन्द नामक कापालिकाचार्य यात्रा करते हुए उस राजधानी मे आये। वे नगरी मे अपने धर्म का प्रचार करते थे तथा उन्होने घोषणा की कि उन्हे दैवीय शक्ति प्राप्त है। वे सूर्य-चन्द्र को भी अपनी आज्ञानुसार चला सकते है, यह खवर राजा मारिदत्त को मिली। राजा ने ससम्मान भैरवानन्द को दरवार मे आमन्त्रित किया। भैरवानन्द से राजा ने वायुगमन की शक्ति प्राप्त करने की प्रार्थना की। भैरवानन्द ने राजा से कहा कि यदि वह मनुष्यसहित सभी प्राणियो के जीवित जोडो की वलि देवी चडमारी को दे तो उसे दिव्यशक्ति अवश्य प्राप्त होगी। राजा ने अपने राज्याधि-

८२ पी० एल० वैद्य द्वारा सपादित, कारजा जैन सिरीज में १९३१ मे प्रकाशित.

उठा और तलवार से दोनो को मारने का निश्चय किया। परन्तु उसने निश्चय बदल दिया और लौट आया। रानी भी भोर से पूर्व अपने विस्तर पर पहुँच गई।

यशोधर को इस घटना से धक्का लगा और उसने राज्य छोडने का विचार बना लिया। दूसरे दिन उसने अपनी मा से कहा कि उसने एक बुरा स्वप्न देखा है अत उसे साधु हो जाना चाहिए अन्यथा वह मर जाएगा। माता ने उसे बुरे स्वप्न का प्रभाव समाप्त करने के लिए देवी को एक जानवर की बलि देने की सलाह दी। राजा ने इसे उचित नहीं माना। अत एक आटे का मुर्गा बनाकर देवी को बलि चढाई गई और उसे सबने खाया। लेकिन राजा घर लौटा और उसने अपने पुत्र को राज्य सौंपकर जगल मे जाने का निश्चय किया। यह सुनकर रानी ने राजा से कहा कि वह एक दावत का प्रबन्ध कर रही है, तत्पश्चात् राजा के साथ वे भी चलेंगी। राजा ने स्वीकार कर लिया। रानी ने राजा तथा उसकी माता को विप दे दिया। विप के प्रभाव से दोनो की मृत्यु हो गई। यशोधर के पुत्र जसवई ने जब यह देखा तो उनका सस्कार उत्तम रीति से किया जिससे कि उन्हे सुगति मिले। परन्तु इस जन्म मे उन्होने आटे के मुर्गे की बलि दी थी अत दूसरे जन्म मे यशोधर को मयूर और चन्द्रमती को जगल के कुत्ते का जन्म मिला। मयूर को एक जगली ने पकडकर राजा जसवई को भेंट किया। मयूर ने अपनी पूर्वभव की रानी को आनन्द की जिन्दगी बिताते देखा तो उस पर और उसके प्रेमी पर आक्रमण कर दिया। फलस्वरूप रानी ने मयूर की टाग तोड दी। उसकी लडकी मयूर का पीछा करती। पूर्वभव की चन्द्रमती, जिसे कुत्ता का जन्म मिला था, आई और उसे मार डाला। राजा जसवई ने जब सुना तो उन्होने कुत्ते को मार डाला। इस प्रकार अगले भव मे यशोधर को नकुल और चन्द्रमती को सर्प का जन्म मिला। जगल मे नकुल ने सर्प को और नकुल को सुअर ने मार डाला।

फलत अगले भव मे यशोधर को क्षिप्रा नदी मे मछली और माता चन्द्रमती को मगरमच्छ का जन्म मिला। मगर ने मछली को पकडना चाहा ही था कि महल की राजकुमारी जलक्रीडा के लिए वहाँ आई और मगर द्वारा पकडी गई। मछली मगर से तो बच गई परन्तु जाल द्वारा मगर और मछली दोनो पकडे गए। मगर मार डाला गया और मछली

बुरी लगी और उसने रानी से उसके आभूषण लेकर दडित किया। नागकुमार को जब यह पता चला तो वह द्यूतभवन गया और वहाँ से बहुत से रत्नाभूषण जीतकर लाया और अपनी माँ को दिये।

दूसरे दिन राजा ने उस भवन मे अनेक आभूषणो को नही पाया। जब उसे पता चला कि राजकुमार जीतकर ले गए तो वह बहुत प्रभावित हुआ। राजा ने राजकुमार को अपने साथ जुआ खेलने को आमन्त्रित किया। राजा अपना सब कुछ हार गया परन्तु राजकुमार ने अपनी माँ के आभूषणो के अतिरिक्त सब वापिस कर दिया।

इसके बाद एक दिन राजकुमार को एक उद्धत घोडा दिया जाता है जिसे राजकुमार ठीक कर लेता है। नागकुमार की शक्ति को देखकर उसका सौतेला भाई श्रीधर उससे जलने लगता है। वह सोचता है कि नाग के रहते राज्य उसे नही मिल सकता। अत वह उसे मरवाना चाहता है। जब राजा को यह पता चलता है तो उसे बहुत धक्का लगता है और वह नागकुमार को अलग भवन मे रहने की व्यवस्था कर देता है। एक दिन नगर मे जगली हाथी ने आकर आतक फैला दिया। श्रीधर हाथी को मारने के प्रयास मे पूर्णत विफल हुआ। राजा स्वय हाथी को मारने चला तो रानियो को घबराहट होने लगी। अत मे मल्लयुद्ध मे प्रवीण नागकुमार ने हाथी को इस प्रकार उठा लिया जैसे कि कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठा लिया था। सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए।

इसी समय उत्तरी मथुरा मे जयवर्मा अपनी रानी जयावती के साथ राज्य करता था। उसके व्याल और महाव्याल नामक दो ज्ञानवान् पुत्र थे। उनमे से एक शिव के समान त्रिनेत्र था और दूसरा अद्वितीय सुन्दर था। एक बार राजधानी मे एक साधु आया जिससे राजा ने अपने पुत्रो के भविष्य के विषय मे प्रश्न किये। कुछ समय बाद राजा ने अपना राज्य पुत्रो को सौप दिया और स्वय साधु हो गया। दोनो भाई राज्यसुख का आनन्द ले रहे थे। इसी बीच पाटलिपुत्र के राजा श्रीवर्मा की पुत्री की सुन्दरता की ख्याति दोनो भाइयो ने सुनी। दोनो भाइयो ने अपना राज्य मन्त्री के पुत्र दूर्वाकिन को सौप दिया और स्वय पाटलिपुत्र चले गए। वहाँ गणिकासुन्दरी ने छोटे भाई और सुरसुन्दरी ने बडे भाई से

विवाह कर लिया। कुछ दिन बाद पाटलिपुत्र को गौड देश के अरिदमन ने घेर लिया। ये दोनो भाई भी वही थे। दोनो राजकुमारियो ने पिता और अपने भय की बात राजकुमार को बताई। नागकुमार राजा की सहायता के लिए तैयार हो गए। घमासान युद्ध हुआ और शत्रु की पराजय हुई। व्याल अपने छोटे भाई को छोडकर रत्नपुर आ गया जहा कि नागक की दृष्टि से उसका तीसरा नेत्र नष्ट हो गया था।

इसी समय श्रीधर ने नागकुमार को मारने का अन्तिम प्रयत्न किया। श्रीधर ने जिन आदमियो को मारने के लिए नियुक्त किया था वे नागकुमार के निवासस्थान मे जिस द्वार से घुसे उसकी निगरानी व्याल कर रहा था। सभी शत्रु मार डाले गए। नागकुमार बाहर निकलकर आया तो उसे नयनधर मन्त्री मिला जिसने उसके पिता का सन्देश दिया। पिता ने सन्देश भेजा था कि यद्यपि वह सम्राट होने वाला है परन्तु कुछ समय के लिए देश छोड दे और बुलाने पर आ जाए। राजकुमार ने पिता की आज्ञा मानकर अपनी सेनाशक्ति के साथ मथुरा की ओर प्रस्थान किया।

नागकुमार ने मथुरा पहुँचकर अपनी सेना को शहर से बाहर ही रोक दिया और स्वय शहर देखने गया। वहाँ उसे पता चला कि वहाँ के राजा ने कान्यकुब्ज के राजा की पुत्री शीलवती को, जिसका कि विवाह सिंहपुर के राजा हरिवर्मा से होने जा रहा था, जबरदस्ती भगाकर कैद कर लिया है। नागकुमार का दुर्वचन और उसके सैनिको से युद्ध हुआ। इसी बीच व्याल आ पहुँचा। दुर्वचन ने अपने राजा को पहचान लिया और स्वय को छोडने की प्रार्थना की। नागकुमार ने उसे यह कहकर छोड दिया कि कैद की हुई राजकुमारी को अपनी बहिन की तरह उसके पिता के यहाँ पहुँचा दो।

एक दिन नागकुमार ने देखा कि उसके मार्ग पर ५०० वाद्यकलाकार चले आ रहे है। उनमे से मुख्य राजा जालन्धर से ज्ञात हुआ कि उन्हे कश्मीर के राजा नन्द की पुत्री त्रिभुवनरति ने वाद्य मे हरा दिया है। उस राजकुमारी की प्रतिज्ञा है कि जो उसे कला मे पराजित करेगा वह उसी का वरण करेगी। नागकुमार व्याल के साथ कश्मीर गया। वहाँ नागकुमार को देखते ही राजकुमारी मोहित हो गई। बाद मे नागकुमार से सभी तरह सतुष्ट होकर दोनो का विवाह हुआ।

एक दिन एक व्यापारी ने, जो अपनी यात्रा से वापिस आया था, नागकुमार से कहा कि रम्यक जगल मे तीन चोटी वाला एक पर्वत है। उसके तल मे एक जिनमदिर था जिसके लोहे के बन्द दरवाजे इन्द्र के वज्र से भी नही खुले। नागकुमार यह सुनकर सदल वहाँ पहुँचा और उसके हाथ के स्पर्शमात्र से मन्दिर के कपाट खुल गए। मन्दिर मे चन्द्रप्रभु तीर्थंकर की प्रतिमा थी। उसने वहाँ पूजन किया। इतने मे सवर ने आकर वताया कि उसकी पत्नी को भीमासुर कालगुहा मे उठाकर ले गया। नागकुमार व्याल के साथ पाताल मे गया। वहाँ उसने दानवकुमारी, जो अतीव सुन्दरी थी, को देखा। द्वारपाल ने उन्हे अन्दर प्रविष्ट नही होने दिया अत वे ससद भवन की ओर आए, जहाँ असुर ने आदर के साथ उनका स्वागत किया और जवाहरात तथा रत्न भेट किये। सवर की पत्नी ने उनका विरोध किया ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् नागकुमार उसी जगल की कचनगुहा मे प्रविष्ट हुआ। इसका मार्ग सवर ने वताया था। वहाँ उसकी भेट देवी सुदर्शना से हुई। सुदर्शना ने नागकुमार का स्वागत किया और अपनी समस्त विद्याओ को उसे आग्रहपूर्वक प्रदान किया। नागकुमार ने विद्याओ की प्राप्ति को कथा जानकर विद्याएँ स्वीकार कर ली। परन्तु देवी से कहा कि अभी सभी विद्याएँ वह अपने पास रखे और आवश्यकता होने पर उसे दे दे। इसके वाद देवी सुदर्शना की सलाह से नागकुमार एक अन्य कालवेतालगुहा मे घुसा और वहाँ जितशत्रु को पूर्ण सम्पत्ति को प्राप्त कर लिया। तदनन्तर वह 'दैत्य-वृक्ष-छिद्र' के पास गया। वहाँ लकडी के राक्षस को ठोकर मारी और वहाँ जितशत्रु का पुराना धनुप देखा। वाहर आने पर वह जिनमन्दिर गया तथा वहाँ से अपने निवासस्थान पर आया।

तदनन्तर नागकुमार सवर के मार्गनिर्देशन मे जगल के वाहर आ गया। गिरिशिखर का वनराजा राजकुमार के समीप आया और उसने वताया कि एक साधु के आदेशानुसार वह अपनी कन्या लक्ष्मीमती का विवाह उसके साथ करना चाहता है। अत वह वनराजा के घर गया और विवाह किया। एक दिन नागकुमार ने एक साधु से प्रश्न किया कि वनराजा कोई जगल का आदमी है अथवा राजा ? इस पर साधु ने वनराजा की कहानी सुनाई। पुण्ड्रवर्धन नामक नगर मे अपराजित नाम का सूर्यवशी राजा था। उसके सत्यवती और वसुन्धरा दो रानियाँ थी।

विवाह कर लिया। कुछ दिन बाद पाटलिपुत्र को गौड़ देश के अरिदमन ने घेर लिया। ये दोनो भाई भी वहीं थे। दोनो राजकुमारियो ने पिता और अपने भय की बात राजकुमारो को बताई। राजकुमार राजा की सहायता के लिए तैयार हो गए। घमासान युद्ध हुआ और शत्रु की पराजय हुई। व्याल अपने छोटे भाई को छोड़कर कनकपुर आ गया जहाँ कि नागक की दृष्टि से उसका तीसरा नेत्र नष्ट हो गया था।

इसी समय श्रीधर ने नागकुमार को मारने का अन्तिम प्रयत्न किया। श्रीधर ने जिन आदमियो को मारने के लिए नियुक्त किया था व नागकुमार के निवासस्थान मे जिस द्वार से घुसे उसकी निगरानी व्याल कर रहा था। सभी शत्रु मार डाले गए। नागकुमार बाहर निकलकर आया तो उसे नयनधर मन्त्री मिला जिसने उसके पिता का सन्देश दिया। पिता ने सन्देश भेजा था कि यद्यपि वह सम्राट होने वाला है परन्तु कुछ समय के लिए देश छोड दे और बुलाने पर आ जाए। राजकुमार ने पिता की आज्ञा मानकर अपनी सेनाशक्ति के साथ मथुरा की ओर प्रस्थान किया।

नागकुमार ने मथुरा पहुँचकर अपनी सेना को शहर से बाहर ही रोक दिया और स्वय शहर देखने गया। वहाँ उसे पता चला कि वहाँ के राजा ने कान्यकुब्ज के राजा की पुत्री शीलवती को, जिसका कि विवाह सिंहपुर के राजा हरिवर्मा से होने जा रहा था, जबरदस्ती भगाकर कैद कर लिया है। नागकुमार का दुर्वचन और उसके सैनिको से युद्ध हुआ। इसी बीच व्याल आ पहुँचा। दुर्वचन ने अपने राजा को पहचान लिया और स्वय को छोडने की प्रार्थना की। नागकुमार ने उसे यह कहकर छोड दिया कि कैद की हुई राजकुमारी को अपनी बहिन की तरह उसके पिता के यहाँ पहुँचा दो।

एक दिन नागकुमार ने देखा कि उसके मार्ग पर ५०० वाद्यकलाकार चले आ रहे है। उनमे से मुख्य राजा जालन्धर से ज्ञात हुआ कि उन्हे कश्मीर के राजा नन्द की पुत्री त्रिभुवनरति ने वाद्य मे हरा दिया है। उस राजकुमारी की प्रतिज्ञा है कि जो उसे कला मे पराजित करेगा वह उसी का वरण करेगी। नागकुमार व्याल के साथ कश्मीर गया। वहाँ नागकुमार को देखते ही राजकुमारी मोहित हो गई। बाद मे नागकुमार से सभी तरह सतुष्ट होकर दोनो का विवाह हुआ।

एक दिन एक व्यापारी ने, जो अपनी यात्रा से वापिस आया था, नागकुमार से कहा कि रम्यक जगल मे तीन चोटी वाला एक पर्वत है। उसके तल मे एक जिनमदिर था जिसके लोहे के बन्द दरवाजे इन्द्र के वज्र से भी नही खुले। नागकुमार यह सुनकर सदल वहाँ पहुँचा और उसके हाथ के स्पर्शमात्र से मन्दिर के कपाट खुल गए। मन्दिर मे चन्द्रप्रभु तीर्थकर की प्रतिमा थी। उसने वहाँ पूजन किया। इतने मे संवर ने आकर बताया कि उसकी पत्नी को भीमासुर कालगुहा मे उठाकर ले गया। नागकुमार व्याल के साथ पाताल मे गया। वहाँ उसने दानवकुमारी, जो अतीव सुन्दरी थी, को देखा। द्वारपाल ने उन्हे अन्दर प्रविष्ट नही होने दिया अत वे ससद भवन की ओर आए, जहाँ असुर ने आदर के साथ उनका स्वागत किया और जवाहरात तथा रत्न भेंट किये। सवर की पत्नी ने उनका विरोध किया ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् नागकुमार उसी जगल की कचनगुहा मे प्रविष्ट हुआ। इसका मार्ग सवर ने बताया था। वहाँ उसकी भेंट देवी सुदर्शना से हुई। सुदर्शना ने नागकुमार का स्वागत किया और अपनी समस्त विद्याओ को उसे आग्रहपूर्वक प्रदान किया। नागकुमार ने विद्याओ की प्राप्ति की कथा जानकर विद्याएँ स्वीकार कर ली। परन्तु देवी से कहा कि अभी सभी विद्याएँ वह अपने पास रखे और आवश्यकता होने पर उसे दे दे। इसके बाद देवी सुदर्शना की सलाह से नागकुमार एक अन्य कालवेतालगुहा मे घुसा और वहाँ जितशत्रु की पूर्ण सम्पत्ति को प्राप्त कर लिया। तदनन्तर वह 'दैत्य-वृक्ष-छिद्र' के पास गया। वहाँ लकडी के राक्षस को ठोकर मारी और वहाँ जितशत्रु का पुराना धनुष देखा। बाहर आने पर वह जिनमन्दिर गया तथा वहाँ से अपने निवासस्थान पर आया।

तदनन्तर नागकुमार सवर के मार्गनिर्देशन मे जगल के बाहर आ गया। गिरिशिखर का वनराजा राजकुमार के समीप आया और उसने बताया कि एक साधु के आदेशानुसार वह अपनी कन्या लक्ष्मीमती का विवाह उसके साथ करना चाहता है। अत वह वनराजा के घर गया और विवाह किया। एक दिन नागकुमार ने एक साधु से प्रश्न किया कि वनराजा कोई जगल का आदमी है अथवा राजा ? इस पर साधु ने वनराजा की कहानी सुनाई। पुण्ड्रवर्धन नामक नगर मे अपराजित नाम का सूर्यवशी राजा था। उसके सत्यवती और वसुन्धरा दो रानियाँ थी।

कराया। सुकण्ठ के पुत्र वज्रकण्ठ को राज्य सौंपकर उसकी पुत्री रुक्मिणी से विवाह किया तथा गजपुर लौटकर अभिचन्द्र की पुत्री चन्द्रा के साथ उन सातो राजकुमारियो का वरण किया ॥ ७ ॥

इधर महाव्याल बहुत समय से गणिकासुन्दरी के साथ पाटलिपुत्र मे आनन्द कर रहा था। एक दिन एक यात्री द्वारा उसे ज्ञात हुआ कि दक्षिण मदुरा के राजा पाड्या की अवैध पत्नी की पुत्री को कोई वर ही पसन्द नही आता। वह मदुरा पहुँचा और सडक पर एक कुवारी कन्या द्वारा देखा गया। वह यात्री से प्रभावित हुई और अपने कर्मचारियो से यात्री को पकड लाने के लिए कहा। यात्री ने सभी को मार दिया। इस पर लडकी द्वारा वह पुरस्कृत हुआ। इसी प्रकार एक दिन उसे एक यात्री से मालूम हुआ कि उज्जैन की राजकुमारी को कोई आदमी पसन्द नही है। महाव्याल ने राजा पाड्या से उज्जैन जाने की अपनी इच्छा व्यक्त की। वह उज्जैन आया और अन्य विवाहेच्छुको के साथ महल मे गया। राजकुमारी ने दूर बाल्कनी से ही उसे देखकर अस्वीकार कर दिया। अत वह अपने बडे भाई के पास गजपुर आया और नागकुमार का चित्र लेकर पुन उज्जैन पहुचा। चित्र देखकर राजकुमारी मोहित हो गई। नागकुमार के साथ उसका विवाह हुआ।

नागकुमार ने महाव्याल से उसकी दक्षिण-यात्रा का कोई आश्चर्य पूछा। उसने बताया कि किष्किन्धा-मलाया मे मेघपुर के राजा की कन्या ने प्रतिज्ञा की है कि जो उसे नृत्य करते हुए मृदग से हरा देगा वह उसी का वरण करेगी। नागकुमार सुनते ही वहाँ गया और उससे विवाह किया। एक दिन एक सौदागर मेघपुर उसके ससुर के यहाँ उपहारो के साथ आया और नागकुमार से कहा कि तोयावली द्वीप मे एक जिनमन्दिर है और वहाँ एक वृक्ष पर कुछ कुमारियाँ सहायता के लिए चिल्ला रही थी। वे एक विद्याधर के सरक्षण मे थी जो कि उन्हे किसी से वार्तालाप की अनुमति नही दे रहा था। नागकुमार ने सुदर्शना का स्मरण किया और वह अविलम्ब उपस्थित हुई। उससे विद्याएँ लेकर वह तोयावली द्वीप पहुँचा और प्रथम जिनमन्दिर मे पूजन किया। उन कुमारियो मे से बडी ने उसे बताया कि भूमितिलक के राजा श्रीरक्ष के ५०० पुत्रियाँ थी जिनको कि उनके भान्जे ने कत्ल कर दिया और उन्हे तथा उनके दो भाइयो को जेल मे डाल दिया। नागकुमार ने अचय और अभय को

यही कारण है कि चरित, कथा, रास आदि विविध काव्यरूपो मे एव सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, गुजराती, राजस्थानी आदि विविध भाषाओ मे ९५ काव्य जम्बूस्वामी-विषयक मिलते हैं। प्रस्तुत काव्य[1] की रचना वीर कवि ( वि० स० १०२५ ) ने अपभ्रश भाषा मे की है। इसकी कथा सक्षेप मे इस प्रकार है

ग्रन्थ का प्रारम्भ जिनेन्द्र देवो की स्तुति से होता है। ग्रन्थकार अपने माता-पिता, प्रेरणादायको का परिचय देने के बाद मूलकथा आरम्भ करता है। मगधदेश मे राजगृह नामक नगर था। वहाँ के राजा का नाम श्रेणिक था। श्रेणिक कई सहस्र सुन्दर रानियो का पति था। एक बार विपुलाचल पर भ० महावीर का समवसरण हुआ। श्रेणिक राजा अपने समस्त सम्बन्धित परिकर के साथ भ० महावीर के दर्शनो के लिए वहाँ गया।

राजा की जिज्ञासानुसार भगवान् ने जीवादि तत्त्वो की व्याख्या की। इसी अवसर पर एक महातेजस्वी देव अपनी चार देवियो के साथ विमान से उतरा और भगवान् की वन्दना कर उचित स्थान पर बैठ गया। श्रेणिक ने कुतूहलवश उसके विषय मे भगवान् से पूछा। भगवान् ने बताया कि यह विद्युन्माली नामक देव है जो सातवें दिन स्वर्ग से च्युत होकर इसी नगर मे मनुष्य का जन्म लेगा तथा तपस्या द्वारा इसी भव से मोक्ष जायेगा। श्रेणिक ने देव के पूर्व भवो की कथा जानने की इच्छा भगवान् मे प्रकट की। भगवान् ने देव के पूर्व भवो की कथा सुनाई। मगधदेश मे वर्द्धमान नामक ब्राह्मणो का गाव था। वहाँ सोमशर्म अपनी पत्नी सोमशर्मा के साथ रहता था। उनके भवदत्त और भवदेव नामक शास्त्रो को जानने वाले दो पुत्र थे। कुछ दिनो बाद सोमशर्म व्याधि से इतना पीडित हुआ कि जीवित ही अग्नि मे प्रविष्ट हो मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी पत्नी भी उसी समय चिता मे जलकर भस्म हो गई। वियोग शान्त हो जाने पर बडे पुत्र भवदत्त ने राज्य सभाला। कुछ समय पश्चात् सुधर्म नामक मुनि नगर मे पधारे। उनके

---

1 डा० वी० पी० जैन द्वारा सम्पादित व भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से १९६७ मे प्रकाशित प्रस्तावना पृ० ४३--४७ पर जम्बूस्वामी-विषयक रचना सूची

के पूर्वभवो के विषय मे भगवान् से पूछा। भगवान् ने कहा—भारतदेश मे चम्पानगरी का सूर्यसेन नामक एक सेठ था, जिसके चार पत्नियाँ थी। सूर्यसेन कोढी हो गया। उसकी चारो पत्नियो ने सुमति नामक मुनि से श्रावकधर्म के व्रत ले लिए। पति की मृत्यु के बाद सम्पूर्ण सम्पत्ति से मदिर निर्माण कराया। आर्यिका बनकर तप द्वारा स्वर्ग मे विद्युन्माली की चारो देवियाँ हुई है।

श्रेणिक राजा ने पुन. विद्युच्चोर के पूर्वभव के विषय मे पूछा तो भगवान् ने बताया कि वह हस्तिनापुर के राजा विसध्र का पुत्र हे। चोरी का व्यसन हो जाने से वह राजा के पास से भाग आया और यहाँ कामलता वेश्या के घर मे रहता हे। चोरी उसका मुख्य व्यसन है।

इसके बाद भगवान् ने बताया कि विद्युन्माली इसी राजगृह नगर के श्रेष्ठी अरहदास की पत्नी जिनमती के यहाँ पुत्ररूप मे जन्म लेगा। इसी बीच एक यक्ष अपने कुल की प्रशसा सुनकर नाच उठा। श्रेणिक ने इसका कारण पूछा तो भगवान् ने समाधान किया कि धनदत्त सेठ की गोत्रवती नाम की पत्नी थी। उससे अरहदास और जिनदास दो पुत्र उत्पन्न हुए। जिनदास व्यसनो मे पड गया। एक दिन एक जुआरी ने उसे मार दिया। शुभकर्मो से उसे यह यक्षयोनि मिली है और पूर्वभव के कुल की उन्नति सुनकर प्रसन्न हो रहा है। तत्पश्चात् भगवान् ने राजा को धर्मोपदेश दिये और जम्बूस्वामी के विषय मे सविस्तार बताया। राजा सपरिकर अपने नगर लौट आया। सात दिन बीतने पर अरहदास की पत्नी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर मे पाँच स्वप्न देखे १. सुवासित जम्बूफलो का गुच्छा, २ समस्त दिशाओ को प्रकाशित करने वाली निर्धूम अग्नि, ३ पुष्पित एव फलभार से नम्र शालिक्षेत्र, ४ चक्रवाक, हस आदि पक्षियो के कलरव से युक्त सरोवर, ५. मगरमच्छ आदि जलचरो से परिपूर्ण विशाल सागर। इसी समय विद्युन्माली देव जिनमती के गर्भ मे आया। समय आने पर पुत्रोत्पन्न हुआ। उस समय चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र मे था। पुत्र का नाम जम्बूस्वामी रखा गया। सुन्दरता से इस बालक ने कामदेव को जीत लिया था। बडे होने पर शिक्षा-दीक्षा पूर्ण हुई। ख्याति चारो ओर फैल गई। नगर की स्त्रियाँ इसे देख मन्त्रमुग्ध होकर बेसुध हो जाती थी।

अरहदास ने बातो-बातो मे ही बहुत पहले अपने चार मित्रो को उनकी

जम्बूस्वामी अभी तक छावनी मे ही थे। जैसे ही वे बाहर आये, गगनगति ने युद्ध के समाचार दिए तो जम्बूस्वामी ने केरलीय सेना को पुन एकत्रित किया और युद्ध छेड दिया। नरसहार होने लगा। जम्बूस्वामी ने रत्नशेखर को द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारा जिससे अधिक विनाश न हो। दोनो मे द्वन्द्व युद्ध हुआ। रत्नशेखर परास्त हुआ। मृगाक को बन्धनमुक्त कराकर जम्बूस्वामी केरल नगरी मे गए। कुछ दिन केरल मे रहने के पश्चात् मृगाक अपनी कन्या व पत्नी के साथ गगनगति विद्याधर, रत्नशेखर आदि के अनेक विमानो को लेकर मगधदेश को चल पडे। पर्वत के निकट पहुँचते ही राजा श्रेणिक कीससैन्य भेट हुई। राजा ने जम्बूस्वामीसहित सबका स्वागत किया। विलासवती कन्या का राजा से विवाह कर दिया गया। मृगाक व रत्नशेखर मे मैत्री हो गई। सब लोग अपने-अपने निवासो को लौट गए। श्रेणिक राजा भी राजगृह की ओर चल पडे। नगर के बाहर उपवन मे सुधर्म नामक मुनि ५०० मुनियो के साथ विराजमान थे। राजा ने सभी के साथ मुनि की वदना की। जम्बूकुमार ने प्रणाम किया।

सुधर्म मुनि को देखते ही जम्बूस्वामी का उनके प्रति स्नेह उमड पडा। अत इसका कारण उन्होने मुनि से पूछा। सुधर्म मुनि ने भवदत्त-भवदेव के जन्म से लेकर दोनो के ५ भवो का वर्णन किया। उन्होने बताया कि जम्बू पहले भवदेव था और मुनि स्वय भवदत्त। इसके बाद दोनो स्वर्ग मे देव हुए। वहा से विद्युन्माली देव के रूप से च्युत होकर जम्बूस्वामी के रूप मे आये और मुनि स्वय मगधदेश के सवाहन नगर के राजा के सुधर्म नामक पुत्र हुए। इस प्रकार मुनि ने कहा कि राजा सुप्रतिष्ठ एक दिन भगवान् के समवसरण मे गए और दीक्षित हो गए। मैने भी पिता का अनुगमन किया। पिता भगवान् के चतुर्थ गणधर और मै पाचवा गणधर हुआ। वही मै ससघ यहाँ आया हूँ। तुम्हारी चार देवियो ने भी चार श्रेष्ठियो के यहाँ चार सुन्दरी कन्याओ के रूप मे जन्म लिया है। आज से ठीक दसवे दिन तुम्हारा उनसे परिणय हो जायेगा। यह सब सुनकर जम्बूस्वामी को वैराग्य हो गया। उन्होने दीक्षा की अनुमति मागी। माता-पिता एव चारो कन्याओ के पिताओ के अनुरोध पर जम्बूस्वामी ने यह स्वीकार कर लिया कि वे एक दिन के लिए विवाह

वहा भूत-पिशाचो ने घोर उपसर्ग किए जिन्हे मुनि श्री विद्युच्चर के अतिरिक्त अन्य कोई सहन नही कर सके। अन्य मुनि ध्यान छोडकर भाग गए।

उपसर्ग मे कोई कमी नही आई परन्तु मुनि विद्युच्चर बारह भावनाओ के स्मरण के साथ ध्यान मे तल्लीन बने रहे। इस प्रकार समाधिमरण के बाद वे सर्वार्थसिद्धि मे पहुँचे। वहाँ वे अपनी आयु पूरी करके मनुष्यजन्म लेगे और उसी जन्म से मोक्ष जायेगे।

### करकडुचरिउ

करकडुचरिउ[1] ११वी शताब्दी के मध्यभाग की रचना मानी गई है। इसके रचयिता मुनि कनकामर है। ग्रन्थ मे दस परिच्छेद है जिनमे करकडु महाराज का चरित्र-वर्णन किया गया है। कथा का सक्षेप इस प्रकार है

ग्रथारम्भ मे कवि कामदेव का विनाश करने वाले परमात्मपद मे लीन जिनेन्द्रदेव के चरणो का स्मरण करता है। तदनन्तर सरस्वती देवी को मन मे धारण करके लोगो के कानो को सुहावने लगने वाले करकडु राजा के चरित्र का वर्णन करता है। जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे अगदेश की चम्पा नामक रमणीक नगरी मे शत्रुओ का नाश करने वाले पराक्रमी एव दानी धाडीवाहन नाम के राजा थे। एक दिन राजा धाडीवाहन ने कुसुमपुर नामक स्थान को गमन किया। वहाँ एक माली द्वारा पोषित सुन्दर कन्या को देख राजा काम से पीडित हो गए। कुसुमदत्त नामक माली से राजा को ज्ञात हुआ कि उसने उस कन्या को नदी मे बहती हुई पिटारी से प्राप्त किया था। राजा ने पेटी मे रखी स्वर्णमयी अगुली की मोहर के अक्षरो से ज्ञात किया कि कन्या कौशाम्बीनरेश वसुपाल की पद्मावती नाम की कन्या है। राजपुत्री होने से राजा ने उससे परिणय कर लिया।

राजा माली को बहुत-सा द्रव्य देकर रानी के साथ अपने नगर वापिस लौट आये। एक दिन रानी ने स्वप्न मे एक मस्त हाथी देखा।

---

१ डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित, कारजा जैन सिरीज, १९३५ और द्वि० सस्करण भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६४

एक बार श्मशान मे यशोभद्र और वीरभद्र मुनीश्वर आये। उनके सघ मे से एक ने एक नरकपाल की आँखो और मुख से बाँस का विटप निकलते देखा। इस आश्चर्य का कारण उन्होने मुनि से पूछा। मुनि ने बताया कि ये थोडे से बाँस जिसके हाथ चढ जायेंगे वह समस्त पृथ्वी का राजा होगा। किसी प्रकार वे सब बाँस करकडु के हाथ लग गए। मातग ने करकडु को नाना विद्याए सिखलाईं। मातग करकडु को विद्यावान् की सगति का उपदेश देता है। उसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट करता है। मूर्ख-सगति का कुफल एव नीच-सगति की कहानी बताता है। उच्च-पुरुष की कहानी बताता है। इस प्रकार करकडु को मातग कुछ न कुछ सिखलाता रहता है। करकडु भी हर समय खेचर मातग के पास रहता है। इधर दन्तीपुर के राजा की मृत्यु हो जाती है। कोई राजकुमार न होने के कारण मन्त्री ने एक हाथी को पूजकर उसे जल से भरा घडा देकर यह निश्चय किया कि यह हाथी जिस किसी का इस जल से अभिषेक करेगा उसी को राज्य सौंप दिया जायेगा। हाथी ने श्मशान भूमि मे एक काम-देव स्वरूप राजकुमार को देखा और उसी पर घडे का जल छोड दिया। लोग उसे मातगपुत्र समझ रहे थे। विद्याधर की सारी विद्याए लौट आईं और तभी उसने सबको करकडु के राजकुमार होने की बात बताई। करकडु इस प्रकार राज्य पर आसीन हुआ।

एक दिन करकडु नगर मे भ्रमण कर रहा था तो उसने एक देशा-तर से आये हुए पटधारी को देखा। उससे करकडु ने पट लेकर देखा तो वह मुग्ध-सा देखता रहा। पूछने पर पटधारी ने बताया कि 'सोरठ देश के गिरनगर नामक नगर के राजा यमराज अजयवर्मा की अतीव सुन्दर कन्या मदनावली का जन्म हुआ। अवस्था-प्राप्त कन्या ने खेचरो से करकडु की कीर्ति के गीत सुने और वह मदनपीडित हो गई। अत यह चित्रपट उसी का मै लिए घूम रहा हूँ। जो इसे देखकर मोहित हो वही उसका वर होगा। आप मेरी बात मानकर उसे ग्रहण करें।' करकडु ने बात स्वीकार कर ली और मदनावली को विवाह लाये। माता आशीर्वाद दे रही थी कि चम्पाधीश का सदेश पहुँचा। चम्पाधीश और करकडु की सेनाओ मे घमासान युद्ध हुआ। युद्ध मे करकडु ने खेचरी विद्या छोडी। जब उसकी विद्या का हरण कर लिया गया तो उसने धनुष हाथ मे लिया। युद्ध मे चम्पाधिप का मान दलित हुआ। समरा-

देश के पूदी पर्वत पर जिनमदिर मे एक सुन्दर जिनप्रतिमा देखी। वे वैसी मूर्ति अपने यहा बनवाने के ध्येय से उस मूर्ति को उठाकर चले। तेरापुर पहुँचने पर वे पर्वत पर मूर्ति को रखकर जिनमदिर के दर्शन को चले गए। लौटकर वे उस मूर्ति को उठाने लगे तो वह उनसे नही उठी। उन लोगो ने मुनि के उपदेश से मूर्ति को वही छोडा और स्वय वैराग्य ले लिया। इनमे से एक भाई मरकर स्वर्ग गया और दूसरा मायाचारी होने के कारण हाथी बना। स्वर्गवासी भाई ने अपने भाई को आकर जातिस्मरण कराया जिससे वह उक्त वामी की पूजा करने आता था। फिर विद्याधर ने करकडु को एक दूसरी गुफा बनवाने की सलाह दी। करकडु ने वहा दो गुफाए और बनवाई। इसके बाद करकडु के साथ एक दु खद घटना हुई कि उसकी रानी मदनावली को कोई विद्याधर हाथी के रूप मे आकर हरण कर ले गया। करकडु को शोकसन्तप्त देखकर पूर्व जन्म के सयोगो विद्याधर ने उसे समझाया कि उसे मदनावली अवश्य मिल जायेगी। इसके साथ ही नरवाहनदत्त का आख्यान भी करकडु को सुनाया। इसके बाद करकडु को विद्याधर की बातो से समाधान हो गया और वे आगे बढे।

करकडु को अनेक शुभ शकुन हुए। खेचर ने शकुनो का फल बताया। करकडु बीच-बीच मे रुकता हुआ सिंहलद्वीप पहुँचा। सिंहलनरेश ने करकडु का स्वागत किया। जब करकडु को सिंहलनरेश ने अपनी पुत्री रतिवेगा को दिखाया तो रतिवेगा करकडु को देखते ही मुग्ध हो गई। पिता ने स्थिति समझकर उसका विवाह करकडु से कर दिया। वह अपने दहेज और रतिवेगा के साथ समुद्र मार्ग से स्वदेश रवाना हुआ। समुद्र मे एक भीमकाय मच्छ ने उनकी नौका पर आक्रमण किया। मच्छ को देखकर करकडु मल्ल-गाठ बाध और शस्त्र से समुद्र मे कूद पडा। मच्छ को उसने मार डाला परन्तु एक विद्याधर की पुत्री ने उसका हरण कर लिया। रतिवेगा विलाप करने लगी। मन्त्री आदि ने नौकाओ के बेडे को किनारे लगाया। रतिवेगा ने बहुत पूजा-पाठ किया। पद्मावती देवी प्रकट हुई और रतिवेगा को उसके पति मिल जाने की बात कही।

रतिवेगा ने धैर्य धारण करके देवी से पूछा कि कोई गया हुआ व्यक्ति लौटकर कभी आता है? देवी ने जिन भगवान् के भक्त अरिदमन का

उसे अपना मन्तव्य वताया। राजा ने उसे मुनि को पुष्प अर्पित करने को कहा। मुनि के पास जाने पर मुनि ने उसे जिनेन्द्र भगवान् को फूल चढाने को कहा। ग्वाल ने भगवान् जिनेन्द्र का पूजन किया अत उसे सुन्दर रूप मिला और चूँकि कमल चढाते समय हाथ मे कीचड लगा था अत उसके हाथ मे कडु हुआ।

दूसरे प्रश्न के उत्तर मे मुनि महाराज ने वताया कि पद्मावती पूर्व जन्म मे श्रावस्ती के सेठ की स्त्री थी। उसके व्यभिचारी होने के कारण सेठ ने वैराग्य ले लिया और पुन जन्म लेकर चम्पा नगरी का धाडीवाहन राजा वना। जिस ब्राह्मण के साथ सेठ की पत्नी ने व्यभिचार किया था वह मरकर हाथी हुआ। सेठानी मरकर पुन स्त्री हुई। उसे पतिवियोग हुआ। अन्त मे वह अपनी पुत्री के प्रयत्न से धर्म-ध्यानपूर्वक मरकर कौशाम्वी नरेश वसुपाल के यहाँ उत्पन्न हुई। राज परिवार मे इसका अशुभ जन्म जानकर उसे मजूषा मे वन्द करके यमुना नदी मे वहा दिया। एक माली ने जल से निकालकर उसका पालन-पोषण किया। पूर्व कर्मानुवन्ध से धाडीवाहन राजा से उसका विवाह हुआ। हाथी द्वारा हरण अथवा अन्य ऐसे ही कष्टो से पीडित पद्मावती करकडु जैसे महान् व्यक्ति की माँ थी।

तीसरे प्रश्न मे मुनिराज जी ने कहा कि पूर्वजन्म मे करकडु के पास एक सुआ था। सुआ चतुर था पर उसके ऊपर सर्प ने धावा वोल दिया तो करकडु ने उसकी रक्षा की और णमोकार-मन्त्र उसे दिया। उस सर्प को भी णमोकार-मत्र मरते समय मिल गया था। इतने मात्र से उसे विद्याधर का जन्म मिल गया। पूर्वभव का वैर होने के कारण उसने मदनावली का हरण किया। मुनि के इन सब उत्तरो को पाकर करकडु की वैराग्यभावना प्रवल हो उठी। वह अपने पुत्र वसुपाल को राज्य देकर मुनि हो गया। करकडु की मा भी अर्जिका (साध्वी) हो गई तथा उसकी पत्नियो ने भी वैसा ही किया। करकडु ने घोर तपश्चरण किया और केवलज्ञान तथा मोक्ष प्राप्त किया।

### सुअधदहमीकहा

जैनधर्म पालन करने वाला प्रत्येक गृहस्थ सुगन्धदशमी व्रत की कथा से अवगत होता है। उनके वार्षिक पर्व दशलक्षणधर्म पर भाद्रपद शुक्ला

को पार करती हुई चाण्डालिनी कन्या हुई। माता-पिता दोनो ही की मृत्यु हो गई। उसके शरीर की दुर्गन्ध एक योजन तक पहुँचती थी। इस दुर्गन्ध को चाण्डाल भी सहन नही कर सके और उन्होने उसे एक अटवी मे छोड दिया। वहा उदुम्बर फलो-पत्तो को खाकर वह जीवित थी।

एक दिन उधर से एक मुनिसघ विहार करते हुए निकला। एक मुनि ने आचार्य से पूछा कि इतनी दुर्गन्ध किस वस्तु की हो सकती है? आचार्य ने उस चाण्डाल-सुता का नाम लिया और बताया कि रानी श्रीमती ने मुनि सुदर्शन को क्रोधपूर्वक कडवे फलो का आहार दिया था अत इस योनि मे भटक रही है। पुन मुनि ने आचार्य से पूछा कि इस स्त्री का पाप कैसे दूर होगा? आचार्य ने जैनधर्म का उपदेश दिया और कहा कि इसका पालन करने पर प्राणीमात्र का कल्याण होता है। चाण्डाल-सुता ने भी उपदेश सुना और धर्म-ध्यानपूर्वक मर गई। इसके वाद वह उज्जैनी के एक गरीब ब्राह्मण की कुरूप कन्या हुई।

अब भी उसकी दुर्गन्ध एक कोस तक जाती थी। एक बार वहा के नन्दभवन मे मुनि सुदर्शन का आगमन हुआ। दुर्गन्धा भी मुनि के प्रवचन मे पहुँची। सभा मे उपस्थित राजा जयसेन ने मुनि से दुर्गन्धा के विपय मे पूछा। दुर्गन्धा के पाप को दूर करने का उपाय भी राजा ने मुनि से पूछा।, मुनि ने सुगन्धदशमी व्रत पालन करने का उपदेश देकर उसके पालन और उद्यापन की विधि बतलाई।

सौभाग्य से जिस दिन मुनि का उपदेश हुआ उस दिन सुगन्धदशमी ही थी। अतएव सभी ने व्रत का पालन किया एव जिनेन्द्रदेव का पूजन किया। दुर्गन्धा ने इस व्रत का पालन किया था अत वह मरकर सुगति मे गई। भगवान् महावीर ने राजा श्रेणिक को आगे की कथा इस प्रकार सुनाई रत्नपुर नगरी मे राजा कनकप्रभ अपनी पत्नी कनकमाला के साथ राज्य करते थे। उसी नगर मे एक सेठ जिनदत्त थे जिनकी पत्नी जिनदत्ता थी। इनके तिलकमती नाम की एक पुत्री थी जो रूपवती तथा गुणवती थी। सेठानी के मर जाने से सेठ ने दूसरा विवाह कर लिया। उससे तेजमती नामक कन्या उत्पन्न हुई। तिलकमती की सौतेली मा का व्यवहार वहुत कठोर था। सेठ राजा के आदेश से देशान्तर भ्रमण को चला गया तो विमाता का व्यवहार और भी कटु

अन्य अपभ्रंश-काव्यो की भांति ही कवि ने परमात्मा के चरणकमलो की वन्दना की है। तदुपरान्त अपने अल्पज्ञ होने की स्वीकारोक्ति है। भावनगर नामक पट्टन मे मकरध्वज नाम का राजा राज्य करता था। एक दिन राजा अपनी रति-प्रीति नामक दोनो पत्नियो सहित सभा-भवन मे वैठा था। वहा महामन्त्री, शल्य, गारव, कर्म, मिथ्यात्व, दोष, आश्रवादि योद्धा वैठे थे एव अन्य असख्य नरेश्वर उसकी सेवा मे जुटे हुए थे। राजा ने गर्व-गर्जन के साथ कहा कि त्रैलोक्य की महिलाए भी उसके वश मे है। कामदेव के इस गर्जन पर उसकी रति-प्रीति रानियो को हंसी आ गई। राजा ने कारण पूछा। रति ने वताया कि सिद्धि रमणी नाम की स्त्री उनके वश मे नही है। राजा को अत्यधिक विस्मय हुआ। उसने रति से कहा कि उचित-अनुचित मैं नही जानता। महिला महिलाओ का विश्वास करती है अत प्रियतमे! तुम जाओ और उस सिद्धि रमणी को लिवा लाओ। रति के अस्वीकार करने पर काम ने उसे वुरा-भला कहा। येन-केन-प्रकारेण रति ने दूती वनना स्वीकार किया। वह चल दी तो मार्ग मे उसे मोह मिल गया और वह उसे कामदेव के पास लौटा लाया। मोह ने काम को समझाया कि रति को नही भेजना चाहिए अन्यथा उसे निर्वेद मार्ग मे ही नष्ट कर देगा। सिद्धि का विवाह तो जिनेन्द्रदेव से निश्चित होगा अतः उधर का तुम्हारा प्रयास निरर्थक है। इस पर कामदेव क्रुद्ध हो गया और अपने धनुष-वाण के साथ सिद्धि को प्राप्त करने के लिए निकल पडा।

मोह ने काम को सलाह दी कि आप युद्ध करने निकले है तो पहले शत्रु की शक्ति का तो पता लगा लीजिये। काम ने अपने पचवाण शस्त्र रख दिये और मोह से पूछा कि जिनेन्द्र का निवासस्थान कहाँ है? मोह ने पूरी कथा वतलाई कि जिनेन्द्र भी पहले भावनगर मे रहते थे और भोगासक्त थे। परन्तु ससार मे दुर्गति जानकर उन्होने घर-द्वार सव छोडकर चरित्रपुरी मे निवासस्थान वना लिया। वहाँ वे अकेले नही हैं अपितु पाँच महाव्रत, सात तत्त्व, दशविध धर्म, पाँच ज्ञान और सुध्यान, तप, चारित्र, क्षमा आदि सुभट उनके सहयोगी भी हैं। इस प्रकार मोह-मन्त्री ने काम को जिनेन्द्र के सम्वन्ध मे सव कुछ वताया। काम ने राग-द्वेष को वुलाकर जिनेन्द्र के पास दूतरूप मे भेजा। दूतो से जिनेन्द्र के

मदन ने सज्वलन से कहा कि चूहो की सेना कभी विल्ली के ऊपर चढी है ? सज्वलन लौट आया। काम ने अपने प्रधान सेनापति और मन्त्री मोह को वुलाया और कहा कि यदि मै जिनेन्द्र को आज नही जीत सका तो अग्नि मे जल जाऊँगा। मोह ने काम को विश्वास दिलाया कि समर मे काम का कौन सामना कर सकता है। आकाश मे इन्द्र आपसे भयभीत हैं, पाताल मे वरणेन्द्र कम्पित है। जिननाथ आकाश-पाताल अथवा गिरि पर छिपे वच नही सकता। हमलोग जिन को जीतकर, वाँधकर सप्तव्यसन की कोठरी मे डाल देगे।

मदन ने पुन शृंगार भाट को वुला भेजा। उसके आने पर मदन ने कहा कि तू जिनेन्द्र को युद्धभूमि मे लाकर मुझे दिखला दे तो तुझे वहुत पारितोपिक मिलेगा। शृगार भाट जिनेन्द्र के पास गया और उनमे कहा कि काम के पास असंख्य योद्धा है अत आप काम की सेवा स्वीकार कर सुख से रहे। सम्यक्त्व ने इतना सुनते ही शृगार को फटकारा कि मैं मिथ्यात्व का मुकावला करूगा। पाच इन्द्रियो को पाच महाव्रत जीत सकते है। ज्ञान मोह को, शुक्ल ध्यान १८ दोपो को, सात तत्त्व सातो भयो को, श्रुतज्ञान अज्ञान को, तप आश्रवकर्म को जीत सकेगा। जिनेन्द्र ने भाट से कहा कि यदि तू अपने काम को दिखला दे तो मै तुझे भूमि आदि दान दूगा। भाट ने कहा कि यदि तू मेरे पोछे-पीछे आए तो मै एक क्षण मे मदन को दिखला दूगा तथा उसके समोप सारग पर आक्रमण करने वाले सिह के समान मोह को भी दिखला दूगा। निर्वेद को यह सहन नही हुआ तो भाट का सीस मुडाकर, नाक काटकर उसे वाहर निकाल दिया।

मदन के पूछने पर भाट ने अपनी दुर्दशा का समाचार दिया। मदन वहुत उत्तेजित हुआ। वह वहा से समुद्र की भाति चल पडा। चलते समय मदनराज को सर्प की फुफकार, कौए की काव-काव सुनाई दी। गृद्ध ऊपर मडराने लगे, घडा फूट गया, पवन के प्रतिकूल चलने आदि जैसे अपशकुन हुए। मदन अपशकुनो से स्तव्ध रह गया। उधर से जिनेन्द्र का सैन्य-सचालन हुआ, उससे गिरिराज टलमला गया, समुद्र, शेपनाग आदि सभी विचलित हो गए। दोनो सेनाए आमने-सामने जुट गईं और युद्ध होने लगा।

आकर प्रार्थना की कि आपके चले जाने के बाद मकरध्वज चारित्रनगर का ध्वस कर देगा। यह सुनकर जिनेन्द्रदेव ने श्रुतलेख देकर वृपभसेन गणी को भेजा कि वह तपश्री और चारित्रनगर की भली प्रकार रक्षा करे।

अपभ्रंश कथाकाव्यो के कथानको के विवरणो से उन कथाकाव्यो की विशेपता और उनमे प्रयुक्त कथानकरूढियों पर तो प्रकाश पडता ही है, उनके लक्षणो के निर्धारण मे भी मदद मिलती है। इस विवेचन से प्राप्त निष्कर्प के आधार पर हम कह सकते है कि सस्कृत कथाकाव्यो और अपभ्रंश काव्यो मे कुछ मौलिक अन्तर है। मुख्य रूप से कथानकरूढियो के प्रयोग का अन्तर उल्लेखनीय है। सस्कृत ग्रन्थो मे कथानकरूढियो का प्रयोग न हुआ हो, ऐसा नही कहा जा सकता। परन्तु अपभ्रंश काव्यो मे कथानकरूढियो का प्रयोग खुलकर किया गया है। सस्कृत-अपभ्रंश कथाकाव्यो की वर्णन की परिपाटी मे भी शिल्पगत अन्तर प्रतीत होता है।

अधिकतर अपभ्रंश कथाए या तो लोककथाओ के आधार पर रची गईं या फिर उनमे लोक-उपादानो को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। लोकवार्ता के सदर्भ मे डा० सत्येन्द्र ने लिखा है—'यह एक जातिवोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अन्तर्गत पिछडी जातियो मे प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियो मे असस्कृत समुदायो मे अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावते आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड जगत् के सम्बन्ध मे मानव स्वभाव तथा मनुष्य-कृत पदार्थों के सम्बन्ध मे भूत-प्रेतो की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यो के सम्बन्ध मे जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध मे आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र मे आते है। और भी, इसमे विवाह, उत्तराधिकार, वाल्यकाल तथा प्रौढ जीवन के रीति-रिवाज और अनुष्ठान सम्मिलित है।'[1] वास्तव मे जो कथाएँ लोक-कथाओ की पृष्ठभूमि पर खडी की जाती है उनमे लोक-सस्कृति की छाप रहती है। अत वे तत्कालीन समाज की सामाजिक एव सास्कृतिक स्थिति को स्पष्ट करती है। सभवत इसीलिए डा० नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते हैं कि 'लोक-कथाएँ मानव जाति की आदिम परम्पराओ, प्रथाओ और उसके विभिन्न प्रकार के विश्वासो का वास्तविक प्रति-

१ डा० सत्येन्द्र, व्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ० ४.

अध्याय ६

# हिन्दी प्रेमाख्यानकों और अपभ्रंश कथाकाव्यों के शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन

## सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

यों तो आठवीं शती से लेकर सोलहवीं शती तक अपभ्रंश ग्रन्थों का प्रणयन होता रहा किन्तु अपभ्रंश साहित्य का समृद्धतम युग नवीं शती से तेरहवीं शती तक माना गया है।[1] ऐतिहासिक दृष्टि से यह राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। किसी भी भाषा का साहित्य अपने युग की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों से अपने को अछूता नहीं रख सकता। यही कारण है कि तत्कालीन युग की प्रवृत्तियों की जानकारी के लिए हम उस युग के साहित्य की छानबीन करते हैं। इतिहासकारों ने गुप्तकाल को 'स्वर्णयुग' की संज्ञा दी है। गुप्तकाल की विशेषताओं पर विचार करते हुए ए० सी० चटर्जी ने लिखा है कि गुप्तकाल कला एवं साहित्य की महान् उन्नति का समय था और उस समय में शासन समुन्नत तथा सुव्यवस्थित था।[2] उस समय भारतीय संस्कृति का प्रचार सुदूर पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में भलीभांति होने लगा था। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० अल्तेकर लिखते हैं कि 'उस समय के हिन्दू दर्शन के नवीन एवं दृढ़ प्रतिमानों का विकास करने में उतने ही सफल थे जितने कि समुद्री मालवाहक पोतों का

---

1 डा० हरिवंश कोछड़, अपभ्रंश-साहित्य, पृ० ३८

2 Gupta period was a time of great activity in art, literature and the empire was prosperous and well governed
—सतीशचन्द्र अग्रवाल, भारतीय इतिहास, इलाहाबाद, पृ० १३० से उद्धृत.

निर्माण करने में।'[1] यही कारण है कि इस काल की तुलना विश्व के पेरिक्लिज आगस्टन तथा एलिजाबेथन युग से की गई है।

**राजनैतिक स्थिति**

ईसा की छठी शती आते-आते गुप्त साम्राज्य की रीढ़ टूट गयी और वह छिन्न-भिन्न हो गया। फिर भी मगध पर गुप्तों का ही राज्य रहा। सातवीं शती के आरम्भिक समय में प्रभाकरवर्धन ने उत्तरी भारत में अपनी शक्ति बढ़ाई। इसके पुत्र हर्षवर्धन ने पुनः उत्तर भारत के विघटित राज्य को सगठित किया और थानेश्वर तथा कन्नौज को भी जीत लिया। बाणभट्ट के हर्षचरित में आसाम प्रदेश के भास्करवर्मन और हर्ष की मैत्री का उल्लेख मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हर्ष ने साम्राज्य-विस्तार किया। परन्तु भारतेश्वर बनने का उसका स्वप्न पुलकेशी द्वितीय ने तोड़ दिया और दक्षिणापथ पर उसका अधिकार न हो सका। यद्यपि भारत की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में दिनोदिन अस्थिरता की स्थिति आती जा रही थी तथापि हर्ष ने अपने शासन में स्थितियों में सुधार किया और उन्हें स्थिरता प्रदान की। इसका विवरण ह्वेनसांग के भारत-यात्रा के वृत्तान्तों में मिल जाता है। ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी के लगभग सभी भारतीय राज्यों का उल्लेख किया है। वह यहाँ के शासकों से मिला भी था। हर्ष की शासन-व्यवस्था का जो परिचय उसने दिया है उसे प्रकारान्तर से भारत की मूल राजनीतिक स्थिति का भी दस्तावेज कहा जा सकता है। वह लिखता है कि 'शासन-व्यवस्था उदार सिद्धान्तों पर आधारित है। कार्यकारिणी परिषद् साधारण है। लोगों से जबर्दस्ती कार्य नहीं लिया जाता। राज्य-कर भी साधारण ही है। व्यापारी स्वतन्त्र रूप से अपना माल बाहर ले जाते और ले आते हैं।'[2] हर्ष के समय की धार्मिक

---

1 The Hindus of that age were as successful in evolving new and bold systems of philosophy as in building large and steady vessels to carry goods over sea —वही, पृ० १३८

2 As the administration of the government is founded on benign principles, the executive is simple People are not subject to forced labour In this way taxes on people are light The merchants who engage in commerce come and go in carrying out their transaction —वही, पृ० १४८

अवस्था का पता हर्ष की छठी परिषद से लगता है जिसका उल्लेख ह्वेनसाग के जीवन-चरित मे किया गया है। हर्ष प्रत्येक वर्ष प्रयाग मे एक धार्मिक परिषद करता था जिसमे वह प्रत्येक सम्प्रदाय के धार्मिको को दान दिया करता था। छठी परिषद के प्रथम दिवस हर्ष ने बुद्ध भगवान् की प्रतिमा प्रतिष्ठित की और विभिन्न प्रकार के रत्न एवं वस्त्रादि वितरित किये। दूसरे दिन उन्होंने सूर्यदेव की मूर्ति स्थापित की और दान दिया। तीसरे दिन ईश्वरदेव की मूर्ति स्थापित की और उपहार वितरित किये। चौथे दिन १०,००० बौद्ध भिक्षुओ को बहुमूल्य उपहार भेट किये। इस प्रकार साधुओ-भिक्षुओ के अतिरिक्त दीन-दुखियो को महीनो तक दान बाँटा गया। इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शासन की ओर से सभी धर्मो का समान आदर था। साथ ही बौद्ध धर्म के प्रभाव की बात भी स्पष्ट हो जाती है।

तत्कालीन सामाजिक स्थिति के विषय मे ह्वेनसाग के विवरण से ज्ञात होता है कि परम्परागत जाति-विभेद के चार वर्ग थे। ब्राह्मण सर्वाधिक पवित्र और पूज्य माने जाते थे। ब्राह्मणो के नाम के अन्त मे 'शर्मा' लगा रहता था। क्षत्रियो को भी उचित आदर प्राप्त था और वे युद्धप्रिय थे। हर्ष के समय वैश्यो की स्थिति काफी सुदृढ थी। उन्होंने कृषि को छोडकर व्यापार अपना लिया था। शूद्रो की दशा बहुत बिगडी हुई थी। इस जातिगत विभाजन के होते हुए भी समाज का नैतिक स्तर ऊचा था और शिक्षणसस्थाए भारतीय सस्कृति के अध्ययन-अध्यापन का कार्य करती थी।

आठवी शताब्दी मे भारत पर विदेशी आक्रमण प्रारम्भ हो गए। भारतवासियो के लिए यह नई बात तो नही थी चूकि छठी शताब्दी मे भारत हूणो को परास्त कर चुका था। परन्तु ७१० ई० मे अरबो ने भारतीय प्रदेश सिन्ध पर विजय प्राप्त कर ली। अरबो ने सिन्ध से आगे बढने की जीतोड कोशिश की किन्तु उन्हे सफलता नही मिली। फिर भी आठवी शताब्दी के मध्य तक अरब सौराष्ट्र और भिन्नमाल राज्यो पर आक्रमण करते रहे। अन्तत अरबो ने भारत मे प्रवेश पा लिया। इस समय भारतीय और अरबी सस्कृतियो का मिलन हुआ। सास्कृतिक आदान-प्रदान की भूमिका मे अनेक भारतीय विद्वान् अरब गये और अरब से अनेक विद्वान् अध्ययन के लिए भारत आये। सस्कृत

शक्ति-सगठन मे एकत्रित नही हो सके। परिणामस्वरूप फूट दिनो दिन बढती गई। राजनैतिक उथल-पुथल मे क्षत्रिय वशजो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रारम्भिक समय मे तो ये लोग शक्तिशाली और नीतिनिपुण साबित हुए। आगे चलकर जैसे-जैसे आपसी मतभेद बढते गए वैसे-वैसे शक्ति क्षीण होती गई और मुसलमानो के आक्रमणो का जवाब देने मे असमर्थ होकर विलासप्रिय जीवन विताने के आदी हो गए।

यो महमूद गजनवी का भारत पर प्रथम आक्रमण १००० ई० मे हुआ। फिर भी मुसलमानो को भारत पर पूरी तरह आधिपत्य जमाने मे कई शताब्दिया लगी थी। परन्तु वे निरन्तर प्रयत्नशील रहे। १२वी शताब्दी मे पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गौरी से टक्कर ली। परन्तु क्षत्रियो को आपसी फूट के कारण कन्नोज के राजा जयचन्द ने पृथ्वीराज का साथ नही दिया। अत पृथ्वीराज को अन्तत हार खानी पडी और दिल्ली गौरी के हाथ पहुँच गई। धीरे-धीरे उसने मध्यभारत को भी हस्तगत कर लिया। इन्ही सब परिस्थितियो मे भारत यवनो के अधीन हुआ। अस्तु।

**भाषागत स्थिति**

आक्रमणो और राजनीतिक उथल पुथल के समय भी साहित्यिक रचनाए होती रही। इनकी भापा के सम्बन्ध मे डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है कि 'तुर्की विजय के पहले भारतीय चालू या कथ्य बोलियो मे सबसे अधिक प्रचलित यही शौरसेनी अपभ्रश थी। उन दिनो पश्चिमी अपभ्रश का स्थान आजकल की हिन्दुस्थानी जैसा था। पश्चिमी अपभ्रश की उत्तराधिकारिणी कुछ अशो मे ब्रजभाषा हुई। मुसलमान आक्रमणकारियो के साथ पश्चिमी अपभ्रश की उत्तराधिकारिणी हिन्दी दक्षिण मे भी पहुँची।'[1]

१०वी–११वी शती के विदेशी आक्रमणो के समय साहित्यिक रचनाओ की भापा पश्चिमी अपभ्रश थी—इसका उल्लेख भी डा० चाटुर्ज्या ने किया है। वे लिखते है कि १०वी–११वी शती मे जब अपने मुसलमानी मजहब को साथ लिए हुए तुर्की तथा ईरानियो ने उत्तरी भारत पर आक्रमण करना एव आधिपत्य जमाना आरम्भ किया था, उस समय राजपूज राजवशो मे साहित्यिक रचनाओ की भापा, धार्मिक

१ डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, भारतीय आर्यभापा और हिन्दी, पृ० १८९

मोडा। वस्तुत. जैनधर्म क्षत्रियो एव वीरो ने ही स्वीकार किया था तथा उन्होने यवनो और शको को युद्ध मे लोहे के चने चवाये थे। परन्तु धीरे-धीरे यह व्यापारियो का धर्म वनकर रह गया और क्षत्रियोचित धर्म उनमे से जाते रहे। जिस अपभ्रंश की पृष्ठभूमि की चर्चा हम कर रहे है उसमे यह स्मरणीय है कि अपभ्रंश साहित्य के प्रणयन एव उसके सरक्षण का श्रेय सर्वाधिक जैनो को ही मिला है। इस काल मे जैनाचार्यों ने दर्शन, ज्योतिष, नाटक, काव्य, आयुर्वेद, व्याकरण आदि सभी विषयो पर सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश मे ग्रन्थ लिखे। जैनाचार्यो ने सदैव उस समय की प्रचलित भाषाओ को अपने ग्रन्थो का आधार वनाया। यही कारण था कि इस काल की अधिकाश रचनाए देशभाषा मे—अपभ्रंश मे—लिखी गईं। विशेषकर इसमे चरितादि कथाकाव्य अधिक लिखे गए।

अन्य धर्मो की भाति ही जैनधर्म को भी दिगम्बर, श्वेताम्बर दो शाखाए हो गईं। इसका प्रचार-प्रभाव समस्त भारत मे फैल गया। ११-१२वी शताब्दी मे पश्चिम भारत मे जैनधर्म, दक्षिण मे शैवधर्म, पूर्व तथा उत्तर मे वैष्णवधर्म विशेषरूप से फैला था।[1] अब इन सभी धर्मो के विचार-भेदो मे समाज मे अनेक परिवर्तन आये। विचार-भेदो से भारतीय समाज मे वैमनस्य का विष फैलने लगा। ये धार्मिक विवाद चलते रहे। ११वी शती के प्रारम्भ मे इस्लाम ने भारत मे जगह वना ली और भारत पर उसकी सस्कृति का प्रभाव पडने लगा। इस्लाम और हिन्दुओ मे धार्मिक कलह जारी रहा। इसी समय हिन्दू-मुस्लिम दोनो ही धर्मो के कुछ ऐसे सत हुए जिन्होने मतभेदो को मिटाने का प्रयत्न किया।

### सामाजिक स्थिति

इस काल की परिस्थितियो के कारण हिन्दुओ के वहुप्रचलित चार वर्ण अनेक जातियो-उपजातियो मे विभक्त हो गए। फलत सामाजिक व्यवस्था एव एकता की रीढ टूट गई। ऐसे अवसर का लाभ विदेशी आक्रमणकारी मुसलमानो ने उठाया। विघटित और असगठित जातिया मुसलमान आक्रमणकारियो का सामना करने मे असमर्थ रही। चारो

---

१ अपभ्रंश-साहित्य, पृ० २९

प्रकट की है।"[1] जैसा कि इस युग की राजनीतिक अवस्था का विवेचन करते समय हम देख चुके है कि अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। उनमे बहुत से कवियो को राज्याश्रय प्राप्त था। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि रजवाडो अथवा सामन्तो के लिए ही इस युग मे काव्य रचे गये अपितु साधारण जनता के लिए भी कथाकाव्यो की रचनाएँ हुई। प्रबन्ध के पाचवें अध्याय मे विवेचित लीलावईकहा, समराइच्चकहा, भविसयत्त-कहा, पउमसिरिचरिउ, जसहरचरिउ, णायकुमारचरिउ, जम्बूसामिचरिउ, करकडुचरिउ, सुअंधदहमीकहा, मयणपराजयचरिउ आदि रचनाएँ इसी काल ( ८वी से १५वी शती ) की अपभ्रंश रचनाएँ है।

### अपभ्रंश-हिन्दी प्रेमाख्यानको मे पूर्वापर सम्बन्ध

हिन्दीसाहित्य के इतिहासकारो ने काल-विभाजन की दृष्टि से १०५० ई० से हिन्दी साहित्य का आरम्भ स्वीकार किया है। जैसा कि हम देख चुके है, अपभ्रंश साहित्य की रचनाएँ ८वी शताब्दी से १६-१७वी शती तक होती रही। हिन्दी प्रेमाख्यानको मे सबसे पहला प्रेमाख्यान चन्दायन ( १३५० ई० ) उपलब्ध है। अपभ्रंश कथाकाव्यो एव हिन्दी प्रेमाख्यानको मे पूर्वापर क्रमिक सम्बन्ध है। इसका कारण यह है कि अपभ्रंश कथाकाव्यो के सर्जनकाल और हिन्दी प्रेमाख्यानको के रचना-काल के मध्य मे कोई अन्तराल नही है। कुछ समय तक हिन्दी प्रेमा-ख्यानक और अपभ्रंश कथाकाव्य समानान्तर रूप से भी लिखे जाते रहे। अपभ्रंश कथाकाव्यो एव हिन्दी प्रेमाख्यानकों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश कथाकाव्य हिन्दी प्रेमाख्यानको के ही पूर्व प्रच-लित शिल्प-विधान मे रचे गये—अर्थात् हिन्दी प्रेमाख्यानको का शिल्प अपभ्रंश कथाकाव्यो के शिल्प का ही ऐतिहासिक विकास है। उदाहरण के लिए इनके कथा-विन्यास, चरित्र, कथोद्देश्य, वस्तुवर्णन आदि का क्रमश तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है।

### कथा-विन्यास

कथा-विन्यास किसी कथाकाव्य को अच्छा-बुरा साबित करने की कसौटी है। यही कारण है कि एक श्रेष्ठ कथाकार अपनी रचना को पूर्वनियोजन के आधार पर विन्यस्त करता है। इस सदर्भ मे अपभ्रंश

---

१. प० राहुल साकृत्यायन, हिन्दी-काव्यधारा, १९५५, पृ० ४५

प्रकट की है।''[1] जैसा कि इस युग की राजनीतिक अवस्था का विवेचन करते समय हम देख चुके है कि अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। उनमे बहुत से कवियो को राज्याश्रय प्राप्त था। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि रजवाडो अथवा सामन्तो के लिए ही इस युग मे काव्य रचे गये अपितु साधारण जनता के लिए भी कथाकाव्यो की रचनाएँ हुईं। प्रबन्ध के पाचवे अध्याय मे विवेचित लीलावईकहा, समराइच्चकहा, भविसयत्त-कहा, पउमसिरिचरिउ, जसहरचरिउ, णायकुमारचरिउ, जम्बूसामिचरिउ, करकडुचरिउ, सुअधदहमीकहा, मयणपराजयचरिउ आदि रचनाएँ इसी काल ( ८वी से १५वी शती ) की अपभ्रंश रचनाएँ है।

### अपभ्रंश-हिन्दी प्रेमाख्यानको मे पूर्वापर सम्बन्ध

हिन्दीसाहित्य के इतिहासकारो ने काल-विभाजन की दृष्टि से १०५० ई० से हिन्दी साहित्य का आरम्भ स्वीकार किया है। जैसा कि हम देख चुके है, अपभ्रंश साहित्य की रचनाएँ ८वी शताब्दी से १६-१७वी शती तक होती रही। हिन्दी प्रेमाख्यानको मे सबसे पहला प्रेमाख्यान चन्दायन ( १३५० ई० ) उपलब्ध है। अपभ्रंश कथाकाव्यो एव हिन्दी प्रेमाख्यानको मे पूर्वापर क्रमिक सम्बन्ध है। इसका कारण यह है कि अपभ्रंश कथाकाव्यो के सर्जनकाल और हिन्दी प्रेमाख्यानको के रचना-काल के मध्य मे कोई अन्तराल नही है। कुछ समय तक हिन्दी प्रेमाख्यानक और अपभ्रंश कथाकाव्य समानान्तर रूप से भी लिखे जाते रहे। अपभ्रंश कथाकाव्यो एव हिन्दी प्रेमाख्यानकों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश कथाकाव्य हिन्दी प्रेमाख्यानको के ही पूर्व प्रच-लित शिल्प-विधान मे रचे गये—अर्थात् हिन्दी प्रेमाख्यानको का शिल्प अपभ्रंश कथाकाव्यो के शिल्प का ही ऐतिहासिक विकास है। उदाहरण के लिए इनके कथा-विन्यास, चरित्र, कथोद्देश्य, वस्तुवर्णन आदि का क्रमश तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है।

### कथा-विन्यास

कथा-विन्यास किसी कथाकाव्य को अच्छा-बुरा साबित करने की कसौटी है। यही कारण है कि एक श्रेष्ठ कथाकार अपनी रचना को पूर्वनियोजन के आधार पर विन्यस्त करता है। इस सदर्भ मे अपभ्रंश

---

१. प० राहुल साकृत्यायन, हिन्दी-काव्यधारा, १९५५, पृ० ४५

कथाकाव्यों के रचयिताओं का नामोल्लेख किया गया। कहना है अपभ्रंश कथाकारों ने संस्कृत के लक्षणकारों की मान्यताओं का भी ध्यान रखा। संस्कृत साहित्य के प्रमुख आचार्य रुद्रट ने कथा का जो लक्षण दिया है उसमें वे लिखते हैं—'रचयेत् कथाशरीरं पुरं वा पुरवर्णकप्रभृतीनि' अर्थात् कथा की रचना 'पुर' की तरह करनी चाहिये। रुद्रट के इस मत को या तो नजरन्दाज कर दिया गया अथवा जानकर भी लोगों ने इसे महत्त्व नहीं दिया है। इस प्रसंग का जो भी कारण रहा हो किन्तु तथ्य यह है कि रुद्रट के इस लक्षण को कथाओं के मूल्यांकन की दृष्टि से देखा जाये तो निःसन्देह यह प्रामाणिक होगा। अर्थात् कथा का पुर की तरह विन्यास होना है। पुरविन्यास और कथाविन्यास का प्रश्न विचारणीय है।[1]

## पुरविन्यास और कथाविन्यास

प्राचीन साहित्य मे 'पुर' शब्द नगर के अर्थ मे प्रयुक्त होता था। उदाहरणार्थ—तैत्तिरीयसहिता मे नगर शब्द का उल्लेख पुर के अर्थ मे ही हुआ है।[2] 'पुर' शब्द का उल्लेख तैत्तिरीयब्राह्मण[3], ऐतरेयब्राह्मण[4] और शतपथब्राह्मण[5] मे मिलता है। पिशेल के अनुसार प्राकार एव परिखा से परिवेष्ठित नगर 'पुर' कहलाता था।[6] उल्लिखित पुर के विन्यास के लिए विभिन्न ग्रन्थो मे नगर-निवेशन, नगर-स्थापन, नगर-विन्यास, नगर-विनिवेश, पुर-निवेशन, पुरस्थापन, नगर-करण और नगर-मापन जैसे अन्य शब्दो का प्रयोग किया गया है।[7] हिन्दी-विश्वकोश मे 'पुरनिवेश या नगरनियोजन नगरो, कस्बो और गावो के प्रसार का, विशेषकर उनमे भवन-निर्माण हेतु भूमि के और सचरण व्यवस्था के

---

१ देखिए—'श्रमण', नव०-दिस० अक, १९६७, पृ० ४७–४९ पर लेखक का लेख

२ नैतमृपि विदित्वा नगर प्रविशेत—तैत्तिरीयसहिता, १ २ १८ ३१ ४

३ तैत्तिरीयब्राह्मण, १.७ ७५

४ ऐतरेयब्राह्मण, १ २३ २.११.

५ शतपथब्राह्मण, ३ ४.४ ३

६ वेदिक इण्डेक्स, भाग १, पृ० ५३९

७. डा० हृदयनारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ० २३१

विकास का, नियोजन करने के लिये सामयिक गतिविधि' को कहा गया है।[1] भारतीय वास्तु वाड्मय मे विश्वकर्मीयशिल्प, मानसार, मयमत और समरागणसूत्रधार जैसे प्रतिष्ठित ग्रन्थो मे इस विषय पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है।[2] आदिपुराण मे नगर उसे कहा गया है जिसमे परिखा, गोपुर, अटारी और प्राकारमण्डित नाना प्रकार के भवन हो, जो जलाशय और उद्यान से युक्त हो। पानी निकालने के लिए नालिया भी जहाँ बनी हो।[3]

पुरविन्यास के लिए योग्य शिल्पियो द्वारा योजना प्रस्तुत कराई जाती थी। उसी पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार पुरविन्यास का कार्य पूर्ण किया जाता था। डा० उदयनारायण राय ने 'प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर-जीवन' नामक अपने शोध-प्रबन्ध मे पुरविन्यास सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण तथ्य उद्घाटित किए है। उनके अनुसार पुरविन्यास की सक्षिप्त योजना इस प्रकार कार्यान्वित होती थी

१. **भूपरीक्षा** किसी भी नगर के निर्माण के पूर्व भूमि का निर्धारण करना आवश्यक था। भूमि के चुनाव मे प्राचीन विशेषज्ञो के विचारो को महत्त्व दिया जाता था। अनेक ग्रन्थो मे नदियो के सगम पर अथवा नदियो के तट पर या पर्वत के पास पुर का बसाना उत्तम माना गया है।

२. **बलिकर्मविधान** भूमि का निर्धारण करने के बाद उसके शोधन का कार्य किया जाता था। भूमि-शुद्धिकरण के लिये पूजा चढाई जाती थी जिसे 'बलिकर्मविधान' की सज्ञा दी गई। एक प्रकार का भूमि पर अनुष्ठान होता था जिसके बाद भूमि शुद्ध मान ली जाती थी और सम्राट विभिन्न वस्तुएं दान करता था।

---

१ हिन्दी विश्व-कोश, भाग ७, पृ० २४३

२ वही

३ परिखागोपुराट्टालवप्राकारमण्डितम्।
नानाभवनविन्यास सोद्यान सजलाशयम्॥
पुरमेवविध शस्तमुचितोद्देशसुस्थितम्।
पूर्वोत्तरप्लवाम्भस्क प्रधानपुरुषोचितम्॥ —आदिपुराण, १६ १६९

९ हाट राजमार्गो के किनारे-किनारे हाटो का निर्माण किया जाता था। इन हाटो की सख्या नगरो के छोटे-वडे होने के हिसाव से होती थी।

१० पुरभूमि का वितरण · राजमार्गो के वाद राजप्रासाद, उच्चाधिकारियो के निवास-स्थान एव अन्य नागरिको तथा कर्मचारियो के भवनो के लिए भूमि का वितरण किया जाता था। और तव इन सवका निर्माणकार्य किया जाता था।

उक्त विधि से नगर-नियोजन होता था। नगर-सन्निवेश की विभिन्नता थो। नगरो का विभाजन राजवानी, पत्तन, द्रोणमुख, पुटभेदन, निगम, स्थानीय, खर्वट और खेट के रूप मे मिलता है।

आचार्य रुद्रट का 'पुर के समान कथाविन्याम' के होने का कथन पुरविन्याम और कथाविन्यास के तुलनात्मक अध्ययन से अधिक स्पष्ट हो सकेगा। पुरविन्यास के लिए पहले योजना वनाई जाती है। ठीक इसी तरह किसी कथा को रचना के पूर्व रचनाकार अवश्य ही अपनी कथा का प्रारूप अथवा विपय-प्रारूप निर्धारित करता है। पूर्व नियोजन के सम्वन्ध मे रचनाकार को रचना के पूर्व उसका नियोजन किसी-न-किसी रूप मे अनिवार्य होता है। इस प्रकार पूर्व नियोजन सम्वन्धो सिद्धान्त मे कथाविन्यास और पुरविन्यास मे समानता देखी जाती है।

द्वितीय वात पुरविन्यास मे भूमिपरीक्षा की आती है अर्थात् यह देखा जाता है कि किस स्थान पर नगर-नियोजन किया जाये जो प्रत्येक दृष्टि से उपयुक्त हो। इधर कथाविन्यास मे कथाकार प्रथम अपना 'प्लाट' कथानक खोजता है। वह अपने मनोनुकूल और युगानुरूप विषय चुनता हे। 'प्लाट' शब्द भूमिखड और कथावस्तु दोनो के लिए आज भी समान रूप से प्रयुक्त होता है। पुन पुरविन्यास की भूपरीक्षोपरान्त भूमि-शोधन का पूजा-कार्य किया जाता है जिससे निर्माणकार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो। कथा-विन्यास के अन्तर्गत मगलाचरण-स्तुति आदि इसी विधि के समान हैं। कथा की निर्विघ्न पूर्णता के लिए ही ऐमा किया जाता है।

पुरविन्यास मे नगर-चिह्न वना लिये जाते है। कथाविन्यास मे भी कथा को कई भागो मे विभक्त देखा जाता है। किस परिच्छेद, अश या

कथाकाव्य है तो उसमें मूलकथा नागकुमार को लेकर ही चलेगी। करकंडुचरिउ नाम है तो उसमे उसी व्यक्तित्व का चरित्रांकन मिलेगा। ठीक यही पद्धति हिन्दी प्रेमाख्यानको ने स्वीकार की और कथा के नायक या नायिका अथवा दोनो के नाम पर ही काव्य का नाम रखा। उदाहरणार्थ—मधुमालती, मृगावती, चन्दायन, माधवानल-कामकन्दला, छिताईवार्ता, कनकावली, पुहुपावती, लैला-मजनूं आदि।

### कथाकाव्यो के चरित्र

अपभ्रंश कथाकाव्यो मे अधिकांश रचनाएं चरितसंज्ञक ही हैं। उनमे चरितनायको के चरित्र को उत्तम कोटि का सिद्ध करने के लिए कथाकारो ने अपनी प्रतिभा का पूर्ण सदुपयोग किया है। सम्भवत इसका मूल कारण अपभ्रंश रचनाकारो की धार्मिक भावना रही है। चूंकि अपभ्रंश के कथाकाव्यो मे प्राय जैन शलाकापुरुषो मे से ही किसी के चरित को कथा का विषय बनाया गया है। दूसरी बात यह कि रचनाकार उत्कृष्ट कोटि के चरित्रो के माध्यम से समाज मे अच्छे चरित्रो के निर्माण की भी अपेक्षा रखता है। प्राय अपभ्रंश काव्यो मे चरित नायक अथवा प्रधान पात्र के अतिरिक्त अन्य प्रासंगिक पात्रो के चरित्र पर विशेष दृष्टि नही रखी गई। संस्कृत के काव्य अपभ्रंश काव्यो से चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भिन्न प्रारूप मे रचे गए। चरित्र-चित्रण की अपेक्षा संस्कृत काव्यो मे रस-अलंकारो का विशेष ध्यान रखा गया। हिन्दी प्रेमाख्यानको की चरित्र-चित्रण की पद्धति पर अपभ्रंश कथाकाव्यो का प्रभाव पडा।

अपभ्रंश काव्यो मे कुछ पात्र ऐतिहासिक और कुछ काल्पनिक चुने जाते रहे। ऐतिहासिक और काल्पनिक कथाओ का मिश्रण करके कथाओ का न्यास किया जाता था। इस परम्परा का भी हिन्दी प्रेमाख्यानको मे पालन किया गया। कौतूहलकृत लीलावतीकथा का नायक सालिवाहन ऐतिहासिक व्यक्ति है। कवि ने कथा की नायिका लीलावती को सिंहल की राजकुमारी के रूप मे अंकित किया है। हर्ष (सातवी शती) ने अपनी रत्नावली नाटिका मे रत्नावली को सिंहल की राजकुमारी बताया है।[1]

---

१ रत्नावली नाटिका, अंक ४

करकंडुचरिउ में करकंडु भी सिंहल की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह करता है। कहने का तात्पर्य यह कि उन दिनों सिंहल प्रदेश की स्त्रियों के सौन्दर्य की निराली कथाएं प्रचलित थीं। हिन्दी प्रेमाख्यानक पद्मावत का ऐतिहासिक नायक रत्नसेन भी सिंहल की पद्मिनी के वियोग में मारा-मारा फिरता है। सिंहल की राजकुमारियों को लेकर हिन्दी-प्रेमाख्यानकों में पूर्व अनेक रचनाएं हुई।

**चरित्रो की मुख्य विशेपता :**

नायको के चरित्र को ऊचा उठाने के लिए नायक को अतिशय पराक्रमी सिद्ध किया जाता है। जो काय कोई व्यक्ति कठिनाई से भी नही कर सकता उसे इन कथाओ का नायक निमेप मात्र मे कर डालता है। प्राय हो अपभ्रश कथानायको के चरित्र मे यह अभूतपूर्व प्रतिभा दिखाई पडती है। करकडुचरिउ मे करकडु सिहल से रतिवेगा के साथ समुद्री मार्ग से लौट रहा था तो एक भीमकाय मच्छ ने उनकी नौका पर आक्रमण किया। करकडु मल्ल-गाठ बाधकर समुद्र मे कूद पटा और मच्छ को मार डाला। इसो प्रकार णायकुमारचरिउ मे एक मदोन्मत्त हाथी को ( जो किसी के वश मे नही आ रहा था ) नागकुमार ने पलभर मे मार गिराया। यह सब नायक को पराक्रमी सिद्ध करने के लिए किया जाता था। यहो बात हिन्दी प्रेमाख्यानको के नायको के चरित्र मे देखने को मिल जायेगी। किसी मे नायक को राक्षस को परास्त करना पडता है तो किसी मे योगी वेश धारण कर भटकना पडता है। कहने का तात्पर्य यह कि अपभ्रश के काव्यो मे नायको के चरित्रोत्थान के लिए जो प्रक्रियाए अपनाई गई है ठीक वे ही अथवा उनसे मिलती-जुलती बातें हिन्दी प्रेमाख्यानको के पात्र-पात्राओ के चरित्र मे देखने को मिल जाती है।

अपभ्रश चरितनायको मे एक विशेपता और पाई जाती है वह यह कि वे एकाधिक नारियो से परिणय करते है। कही-कही वे कुमारियो द्वारा बाध्य कर दिये जाते है जिससे उन्हे परिणय के बाद हो मुक्ति मिलती है। जैसे करकडु ने समुद्र मे मच्छ को तो मार डाला परन्तु उसे एक विद्याधरी हरण करके ले गई। जब उसने उससे परिणय कर लिया तब करकडु उसको साथ लेकर रतिवेगा से मिल सका। इसी प्रकार विसयत्तकहा मे कथा का नायक प्रथम शादी एक सुनसान नगर मे

स्थित अतीव सुन्दर कन्या से करता है। पुन गजपुर के राजा की युद्ध मे सहायता करता है। विजयी होने पर राजा सुमित्रा नामक अपनी कन्या से भविष्यदत्त का विवाह कर देता है। णायकुमारचरिउ का नायक नागकुमार चौदह कुमारियो का विभिन्न स्थितियो मे वरण करता है। प्राय ही यह अपभ्रश काव्यो के नायको की चरित्रगत विशेषता है। इन सब मे नायक सब कुछ अपनी असाधारण शक्ति द्वारा ही प्राप्त करता है। हिन्दी प्रेमाख्यानको के नायको मे भी बहुविवाह की बात देखने मे आती है। दामोकृत लखमसेन-पद्मावती कथा का नायक दो विवाह करता है। मधुमालती कथा मे नृपति कवर कर्ण और पद्मावती की अन्तर कथा आती है, उसमे कर्ण को ६१ शादियां करते दिखाया गया है। इसी प्रकार रसरतन, चन्दायन आदि के नायको को भी एकाधिक रानिया थी। अपभ्रश कथाकाव्यो के नायको की भाति ही हिन्दी प्रेमाख्यानको मे भी नायको के चरित्र का विकास दिखाया जाता है।

**कथोद्देश्य**

कथोद्देश्य की दृष्टि से अपभ्रश एव हिन्दी प्रेमाख्यानको मे समानता दृष्टिगत होती है। सर्वालकारविभूषित राज्यकन्या की प्राप्ति सस्कृत कथाओ का ही उद्देश्य नही था बल्कि अपभ्रश और हिन्दी मे भी इसे एक महत्त्वपूर्ण कथोद्देश्य माना गया। हिन्दी कवियो की प्रेमकथाओ मे सिंहल की पद्मिनी का अनिर्वचनीय आकर्षण बार-बार चित्रित हुआ है। जायसी के पदमावत मे पद्मावती को सिंहल की राजकुमारी बताया गया है। सिंहल की राजकुमारियो को लेकर कथानक गढने की प्रथा रूढ हो चुकी थी। कौतूहलकृत लीलावईकहा, भविसयत्तकहा, करकडुचरिउ, जिनदत्तचरित आदि मे सिंहल की राजकुमारियो को लेकर कथाए मिलती है। अपभ्रश कथाकाव्यो एव हिन्दी प्रेमाख्यानको के कथानको मे भावसाम्य तो प्राय देखा जाता है। अपभ्रश प्रेमाख्यानको मे कन्याप्राप्ति के फल के अतिरिक्त कुछ और भी लक्ष्य है। अर्थात् काव्य की समाप्ति नायक को कन्याप्राप्ति कराने के बाद ही नही कर दी जाती। इस बात मे अपभ्रश के काव्यो ने सस्कृत लक्षणकारो की मान्यताओ का पालन नहीं किया। जैसा कि अपभ्रश कथाकारो पर आरोप किया जाता रहा है कि वे साम्प्रदायिक भावनाओ के वशीभूत थे और धर्मविशेष के प्रचार के लिए काव्य लिखते थे। किसी हद तक बात सच हो सकती है

परन्तु अपभ्रंश कथाओं में प्रेमाख्यानकों का होना सिद्ध है, साथ ही कन्याप्राप्ति का फलरूप भी विद्यमान है। मनुष्य के लिए इसके आगे भी कुछ करना रहता है, यह भारतीय दर्शन है। इसी भारतीय दर्शन के अनुसार उन काव्यों में नायक को सांसारिक भोग-सम्पदा दे लेने के बाद किसी मुनि के सदुपदेश से धर्म की मान्यताओं के अनुसार मोक्ष अथवा स्वर्गादि पारलौकिक गति प्रदान कराई जाती है। यही उनका कथोद्देश्य हो जाता है। संस्कृत कथाए प्राय उस भारत की उपज हैं जो विदेशी आक्रमणों से सुरक्षित समृद्धि और निश्चिन्तता में जी रहा था। अपभ्रंश और हिन्दी के प्रेमाख्यानों मे यदि इस लोक के सुख के अलावा कुछ और भी चित्रित हुआ तो इसे हम तत्कालीन परिवेश की बाध्यता तथा धार्मिक आन्दोलनों का परिणाम मान सकते है। हिन्दी प्रेमाख्यानकों पर इस प्रवृत्ति का पूरा प्रभाव पडा। सूफी काव्य तो आध्यात्मिक उद्देश्य से लिखे ही गए, सस्कृत परम्परा का अनुसरण करने वाले हिन्दी प्रेमाख्यानों मे भी जीवन के चतुर्थ पुरुषार्थ 'मोक्ष' की कम चर्चा नही हुई। पुहकरकृत रसरतन मे कथा का उद्देश्य कन्याफल के अतिरिक्त कुछ और भी दिखलाया गया है। पुहकर कहते हैं

पुहकर वेद पुरान मिल, कीनो यही विचार।
यहि ससार असार मे, राम नाम है सार॥ ३५०॥

वैरागर वैराग वपु, हीरा हित हरिनाम।
प्रीत जोत जिय जगमगै, हरै त्रिविध तन तापु॥ ३५१॥

सत सगति सत बुद्धि उर, विष घरनी सग लाय।
ज्ञान वान प्रस्थान करि, तजै विषै सुखपाय॥ ३५२॥

तातें तत्व लहै मुकर, सूझ देख मन माहिं।
कोई तेरे काम नहि, तू काहू को नाहिं॥ ३५३॥

परधन पर दारा रहित, पर पीरहिं मन लाय।
काम क्रोध मद लोभ तज, विजय निसान बजाय॥ ३५४॥

पुहकर भव सागर गरुव, निपट गहिर गभीर।
राम नाम नौका चढे, हरिजन लागैं तीर॥ ३५५॥

रसरतन के रचयिता ने विशुद्ध एव उत्कृष्ट कोटि के भारतीय प्रेमाख्यान की रचना की। अन्त मे उन्होने सूरसेन ( कथानायक ) को

सासारिक सुखो से वैराग्योत्पादन के लिए वैरागर खड ( वैराग्य खड ) की ही रचना कर दी। इसका कारण यही था कि वे कथा का अन्तिम लक्ष्य कन्याप्राप्ति ही नही मानते थे। अतएव कथानायक सूरसेन को जब यह पता चलता है कि

जगत अनित्य कर्म ही नीरा।
केवल विमल नामु हरि हीरा॥
कामिनि कनक और हय हाथी।
ये तो नही सग के साथी॥ ३२९॥

सुकृत सग और नहि कोई।
क्यो नहि भजन हरी तिहिं सोई॥
ममता चित्त करौ जिन कोई।
है प्रभु और न दूजौ होई॥ ३३०॥

मुक्ति सग है और न कोई।
क्यो न भजे हरि से हितु होई॥
कलि प्रतिपाल बाल सुत दारा।
मनो ग्वाल गोचारन हारा॥ ३३४॥

तभी सूरसेन को वैराग्य उत्पन्न हो जाता है

सुनत सूर उपज्यौ वैरागा।
विष्णु भक्ति बाढौ अनुरागा॥
सब सपति तह त्रिन कर जानी।
विष्णुभक्ति निश्चय उर आनी॥

इसके बाद वे अपना सारा राज्य पुत्रो को सौपकर काशीवास करने के लिए चले जाते हैं

सुदर सूर सुबुद्धि उदारा। गोरख ज्ञान सैनिक अवतारा॥
काशीवास कियो तिन जाई। इतनी कथा सुकवि गुन गाई॥३४३॥

साराश यह कि कथोद्देश्य की दृष्टि से भी यह नही कहा जा सकता कि हिन्दी प्रेमाख्यानक अपभ्रंश कथाकाव्यो के प्रभाव से मुक्त रहे।

### वस्तु-वर्णन

वस्तु-वर्णन काव्य का प्रधान अंग है। कथानक की शोभा वस्तु-वर्णन के सफल चित्रण पर निर्भर करती है। वस्तु-वर्णन के अन्तर्गत आने वाले तत्त्वों के विषय में प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में विचार किया जा चुका है। यहाँ तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जा रहा है। कथा में प्रमुख स्थलों अथवा नगरविशेष का वर्णन आवश्यक होता है। अपभ्रंश काव्यों की इस परम्परा का हिन्दी प्रेमाख्यानकों ने अनुकरण किया।

### नगर-वर्णन

अपभ्रंश कथाकाव्य करकंडुचरिउ में चम्पानगरी का वर्णन इस प्रकार किया गया है

तहि देसि रवण्णइ धणकणपुण्णइअत्थि णयरि सुमणोहरिय।
जणणयणपियारी महियलि सारी चपा णामइ गुणभरिय॥

जा वेढिय परिहाजलभरेण।
ण मेइणि रेहइ सायरेण॥
उत्तुगधवलकउसीसएहि ।
ण सग्गु छिवइ वाहूसएहि॥

अर्थात् उस रमणीक देश मे धन-धान्य से पूर्ण आकर्षक चम्पानगरी थी, जो लोगो की आँखो को प्रिय लगती थी और इस महीतल पर सभी गुणो से युक्त थी। वह चारो ओर से जल-परिखा से घिरी हुई थी तथा ऐसी लगती थी मानो पृथ्वी समुद्र से घिरी हो। गगनचुम्बी धवल शिखर आकाश को छूती हुई सैकडो बाहुओ के समान लगते थे और जहाँ जैन मन्दिर उत्तु ग खडे शोभित हो रहे थे मानो निर्मल अभग पुण्य-पुज हो। उन मदिरो पर रेशमी वस्त्रो की झडियाँ लहलहा रही थी। ऐसा लगता था मानो आकाश मे श्वेत सर्प लहरा रहे हो

जिण मदिर रेहहि जाहि तुग।
णं पुण्णपुज णिम्मल अहग॥
कोसेयपडायउ घरि लुलति।
ण सेयसप्प णहि सलवलति॥१.३-४.

पुहकरकृत रसरतन मे भी चपावती नगरी का वर्णन आया है। वहुत कुछ विशेपताएँ और स्थिति करकडुचरिउ की चपानगरी से मिलती-जुलती है। रसरतन की चपावती नगरी की भौगोलिक स्थिति इस प्रकार है

गुज्जर नगर उदधि के तीरा। अचर्वाहि कूप सरोवर नीरा ॥
नगर अनूप रम्य सुषदाई। मनो अवनि अमरावति आई ॥
—चपा० खड, ८, पृ० १३२

करकडुचरिउ की चंपानगरी सुमनोहर है और रसरतन की चपा-नगरी भी चित्त को हरने वाली है

नागर चतुर सुजान नगर भाव देष्यो तहा।
मन जान्यौ उन्मान चित्त हरन चपावती ॥
—वही, २०, पृ० १४०.

यह नगरी भी अनेक गुणो से युक्त है

उपवन सुदर सुखद अनूपा। गुन गाहक सोभित सव कूपा ॥
—वही, ९१

वहाँ जिनमदिर की शोभा का वर्णन है तो रसरतन मे शकरजी के मन्दिर की

थभ सौपन्न मुत्ती झलक्कै। देषि गधर्पं मुनि देव थक्कै ॥
उच्च उत्तग सोभा न आवै। सिषिर कैलास उपमान पावै ॥
नमडियौ नाद गंधार सोहै। हरत षल पास जव नैन जोहै ॥
—वही, १५६-५७, पृ० १४५

द्वीप-वर्णन

करकडुचरिउ के सिंहल-द्वीपवर्णन को तुलना जायसीकृत पदमावत मे वर्णित सिहल-द्वीपवर्णन से की जा सकती है। वर्णन परिपाटी एक ही है परन्तु विस्तार मे अन्तर आ जाना स्वाभाविक है। करकडुचरिउ मे सिहल-द्वीपवर्णन इस प्रकार है

ता एक्कहि दिणि करकडएण।
पुणु दिण्णु पयाणउ तुरियएण ॥
गउ सिंहलदीवहो णिवसमाणु।

पुहकरकृत रसरतन में भी चंपावती नगरी का वर्णन आया है। बहुत कुछ विशेषताएँ और स्थिति करकंडुचरिउ की चंपानगरी से मिलती-जुलती है। रसरतन की चंपावती नगरी की भौगोलिक स्थिति इस प्रकार है

गुज्जर नगर उदधि के तीरा। अचवहिं कूप सरोवर नीरा॥
नगर अनूप रम्य सुषदाई। मनौ अवनि अमरावति आई॥
—चंपा० खंड, ८, पृ० १३२

करकंडुचरिउ की चंपानगरी सुमनोहर है और रसरतन की चंपानगरी भी चित्त को हरने वाली है

नागर चतुर सुजान नगर भाव देष्यो तहां।
मन जान्यौ उन्मान चित्त हरन चंपावती॥
—वही, २०, पृ० १४०.

यह नगरी भी अनेक गुणों से युक्त है

उपवन सुंदर सुखद अनूपा। गुन गाहक सोभित सब कूपा॥
—वही, ९१

वहाँ जिनमंदिर की शोभा का वर्णन है तो रसरतन में शंकरजी के मन्दिर की

थंभ सौपन्न मुत्ती झलक्कै। देषि गंधर्प मुनि देव थक्कै॥
उच्च उत्तंग सोभा न आवै। सिषिर कैलास उपमान पावै॥
नमंडियौ नाद गंधार सोहै। हरत षल पास जब नैन जोहै॥
—वही, १५६-५७, पृ० १४५

द्वीप-वर्णन

करकंडुचरिउ के सिंहल-द्वीपवर्णन की तुलना जायसीकृत पदमावत में वर्णित सिंहल-द्वीपवर्णन से की जा सकती है। वर्णन-परिपाटी एक ही है परन्तु विस्तार में अन्तर आ जाना स्वाभाविक है। करकंडुचरिउ में सिंहल-द्वीपवर्णन इस प्रकार है

ता एक्कहिं दिणि करकंडएण।
पुणु दिण्णु पयाणउ तुरियएण॥
गउ सिंहलदीवहो णिवसमाणु।

देखकर करकडु ने अपनी कमान से छोटी-छोटी गोलिया मारनी शुरू की और उसे पत्रहीन कर दिया।

पहले लिखा जा चुका है कि जायसी ने भी सिंहलद्वीप को श्रेष्ठतम द्वीप कहा है। यदि जायसी के वर्णन और इसकी तुलना करे तो लगेगा कि जायसी ने उसी पैटर्न पर सिंहल-द्वीप का वर्णन किया है। जायसी को सिंहलद्वीप के समान अन्य कोई द्वीप नही मिला[1]

सब ससार परथमै आए सातौ दीप।
एकौ दीप न उत्तिम सिंघल दीप समीप॥

—पदमावत, पृ० २५

भविसयत्तकहा मे एक नगर का वर्णन इस प्रकार किया है

तहि गयउरु णाउ पट्टणु जणजणियच्छरिउ।
णं गयणु मुएवि सग्गखडु महि अवयरिउ॥ १ ५

अर्थात् वहाँ गजपुर नाम का नगर है जिसने मनुष्यो को आश्चर्य मे डाल दिया है। मानो गगन को छोडकर स्वर्ग का एक खड पृथ्वी पर उतर आया हो।

स्वयभू कवि ने अपने महाकाव्य मे महेन्द्रनगर का जो वर्णन किया है उसकी तुलना जायसी के सिंहलनगर-वर्णन से की जा सकती है। स्वयभू के महेन्द्रनगर का वर्णन

गयणगणे थिएण, विज्जाहर-पवरणरिन्दहो।
णाइ स-णिच्चरेण, अवलोइउ णयरु महिंदहो॥११॥
चउ-दुवारु चउ-गोअरु चउ-पायारु-पडर।
गयण-लग्ग पवणाहय-धयमालाउर पुर।
गिरि-महिन्द-सिहरे रमाउले।
रिद्धि-विद्धि-धण-धण्ण-सकुले।
त णिएवि हणुयेण चिन्तिय।
सुरपुर किमिंदेण धत्तिय॥

—स्वयभूरामायण, ४६ १-२

---

१ पदमावत, सपा०—वा० श० अग्रवाल, सिंहल-द्वीप-वर्णन, पृ० २५

इस ऋद्धि-वृद्धि और धन-धान्य से पूर्ण तथा गगनचुम्बी द्वार-प्राकार और गोपुरों पर पवन से लहलहाती पताकाओं वाले महेन्द्रनगर को देखकर हनुमान जी मानने लगते हैं कि क्या यह इन्द्र का देवलोक है ? ठीक इसी प्रकार जायसी ने भी सिंहलनगर का वर्णन करते हुए उसके ऊँचे भवनों एवं निवासियों के सुख-समृद्धिपूर्ण होने के साथ ही उसे 'इन्द्रासनपुरी' अर्थात् अमरावती के समान सुन्दर कहा है

सिंघल नगर देखु पुनि बसा। धनि राजा असि जाकरि दसा॥
ऊँची पवरी ऊँच अवासा। जनु कविलास इन्द्र कर वासा॥
राऊ राक सब घर घर सुखी। जो देखिअ सो हँसता मुखी॥
रचि रचि राखे चंदन चौरा। पोते अगर मेद औ केवरा॥
सब चौपारिन्ह चंदन खंभा। ओठंघि सभापति बैठे सभा॥
जनहु सभा देवतन्ह कै जुरी। परी द्रिस्टि इन्द्रासन पुरी॥

—पदमावत, पृ० ३६

सरोवर-वर्णन

अपभ्रंश काव्यों में वस्तुवर्णन के अन्तर्गत सरोवरों का सजीव चित्रण किया गया है। करकंडुचरिउ में सरोवर का चित्रण करते हुए चरितकार कहता है कि तालाब के समीप चिड़ियों की चहचहाहट से लगता है मानो वह अपने समीप बुला रहा हो, जलकुंजर अपनी सूंड में पानी भर-भरकर घड़े की तरह उड़ेल रहे हैं जैसे प्यासे प्राणियों को पानी दे रहे हों, ऊपर निकले हुए कमलदंडों से वह गर्व करता हुआ प्रतीत होता है, उछलती हुई मछलियाँ जैसे उसकी उद्घोषणा हो, शुभ्र फेन के बुलबुलों से वह हँसता हुआ सा प्रतीत होता है, विविध पक्षियों से नाचता हुआ, भ्रमरावलि के गुंजन से गाता हुआ और पवन से आंदोलित होने के कारण दौड़ता हुआ सा प्रतीत होता है

जलकुंभिकुंभकुंभइ धरंतु तण्हाउरजीवहं सुहु करंतु।
उद्दंडणलिणिउण्णइ वहंतु उच्छल्लियमीणहि मणु कहंतु।
डिंडीरपिंडरयणहिं हसंतुअइणिम्मलपउरगुणेहिं जंतु।
पच्छण्णउवियसियपंकएहिं णच्चंतउ विविहविहंगएहिं।

गायंतउ भमरावलिरवेण धावंतउ पवणाहयजलेण ।
ण सुयणु सुहावउ णयणइट्ठु जलभरिउ सरोवरु तेहिं दिट्ठु ॥
—करकंडुचरिउ, ४ ७ ३-८

परवर्ती हिन्दी प्रेमाख्यानकों मे नगर-वर्णन के अन्तर्गत सरोवरों का वर्णन अपने पूर्ववर्ती अपभ्रंश काव्यों के समान है। छिताईवार्ता मे सरोवर का वर्णन इस प्रकार किया गया है

सोहैं कमल कमोदिनि पान। भवर बास रस भूलहिं ग्यान ॥
निमसहिं हंस हंसिनी संग। भरे अनंद कुरंग कुलंग ॥
क्रीलति चकई चक्क चकोर। वन के जीव गुंजरहिं मोर ॥
ढेंकि पंखि मटामरे घनै। जल कूकरी आरि अनगनै ॥
सारिस वग्ग हंस उनहारि। निमसहि पंखि सरोवर पारि ॥
पुरइनि कमल रहे जल छाइ। वहु फुलवारि रही महकाइ ॥
—छिताईवार्ता, पृ० ६३

हिन्दी प्रेमाख्यानकों मे वस्तुवर्णन के अन्तर्गत प्रबन्ध के तृतीय अध्याय मे सरोवरों का विवरण दिया गया है। वहीं यह स्पष्ट कर दिया है कि ये अपने पूर्ववर्ती वर्णन-परिपाटी से कितने अधिक प्रभावित हैं। सरोवर-वर्णन की प्रणाली मे कुछ रूढ़ियों का अन्त तक पालन किया जाता रहा। जैसे कुछ सरोवरों के वर्णन मे जलचरों के नाम ही गिना दिए जाते थे। वर्णरत्नाकर और चन्दायन आदि के सरोवर-वर्णनों मे अद्भुत साम्य है। वर्णरत्नाकर मे सरोवर-वर्णन इस प्रकार है

'शरतक चाँद अइ(स)न निर्म्मं सरोवर देषु। कमल, कोकनद, कल्हार, कुवलय, कुमुदते उपशोभित सौर, मिलिन्धि, सफरी प्रभृति अनेक ये मत्स्य तें वलवलायमान हंस, कलहंस, सारस, सरालि, सिन्धु, ककारी, कराल, कोयष्टि, कारण्डव, कुकुल, खएर, आंजन, मोरापालि, वक, पुण्डेरि, चक्रवाक प्रभृति अनेक जलचटक ते सुशोभन ।'[1]

उपर्युक्त संदर्भ मे 'चन्दायन' मे सरोवर-वर्णन मे आये जलचर जन्तुओं के नाम देखिए

---

१ वर्णरत्नाकर, संपा०—सुनीतिकुमार चटर्जी, पृ० ३९-४०

जल-क्रीड़ा

निर्मल सरोवरों मे स्त्रियों की जलक्रीडा का चित्रण भी अपभ्रंश काव्यों मे बेजोड किया गया है। कहीं-कहीं ऐसा भी देखा गया है कि जो राजा दिग्विजय करते थे वे विजित राजा की रानियों के साथ वापियों मे स्नान करते थे। कविवर पुष्पदन्त ने णायकुमारचरिउ मे स्त्रियों की जल-क्रीडा का जो वर्णन किया है वह वडा ही सजीव और स्वाभाविक वन पडा है :

गयणिवसण तणु जलेलिहक्कावइ अद्धुमिल्लु का वि थणु दावइ।
पउमिणिदलजलबिंदु वि जोयइ का वि तहिं जि हारावलि ढोयइ।
का वि तरंगहिं तिवलिउ लक्खइ सारिच्छउ तहो सुहयहो अक्खइ।
काहे वि महुयरु परिमल वहलहो कमलु मुएवि जाइ मुह कमलहो।
सुहुमु जालोल्लु दिट्ठणहमग्गउ काहे वि अवरु अंगि विलग्गउ।
काहे वि उप्परियणु जले घोलइ पाणियछल्लि व लोउ णिहालइ॥

कोई स्त्री ( लज्जावश ) अपने वस्त्ररहित शरीर को जल मे छिपा रही है। कोई अर्धोन्मीलित स्तन को प्रदर्शित कर रही है। कोई हारा-वलि को धारण करती हुई जल विन्दु युक्त पद्मिनी कमलिनी के समान लग रही है। कोई तरगों से त्रिवलियुक्त प्रतीत हो रही है। भ्रमर कमल को छोडकर किसी के मुख-कमल पर वैठ रहा है। किसी के शरीर पर भीगा वस्त्र चिपका हुआ है जो मेघ के समान प्रतीत हो रहा है। स्वयभू कवि ने भी जल-क्रीडा का चित्रण करते हुए लिखा है कि युवक-युवतिया जल-क्रीडा कर रहे हैं। वे देवताओ के समान स्नान करते हुए लीला कर रहे हैं। जल को हाथो से उछाल रहे हैं। मुरज-वाद्य आदि दिखाई पड रहे हैं। वे नाना प्रकार के गीत गा रहे हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार की भगिमाए वना रहे हैं आदि

तह नर-नारि-जुवइ जल कीडइ। कीडताइ ण्हंति सुरलीलइ॥
सलिलु करग्गह आप्फालतइ। मुरय-वज्ज-धायव दरिसंतह॥
खलियहि वलियहि अहिणव-गेयहि। वद्धइ मुयक्रखित्तिय तेयहिं॥
छदेंहि तालिहिं वहुलय-भगेहि। करुणुच्छेत्तिहि णाणा भगेहि॥

आइ चकोर देखि मुख रहा, सरवर नाहिं गगन सब कहा।
भूले गगन अचक रहे तहा, अब निसि नषत कहहि दिन कहां ॥

—चित्रावली, पृ० ४७

इन सब उद्धरणो को देखने से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश काव्यो तथा हिन्दी प्रेमाख्यानको मे पर्याप्त साम्य है। वस्त्र उतारकर तट पर रखने वाली बात एव जल मे स्नान करती हुई सुन्दरियो की रूपगत विशेषता का उल्लेख इन सभी काव्यो मे समान रूप से किया गया है।

-वन-वर्णन

अपभ्रंश काव्यो मे वन, उपवन, बाग-बगीचो का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्राय कवियो ने विविध वृक्षो, लताओ आदि के नाम गिना दिए हैं। परन्तु पुष्पदन्त प्रभृति विद्वानो ने जो बाग-उपवनादि के वर्णन किए हैं उनमे मात्र वृक्षो के नाम ही नही गिनाए गए है अपितु सस्कृत साहित्य के वर्णनो को भी मात कर दिया है। स्वयभूकृत रिट्ठणेमिचरिउ मे एक वन का वर्णन किया गया है जिसमे वृक्षो की नामावलि ही रख दी गई है

हरिवंसुभावेण हरि विक्कम सारबलेण रण्णयं।
दीसइ देव दारु तल ताली तरल तमाल छण्णयं।
लवलि लवंग लउय जंबु वर अंब कवित्थ रिट्ठयं।
सम्मलि सरल साल सिणि सल्लइ सीस वस मिस मिट्ठय।
चपय चूय चार रवि चंदग वदण वंद सुन्दरं।
पत्तल वहल सीयल लया हर मय मणोहरं।
मंथर मलय मारुयदोलिय पायव पडिव पुप्फयं।
पुप्फप्फोथ सकल भसलावलि णाविय पहिय गुप्फयं।
केसरि णहर पहर खर दारिय करि सिर लित्त मोत्तिय।
मोत्तिय पंति कंति धवलीकय सयल दिसा वहंतियं ॥ २१ ॥

कविवर राजसिंहकृत पुरानी हिन्दी के काव्य जिणदत्तचरित मे जो उद्यान-वर्णन मिलता है उसमे भी अपभ्रंश काव्यो की तरह फलो अथवा वृक्षो के नाम गिना दिए गए हैं

उक्त अपभ्रंश एव हिन्दी प्रेमाख्यानकों के बाग-बगीचों के वर्णन मे अधिकतम साम्य है। अत यह कहने मे सकोच नही होना चाहिये कि यह अपभ्रंश कथाकाव्यो के शिल्प का ही प्रभाव है। इसी सदर्भ मे पृथ्वीराजरासो के एक राजोद्यान का उद्धरण भी देखा जा सकता है

श्री खड झड वासय। गुलाव फूल रासय।
जु चपकं कदवय। षजूरि भूरि अवय॥
सु अन्ननास जोरय। सतूतय जमीरय॥
अषोट सेव दामय। अवाल वेलि सामय॥
जु श्रीफल नरगय। सवद्द स्वाद होतय॥
चवत मोर वायक। मनो सगोत गायक॥

## चित्रशाला-वर्णन

चित्रशाला का वर्णन हिन्दी प्रेमाख्यानको मे अपने पूर्ववर्ती साहित्य के अनुरूप ही हुआ है। जिनसेनकृत आदिपुराण मे वर्णित चित्रशाला की विशेपताओं का डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने इस प्रकार उल्लेख किया है

१ चित्रशाला वहुत ही मनोज्ञ, स्वच्छ और सुन्दर होती थी।

२ चित्रशाला की भित्तिया भी चित्रित रहती थी।

३ चित्रशाला मे धर्मनायको, पुराणपुरुषो, ऐतिहासिक व्यक्तियो एव शलाका पुरुषो के चित्र टगे रहते थे।

४ चित्रशाला मे दर्शको को आने-जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती थी।

५ चित्रशाला मे विनोदार्थ चित्रो का अकन भी होता था।

६ प्रतीक चित्रो और व्यक्ति चित्रो का भी आलेखन किया जाता था।

७ चित्रशाला मे चित्रपट, काष्ठचित्र, पाषाणचित्र आदि रसमय चित्रो के साथ धूलिचित्र भी उपलब्ध होते थे।[1]

---

१ डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, आदिपुराण मे प्रतिपादित भारत, पृ० ३१२

उस समय के प्रासादों में चित्रशाला, प्रमदवन, पुष्पवाटिका, कृत्रिम-नदी, क्रीडाशैल, धारागृह, यन्त्रव्यजन, शृंगार-संकेत, माधवी-मंडप, विश्रामचौरा आदि होते थे। कीर्तिलता में उनका उल्लेख इस प्रकार है

प्रमदवन, पुष्पवाटिका, कृत्रिमनदी, क्रीडाशैल, धारागृह, यन्त्रव्यजन, शृंगारसंकेत, माधवीमंडप ।। २.२४४

विश्रामचौरा, चित्रशाली, खट्वा-हिंडोल, कुसुमशय्या, प्रदीप-माणिक्य, चन्द्रकान्तशिला। चतुस्सम पल्लवकरो परमार्थं ।।

—२.२४४–४६

रसरतन में सूरसेन की चित्रसारी का वर्णन इस प्रकार किया गया है

सखि रहइ भूमि मृग पहुमिपाल।
अति रुचिर रुचितवर चित्रसाल ।।
राखिय सुगंध भरि करि बनाइ।
अंगनह मध्यि सरवर सुभाइ ।।
गुंजरत भृंग रसवास लीन।
मृगवाल नाद स्वादहिं अधीन ।।
परजंक मंड तंह चित्त चारि।
परवार हेतु जनु अमर नारि ।।

—चंपा० खंड, २२३–२५

चित्रसाल चित्रित बहुरंगा। उपजतु निरखि सुखद सुख अंगा ।।
विविध चित्र अनवन विधि साजे। जल थल जीव जंतु सब राजे ।।
लिखी बहुत लीला करतारा। चित्र चारु दसउ अवतारा ।।
ब्रज विनोद बहु भांतन चीन्हा। राम चरित्र चारु सब कीन्हा ।।
सोरह सहस अष्ट पटरानी। चित्री इंद्र धरनि इंद्रानी ।।
नायक नाथ लिखे सुर ग्यानी। रुकमिन आदि आठ पटरानी ।।
रति रतिनाथ चित्र पुनि कीन्हा। ऊषा हित अनुरुध मनु लीन्हा ।।
चित्रित सकल प्रेम रस प्रीति। माधो कामकन्दला रीती ।।
अग्निमित्र यौरावत धाता। भरथरि प्रेम पिंगला राता ।।

—स्वयंवर खंड, २३०–२३४ आदि.

## हाट-वर्णन

हाटों का वर्णन विद्यापति की कीर्तिलता, वर्णरत्नाकर, पृथ्वीचन्द्र-चरित, मानसोल्लास और कादम्बरी आदि मे जिस तरह हुआ है उसी को हिन्दी प्रेमाख्यानको ने स्वीकार किया है। पृथ्वीचन्द्रचरित मे चौरासी हाटों का उल्लेख इस प्रकार ह

सोनी हटी, नाणावर हटी, सौगधिया हटी, फोफलिया, सूत्रिया, सडसूत्रिया, घोया, तेलहरा, दन्तरा, वलीयरा, मणीयार हटी, दोसी, नेस्ती, गधी, कपासी, फडीया, फडीहटी, एरडिया, रसणीया, प्रवालीया, वावहटा, सापहटा, पीतलगरा, सोनार, सीसाहडा, मोतीप्रोया, सालवी, मीगारा, कुआरा, चूनारा, तूनारा, कूटारा, गुलीयाल, परीयटा, द्याची, मोची, सुई, लोहटिया, लोढारा, चित्रहारा, सूतहारा, कागलीया, मद्यप हटी, वेश्या, पणगोला, गाछा, भाडभुजा, वीवाहडा, त्राम्बडीया, भइसायत, मलिननापित, चोपानापित, पाटीवणा, त्रागडीया, वाहीत्रा, काठवीठीया, चोपावीठीया, सूपडीया, साथरीया, तेरमा, वेगडीया, वसाह, सान्थूआ, पेरुआ, आटीआ, आलीआ, दउढीआ, मुजकूटा, सरगस, भरथारा, पीतल-हडा, कसारा, पत्तसागीआ, पासरीआ, मजीठीया, साकरीया, सावूगर, लोहार, सूत्रहार, वणकर, तम्बोली, कन्दोई, वुद्धि हटी और कुत्रिका-पण हटी।[1]

इन हाटों मे वेश्या-हाट (वाजार) का चित्रण अपभ्रंश काव्य णायकुमारचरिउ मे स्वाभाविक ढग से किया गया है

> वेसावाडइ झत्ति पइट्ठउ। मयरकेउ पुरवेसहिं दिट्ठउ।
> का वि वेस चिंतइ किं वड्ढिय। णीलालय ए एण ण कड्ढिय।
> का वि वेस चिंतइ किं हारें। कठु ण छिण्णउ एण कुमारें।
> का वि वेस अहरग्गु समप्पइ। झिज्जइ खिज्जइ तप्पइ कपइ।
> का वि वेस रइसलिलें सिंचिय। वेवइ वलइ घुलइ रोमचिय।
>
> घत्ता—ता वीणाकलरवभासिणिए देवदत्तए रायविलासिणिए।
> हियउल्लए कामदेउ ठविउ कयपजलिहत्थें विण्णविउ॥

---

१ प्राचीन गुजर काव्यसग्रह—पृथ्वीचन्द्रचरित, पृ० ९५

कामे कामिणि भणिय हसेप्पिणु—आदि ।

—णायकुमारचरिउ, पृ० ८८-८९

हिन्दी प्रेमाख्यानकों में कई स्थानों पर चौरासी हाटों का उल्लेख अथवा संकेत मिलता है। प्रद्युम्नचरित (१४११ वि० सं०), सधार अग्रवालकृत में इस प्रकार लिखा है

इक सौ वने धवल आवास । मठ मदिर देवल चउपास ।
चौरासी चौहट्ट अपार । बहुत भांति दीसइ सुविचार ॥१७॥

कविवर पुहकर ने रसरतन में जो हाटों का वर्णन किया है उसकी तुलना पूर्ववर्ती साहित्य के हाट-वर्णनों में की जा सकती है

पठवर मंडित सोभित हाट । रच्यो जनु देव सुरप्पति वाट ॥
कहूं नग मोतिय बेचत लाल । करें तह लच्छिय मोल दलाल ॥
कहूँ गढ कचन चारु सुनार । कहूँ नट नाटिक कौतिक हार ॥
कहूं पट पाट बनैं जरतार । कहूँ हय फेरत हैं असवार ॥
कहूँ गुह मालिनि चौसर हार । कहूँ तिसवारत है हथियार ॥
कहूं बरई कर फेरत पान । कहूँ गुनी गाइन साजत गान ॥
कहूँ पढै पडित वेद पुरान । कहूँ नर तानत बान कमान ॥
कहूं गनिका गनरूप निधान । कहूँ मुनि ईस करै तप ध्यान ॥
चल्यौं नगरी सब देखत सूर । कहूँ मृगमच्छ सुगध कपूर ॥
रहे इक नागरि नैन निहार । चलै इक पाट गवाघ उघार ॥

—चपा० खड, १८६–१९३

इसी प्रकार शृङ्गार-हाट और फूलहाट का चित्रण जायसी के पदमावत (३७, ३८, ३९) में देखा जा सकता है। चन्दायन में गोवर नगर के सुगन्धि-बाजार और वहाँ की खरीददारी का वर्णन देखिए

सुनो फूल हाट सब फूला । जीउ विमोह गा देखत भूला ॥
अगर चन्दन सब धरा बिकाने । कुकु परिमल सुगधि गधाने ॥
बेना और केवर सुहावा । मोल किये (पर) महक (सुंघावा) ॥
पान नगरखण्ड सुरग सुपारी । जैफर लौंग विकारी झारी ॥
दौना मरवा कुन्द निवारी । गूदइ हार ते बेचहिं नारी ॥
खाड चिरौंजी दाख खुरहुरी, बैठे लोग बिसाह ।
हीर पटोर सो भल कापड जित चाहे सब आह ॥

—चन्दायन, २८, पृ० ९२

**अश्व-वर्णन**

हिन्दी प्रेमाख्यानको मे घोडे-हाथियों के जो चित्रण किये गये है वे भी अपनी पूर्व परम्परा से शृखलाबद्ध है। वर्णरत्नाकर मे अश्वो के निम्न भेद किये गए हैं

हरिअ, महअ, मागल, कुही, कुवाल, कओस, उरज, नील, गरुड, पीअर, राओट, दोरो, उवाह, वलिआह, सेवाह, कोकाह, केयाह, हराह, पोराह, रोरिह ।

माणिक्यचन्द्रसूरि ने अश्वो की जातियो के विपय मे एक लम्बी तालिका पृथ्वीचन्द्रचरित मे दी है

तरल तेजी तरवारिया। किस्या ते-- हयाणा, मयाणा, कूकणा, कास्मीरा, हयठाणा, पइठाणा, सरसईया, सीधउरा, केकाइला, जाइला, उत्तर-पथा, ताजा, तेजो, तोरक्का, काच्छूला, कावोजा, भाडेजा, आरट्ट, वाल्हीकज, गाधार, चापेय, तैत्तिल, त्रैगर्त, आर्जनेय, कादरेय, दरद, सौवीर क्षेत्रशुद्ध, प्रमाणशुद्ध, चपल, सरल, तरल, उचासणा, परीक्षणा, जोयड सहइ, बाकी द्रेठो, समरपूठि, छोटे काने, सघइ वानि, सइरनी ललवलाई, नीघटनी कलाई, पूछतणी आयताई, पलाणतणी सामत्राई, वाकी तुडवालि, बहुली पेटवालि, मुहिरुधा, आसणि सूधा, हसमत, हय-हेवारवि, अबर वधिर करता।

विद्यापति ने कीर्तिलता मे कीर्तिसिह की सेना के घोडो की जाति और उनकी चालो तथा शरीर-गठन के विपय मे इस प्रकार लिखा है

अनेक वाजि तेजि ताजि साजि साजि आनिआ ॥
परक्कमेहि जासु नाम दीप दीपे जानिआ॥
विसाल कन्ध चारु वन्ध सत्ति अरू सोहणा ॥
तलप्प हाथि लाधि जाथि सत्तु सेण खोहणा ॥
सुजाति शुद्ध कोहे कुद्ध तोरि धाव कन्धरा॥
विमुद्ध दापे मार टापे चूरि जा वसुन्धरा॥ ४ २९-३६

इसी संदर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से रसरतन के अश्वों का वर्णन देखिए

पलानैं तहां तेज-ताजी तुरंगा। परै उच्च उच्छाल मानौ कुरंगा॥
कथाहे सुलास दुरंगा सुरंगा। खरैं स्वेत पीत तथा सांवरंगा॥
इराकी अरव्वी तुरक्की दवच्छी। ममोला अमोला लिये मोल लच्छी॥
वजैं धाव धावैं लसैं पूंछ अच्छी। मनो उड्डहीं वाह वैठें सुपच्छी॥
उभैं कर्न ऊंचे महं उच्च ग्रीवा। मनौं उच्च उच्चैश्रवा सोभ सीवा॥
चढैं सूरवंसी महासूर वीर। उलंघे मनौं चापि वाराधि नीर॥
सवैं षड्गधारी चित्तैं चित्त मोहे। मनौं चित्त औरेषि पेषत सोहे॥

—२०३-२०८, पृ० १०३

चन्दायन पृ० १३३ एवं १४१ पर रावमहर के अश्वों का वर्णन देखा जा सकता है।

## युद्ध वर्णन

अपभ्रंश काव्यों में युद्धों का चित्रण विस्तृत और दृश्य उपस्थित कर देने वाला किया गया है। धवल कवि ने हरिवंशपुराण में जो युद्ध का दृश्य उपस्थित किया है वह साक्षात् एक चित्र उभार देता है

रहवउ रहहु गयहुगउ धाविउ, धाणुक्कहु धाणुक्क परायउ।
तुरउ तुरंग कुरवग्ग विहत्थउ, असिवक्खरहु लग्गु भय चत्तउ।
वज्जहिं गहिर तूर हय हिंसहिं, गुलु गुलंत गयवर वहु दीसहिं॥
विंधहिं तडातडा, मुच्छिहिं भडा भडा।
कुंत धाय दारिया, खग्गहिं वियारिया।
जीव आस मेल्लिया, कायरा विचल्लिया॥ ८९.१०

अर्थात् रथ वाला रथ की ओर, गज गज की ओर दौड़ा, धानुष्क धानुष्क की ओर भागा, घोड़े घोड़े से, बिना खड्ग वाले निहत्थों से और असि भय छोड़कर कवच से भिड़ गई। वाद्य जोर-जोर से बज रहे हैं, घोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी चिंघाड़ते हुए दिखाई दे रहे हैं। योद्धा विद्ध हो रहे हैं, भट मूर्छित हो रहे हैं, कोई भालों के प्रहार से विदीर्ण हो रहे हैं, कोई खड्ग से छिन्न-भिन्न हो रहे हैं, जीवन की आशा छोड़ कर कायर भाग रहे हैं।

इसी प्रकार का युद्ध-वर्णन कविवर स्वयभू ने किया है।

सुभट सुभट से, कवध कवध से, धनुषवाण धनुषवाण से, चक्र चक्र से, त्रिशूल त्रिशूल से भिड गये—आदि

सुहडें सुहडु कवंध कवंधे। छत्तें छत्तु चिंधुहउ चिंधे।
वाणें वाणु चाव वर-चावें। खग्गें खग्गु अणिट्ठिय-गव्वे।
चक्कइ चक्कु तिसूल तिसूलें। मोग्गर मोग्गरेण हुलिहूलें।
कणएण कणउ मुसलु वर-मुसले। कोते कोतु रणगणे कुसले।
सेल्ले सेल्लु खुरप्पु खुरुप्पे। फलिहि फलिहु गयावि गय-रुप्पे।।

—स्वयभूरामायण, ५३ ७

जायसी के पदमावत मे राजा और बादशाह का जो युद्ध दिखाया है उसमे और उक्त युद्ध-वर्णन मे तुलना करने से पर्याप्त साम्य दिखाई पडता है। दोनो ओर से योद्धा कोप सहित मिले और हाथी हाथियो पर पिल गये। अकुश बिजली के समान चमक रहे थे। हाथी मेघ के समान गरज रहे थे। पृथ्वी से आकाश तक दोनो दल भर गये, झुड के ऊपर झुड टूट रहे थे। कोई भी एक-दूसरे के दबाव से हटता नही था। दोनो ही ठोस वज्र की तरह थे

कोपि जुझार दुहुँ दिसि मेले। औ हस्ती हस्तिन्ह कह पेले।
आकुस चमकि बीज अस जाहीं। गरजहिं हस्ति मेघ घहराहीं।

धरती सरग दुऔ दर जूहहिं ऊपर जूह।
कोऊ टरे न टारे दुऔ वज्र समूह।।—पृ० ५४९

हस्तिन्ह सौं हस्ती हठि गाजहिं। जनु परवत परवत सौं बाजहिं।।
गरुअ गयद न टारे टरहीं। टूटहिं दत सुड भुइ परही।
परवत आइ जो परहि तराहीं। दर मह चापि खेह मिलि जाहीं।
कोई हस्ती असवारन्ह लेहीं। सुड समेटि पाय तर देहीं।।

—पृ० ५५०.

देवसेनगणि के सुलोचनाचरिउ मे जय और अर्ककीर्ति के युद्ध के वर्णन मे कवि ने योद्धाओ की गति का चित्रण किया है

भडो को वि खग्गेण खग्ग खलतो,
रणे सम्मुहे सम्मुहो आहणतो।

भडो को वि वाणेण वाणो दलन्तो
समद्धाइऊ दुद्धरो ण कयन्तो ।
भडो को वि कोतेण कोत सरन्तो ।
करे गोढ चक्को अरी सपहुत्तो ।
भडो को वि खडेहि खडो कयग्गो ।
भडन्त ण मुक्को सगावो अभग्गो ।। ६ १२

कीतिलता मे विद्यापति ने युद्ध के दृश्यो मे रूढिगत प्रतीक और दृश्यों को ही रखा है

दुहु दिस पाखर उट्ठ माझ सगाम भेट हो ।।
खग्गे खग्गे सघलिय फुलुग उपफलइ अग्गि को ।।
अस्सवार असिधार तुरअ राउत सो टुट्टइ ।।
वेलक वज्ज निघात काअ कवचहु सो फुट्टइ ।।
अरि कुजर पजर सल्लि रह रुहिर चीकि गए गगन भर ।।
रा कित्तिसिह को कज्ज रसे वीरसिह सगाम कर ।।
—४ १८२-१८७.

विद्यापति की कीर्तिलता मे युद्ध स्थल पर हुँकार करके वीर गरज रहे थे। दौडते हुए घोडो की पक्तियाँ टूट जाती थी। बाण से कवच फट जाते थे। राजपुत्र रोप से तलवारो से जूझ रहे थे। आरुष्ट वीर आ रहे थे और इधर-उधर दौड रहे थे। एक-एक से लड रहे थे, शत्रु की लक्ष्मी का नाश कर रहे थे खड्ग से खड टकरा रहे थे। अग्नि के स्फुलिंग फूट पडते थे। घुडसवारो की तलवार की धार से राउत घोडे के साथ कट जाता था

हुकारे वीरा गज्जन्ता पाइक्का चक्का भज्जन्ता ।।
धावन्ते धारा टुट्टन्ता सन्नाहा वाणे फुट्टन्ता ।।
राउत्ता रोसे लग्गीआ खग्गही खग्गा भग्गीआ ।।
आरुट्ठा सूरा आवन्ता उमग्गे मग्गे धावन्ता ।।
एकक्के रगे भेट्टन्ता परारी लच्छी भेट्टन्ता ।।
खग्गे खग्गे सघलिअ फुलुग उपफलइ अग्गि को ।।
अस्सवार असिधार तुरअ राउत सओ टुट्टइ ।।
—४ १७५-१८१

पुहुकर ने सेनाप्रयाण के अवसर पर इसी प्रकार की शब्दावलि का प्रयोग किया है

सुनै सोर इदौर तैं इद्र लज्यौ। जहा सैन चतुरग गभीर सज्यौ॥
चले मत्त मैमत घूमंत मता। मनो वद्दला स्याम माथे चलता॥
चलते वधी पाइ वैरी षरक्कैं। वजै घू घरू घोर घटा ठनक्कैं॥
वनी किंकिनी लक लागी धनक्कै। मनो पावसी रैन झिल्ली झनक्कै॥
पलानै तहा तेज ताजी तुरंगा। परै उच्च उच्छाल मानौ कुरगा॥

—विजय० १९८–२०३

पुहकर कवि ने सेनाप्रयाण का वर्णन अपनी पूर्व परपरानुसार ही किया है। स्वयभू कविकृत पउमचरिउ के रण-यात्रा का विवरण इस प्रसग मे उद्धृत किया जा सकता है

पेक्खु पेक्खु आवन्तउ साहणु। गलगज्जन्त महागय-वाहणु॥
पेक्खु पेक्खु हिंसन्ति तुरङ्गम। णहयलें विउलें भमन्ति विहङ्गम॥
पेक्खु पेक्खु चिन्धइ धुव्वन्तइं। रह-चक्कइं महियलें खुप्पन्तइ॥
पेक्खु पेक्खु वज्जन्तइ तूरइ। णाणाविह णिणाय गभीरइ॥

—पउमचरिउ, २५.४

इन्द्रावती मे कवि नूरमुहम्मद ने घनघोर युद्ध का वर्णन किया है। योद्धाओ की ढाले इतनी अधिक हैं कि चारो ओर काली घटा छाई हुई लगती है। खड्गो से विजली जैसी चमक होती है

भयउ घटा ढालन सो कारी, खरगत भये बीज चमकारी।
माला खरग हनै सव कोई, वोडन खरग ठनाठन होई।
गगन खरग घटा सो ठन गयऊ, हिन-हिन औ धुन हन हन भयऊ।
ओनई घटा धूर सो, दिन मनि रहा छिपाय।
वहा महाभारत्थ मा, सवद परेउ हू हाय॥ —पृ० ९८

स्वयभू के पउमचरिउ मे धनुप की टकार और खड्गो की खन-खनाहट के लिए जिस शब्दावलि का प्रयोग किया गया है वह इससे वहुत साम्य रखती है

हण-हण-हणकारु महारउद्दु। छण-छण-छणन्तु गुण-सिन्थ-सद्दु॥
कर-कर-यरन्त कोदण्ड पयरु। थर-थर हरन्त णाराय-णियरु॥

खण-खण-खणन्त तिक्खग्ग खग्गु । हिलि-हिलि हिलन्त हय चञ्चुलग्गु ॥
गुल-गुल-गुलन्त गयवर विसालु । हणु-हणु भणन्त णरवर वमालु ॥
—पउमचरिउ, ६३.३

अब तक युद्ध की विभीषिका का वर्णन देखा । अब युद्ध के बाद युद्ध-स्थल की वीभत्सता का भी दृश्य देखिए—सियारिने चिल्लाती, फेंकरती और शोर मचाती है, अनेक भूतनिया भूख मे डकारें लेती है। लाशों को चीरता-फाडता वैतालो का झुड शोर करता, कबन्धो को उलटता पलटता और ठेल देता। रक्त रगे सिर को सियारो धड से अलग करके फोड-फोड करके खाने लगती है। रुधिर की नदी के किनारे भूतगण 'झिझरी' का खेल खेलते है, आदि।

सिआ सार फेक्कार रोल करन्तो।
बुहुक्खा बहू डाकिनी उक्करन्तो।
बहुप्फाल वेआल रोलं करन्तो।
उलट्टो पलट्टो कबन्धो पलन्तो।
रकत क रागल माथ उफरि फेरवी फोरि षा।
रुहिर तरगिणि तीर भूत गण जरहरि खेल्लइ[1] ॥ २०१-२१२

जायसीकृत पदमावत मे युद्धोपरान्त युद्ध-स्थल की वीभत्सता का वर्णन इस प्रकार किया है

कध कबध पूरि भुइ परे। रुहिर सलिल होइ सायर भरे ॥
अनद बियाह करहि मसुखाए। अब भख जरम जरम कहं पाए ॥
चौसठि जोगिन खप्पर पूरा। बिग जमुकन्ह घर बाजहि तूरा ॥
गीध चील्ह सब माडौ छावहि। काग कलोल करहि और गावहि ॥
आजु साहि हठि अनी बियाही। पाई भुगुति जैस जिय चाही ॥
जेन्ह जस मासू भखा परावा। तस तेन्ह कर लै औरन्ह खावा ॥
—पदमावत, पृ० ५५२

इसी प्रकार रसरतन ( युद्ध खड, ६८—६९ ) एव चन्दायन ( १४३, पृ० १५९ ) मे युद्धस्थल पर वीभत्सता के दृश्य देखे जा सकते है।

---

१ डा० शिवप्रसाद सिंह, कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा, पृ० ३३—३८.

पुहकर कवि के रसरतन मे सेनाप्रयाण के समय निम्न प्रकार के बाजो का उपयोग होता था

तहा सूर पयान निस्सान बाजै। मनो मेघ भादो महा नाद नाजै।
बजे दुदुभी ढोल भेरी मृदगा। सुनै सोर पाताल मध्ये भुजगा ॥ १९६ ॥
बजै बासुरी सप सहनाइ तूर। भये सव्द दिग्पाल के कर्म पूर।
भई पच हज्जार दुदुभी धुकार। उठे नीर पाताल चलि वारपार ॥ १९७ ॥

—विजय० खड, पृ० १०२-३

जायसी ने पदमावत मे लिखा है कि युद्ध का ऐसा दृश्य होने पर भी राजा के हृदय मे हार न थी। उसको आज्ञा से राजद्वार के ऊपरी भाग मे अखाडा सजाया गया। सामने ही जहा शाह उतरा हुआ था, उसके ऊपर नाच का अखाडा जुडा था। जन्त्रो मे पखावज और आउज आदि बाजे बज रहे थे। वे वाद्य इस प्रकार थे

जत्र पखाउझ आउझ बाजा। सुरमडल रबाब भल साजा ॥
बीन पिनाक कुमाइच कही। बाजि अविरती अति गहगही ॥
चग उपग नागसुर तूरा। महुवरि बाज बसि भल पूरा ॥
हुरुक बाज डफ बाज गभीरा। औ तेहि गोहन झाझ मजीरा ॥
तत बितत सुभर घनतारा। बाजहि सबद होइ झनकारा ॥
जस सिगार मन मोहन पातर नाचहि पाच।
पातसाहि गढ छेका राजा भला नाच ॥

—पदमावत, पृ० ५६२

रणवाद्यो अथवा वाद्यो का विवरण हिन्दी प्रेमाख्यानक छिताईवार्ता (पृ० ११९), रसरतन (पृ० ३८६) आदि मे भी देखा जा सकता है। अपभ्रश कथाकाव्यो एव हिन्दी प्रेमाख्यानको के सक्षिप्त वस्तुवर्णन की तुलनात्मक स्थिति से यह स्वीकार करना पडता है कि हिन्दी प्रेमाख्यान अपने पूर्ववर्ती साहित्य से पूर्णरूपेण अनुप्राणित ही नही हुए अपितु उन्ही के विकसित रूप है।

## मोटिफ—अभिप्राय

मोटिफ (अभिप्राय), कथा-अभिप्राय या कथानक-रूढि की परिभाषा आदि का प्रश्न प्रबन्ध के तृतीय अध्याय मे हल किया जा चुका है।

विवेचित हिन्दी प्रेमाख्यानकों की कथानक-रूढियों का भी अध्ययन उसी अध्याय में किया गया है। यहाँ प्रश्न अपभ्रंश कथा-काव्यों में प्रयुक्त कथानक-रूढियों का एवं उनके प्रभावक्षेत्र दिखलाने का है। लगभग वे सारी-की-सारी कथानक-रूढियाँ जिनका विवरण हम तृतीय अध्याय में दे चुके हैं—अपभ्रंश काव्यों में विद्यमान हैं। लोकक्षेत्र अथवा लोक-कथाओं के प्रभाव से कतिपय रूढियाँ भिन्न भी हो सकती हैं। जिन अपभ्रंश काव्यों के कथानक हम पीछे लिख चुके हैं, क्रमश उन्हीं की कथानक-रूढियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

लीलावईकहा की कथानक-रूढियाँ ·

१ मंगलाचरणादि।

२ कथा का नायक राजा है।

३ एक अन्य राजा विपुलाशय की पुत्री का गंधर्वकुमार से प्रेम और गन्धर्व विवाह।

४. पिता ने गन्धर्वकुमार को राक्षस होने का शाप दिया।

५ कुवलयावली का आत्महत्या का असफल प्रयास।

६ सखी सिद्धकुमार का पता लगाने मलय पर्वत पर गई।

७. माधवानिल को उसका शत्रु पाताल लोक ले गया।

८ दोनो सखियो ने इष्टसिद्धि के लिए भवानी-पूजन का निश्चय किया।

९ कथा की नायिका लीलावती सिंहल द्वीप की राजकुमारी।

१०. लीलावती सातवाहन के चित्र को देखकर मोहित हुई—चित्रदर्शन।

११ सातवाहन को साम्राज्य-विस्तार की इच्छा और सिंहल को प्रस्थान।

१२ विजयानन्द दूत को सिंहल भेजा—नौका मार्ग मे टूट गई।

१३ तट पर उसे नग्न पाशुपत के दर्शन।

१४ लीलावती की विवाह करने की शर्त कि उसकी सखी के प्रिय के मिल जाने पर वह विवाह करेगी।

१५. शर्त का पूरा होना और विवाह का सम्पन्न होना।

पउमसिरिचरिउ की कथानक-रूढ़ियाँ

१ मंगलाचरण—सरस्वती-वंदना।
२ कथा के नायक समुद्रदत्त की पूर्व भव की कथा।
३ कथानायिका पद्मश्री का अपूर्वश्री नामक उद्यान में समुद्रदत्त का दर्शन और दोनों एक-दूसरे पर मुग्ध।
४ विवाहोपरान्त पद्मश्री के साथ जीवन बिताना।
५ माता का पत्र बुलाने के लिए।
६ समुद्रदत्त और उसकी पत्नी के बीच केलिपिशाच ने अन्तर डाल दिया।
७. पत्नी का विलाप और समुद्रदत्त का छोड़कर जाना।
८ समुद्रदत्त का दूसरा विवाह।
९ पद्मश्री को एक साध्वी का उपदेश।
१० सदाचरण करने पर भी पद्मश्री पर चोरी का कलंक लगा।
११ अंत में तपस्या द्वारा मोक्षलाभ।

भविसयत्तकहा की कथानक-रूढ़ियाँ

१ मंगलाचरण—सज्जन-दुर्जन-प्रशंसा।
२ धनपाल सेठ और उसकी पत्नी पुत्राभाव से चिन्तित।
३ मुनि के आशीर्वाद से समय पर पुत्ररत्न की प्राप्ति।
४ धनपाल का दूसरी शादी करना।
५ पहली पत्नी और भविष्यदत्त की उपेक्षा।
६ दूसरी पत्नी से बंधुदत्त उत्पन्न हुआ।
७ दोनों पुत्रों का ५०० व्यापारियों के साथ देशान्तर-भ्रमण पर जाना।
८ समुद्र में तूफान का आना और बंधुदत्त का भविष्यदत्त को धोखा देकर तिलक द्वीप पर छोड़ जाना।
९ भविष्यदत्त का जनशून्य नगरी में पहुँचना।
१० वहाँ अतीव सुन्दरी कन्या के दर्शन।
११. एक राक्षस द्वारा दोनों का विवाह और १२ वर्ष तक साथ-साथ रहना।

१२ समुद्र के किनारे किसी जहाज की खोज मे जाना, वहाँ असफल लौटते हुए बधुदत्त से भेंट।

१३. बधुदत्त की क्षमायाचना और भविष्यदत्त की सारी सम्पत्ति जहाज पर लादना, उसकी पत्नी को उसी पर बैठाना।

१४ भविष्यदत्त का जहाज चलने से पूर्व जिनमदिर मे दर्शन करने जाना और बधुदत्त का उसे छोडकर पत्नी एव सम्पत्ति लेकर भाग जाना।

१५ देव की सहायता से भविष्यदत्त का घर पहुँचना।

१६ राजा से शिकायत और न्याय प्राप्त करना।

१७. राजा ने भविष्यदत्त को अपना उत्तराधिकारी बनाया और अपनी कन्या से विवाह किया।

१८ प्रथम पत्नी की मातृभूमि जाने की इच्छा, मैनाक द्वीप की यात्रा और जैन मुनि के दर्शन।

१९ कुछ दिन बाद मुनि का भविष्यदत्त के पूर्वभव का वर्णन और भविष्यदत्त का वैराग्य।

२० श्रुतपंचमी का माहात्म्य।

जसहरचरिउ की कथानक-रूढियाँ

१ मंगलाचरण।

२ कथा का नायक राजा।

३ एक कापालिकाचार्य का नगर मे आगमन और अपूर्व गुणो से सम्पन्न होने की घोषणा।

४ राजा का वायुगमन की शक्ति प्राप्त करने का अनुरोध।

५ मनुष्य सहित सभी प्राणियो के जोडो की बलि देवी को चढाने का विधान।

६ अधिकारियो ने सभी जोडो का प्रबन्ध किया परन्तु मनुष्य के जोडे का अभाव।

७ जैन साधु-साध्वी का नगर मे भिक्षा के लिए आना और कर्मचारियो द्वारा पकडे जाना।

८ साधु का राजा को आशीर्वाद और राजा का आकर्षित होना।

९ साधु बालक का पूर्व भव की कथा बताना।

१०. पूर्व भव की कथा मे रानी अमृतमती एक कुरूप व्यक्ति
करती थी।

११ रानी ने राजा तथा उसकी माँ को विष दिया।

१२ मुनि द्वारा विभिन्न जन्मो की कथा का बताना।

१३ अन्त मे मारिदत्त और भैरवानन्द कापालिक भी जैन
दीक्षित हुए।

णायकुमारचरिउ की कथानक-रूढ़ियाँ

१ सरस्वती-वदना से कथारम्भ।

२ कथा का श्रीपचमी व्रत के माहात्म्य-प्रदर्शन के लिए

३ कथा का नायक जयन्धर।

४. वासव नाम का व्यापारी व्यापार-यात्रा से लौटा अ
उपहारो के साथ राजा को एक सुन्दरी का चित्र भेंट

५ राजा चित्र पर मुग्ध हो गया।

६ राजा का मत्रियो को भेजना और उस कन्या से व्याह

७ रानियो के साथ आनन्दोद्यान मे जाना।

८ प्रथम रानी को दूसरी रानी से ईर्ष्या और जिनम
जाना।

९ वहा मुनि से पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद।

१० पुत्र के विषय मे मुनि की अन्य भविष्यवाणिया।

११ बच्चे का कुए मे गिरना और नाग द्वारा रक्षा।

१२ बच्चे का पैर लगते ही मदिर के द्वार खुल गए।

१३ पचसुगन्धिनी का महल मे दिव्य बॉसुरीवादक की ख
चना और नागकुमार को श्रेष्ठ पाकर अपनी दोनो
का विवाह करना।

१४ द्यूतक्रीडा।

१५ राजकुमार का उद्धत घोडे को ठीक करना।

१६ सौतेले भाई की ईर्ष्या और नागकुमार को मरवाने क

१७ मल्लयुद्ध मे नागकुमार द्वारा हाथी को उठा लेना।

१८ घमासान युद्ध।

१९ नागकुमार ने बहुविवाह किए।

२०. भीमासुर का नागकुमार की पत्नी को पाताल मे ले जाना।
२१. नागकुमार द्वारा पाताल जाना और उद्धार।
२२ अन्तर्कथाओ का समावेश।
२३ नागकुमार बहुत काल तक राज्य करते है और अन्त मे मुनि-दीक्षा ले लेते है।

जम्बूसामिचरिउ की कथानक-रूढ़ियाँ

१ मगलाचरण।
२ जम्बूस्वामी की माता के पाच स्वप्न और मुनि द्वारा उनका फलकथन।
३ श्रेणिक राजा के विवाह की भविष्यवाणी कि उनका विवाह मृगाकपुत्री से होगा।
४ विद्युच्चर ने चोरी करने के लिए पहरेदारो को औषधि से बेहोश कर दिया।
५. सागरदत्त मुनि के दर्शन से शिवकुमार को वैराग्य उत्पन्न होना।
६ भवदेव का विवाह होते समय मुनिसघ का आगमन। भवदेव का मुनि भवदत्त को पहुँचाने जाना और अनिच्छापूर्वक दीक्षा लेना।
७ दीक्षा के बाद मे नगर मे आना और मार्ग मे पत्नी के मिल जाने पर विचलित होना परन्तु पत्नी के सदुपदेश से प्रायश्चित्त करना।
८. तीसरे भव मे मुनि सागरदत्त के द्वारा, पाचवे भव मे सुधर्मा और जम्बूस्वामी द्वारा अपने पूर्वभव की कथा कही जाती है।
९ जम्बूस्वामी सुधर्मा से सम्यक्त्वोपलब्धि का कारण पूछते है।
१० सागरदत्त, शिवकुमार मुनि और जबूस्वामी को एक-दूसरे के निमित्त से वैराग्य होता है।
११ अन्य जल-उपवन-उद्यानक्रीडा आदि सम्बन्धी रूढियो का भी निर्वाह हुआ है।
१२ युद्ध के अन्तर्गत आकाशयुद्ध आदि का वर्णन।

१३ अन्तर्कहानियों का उल्लेख।

१४ अन्त में जम्बूस्वामी केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गए।

करकडुचरिउ की कथानक-रूढ़ियाँ

१ मंगलाचरण।

२ राजकुमारी पद्मावती का अशुभ लग्न में उत्पन्न होना और एक उद्यान में छोड़ा जाना।

३. करकडु ने विवाह किया।

४. रानी को दोहद हुआ कि वह पुरुष वेश में राजा के साथ भ्रमण करे।

५ नगर-भ्रमण के समय हाथी भाग खड़ा हुआ। रानी की प्रार्थना पर राजा एक वृक्ष की शाखा से लटक कर अलग हो गया। रानी एक वन में पहुँच गई।

६. रानी के पहुचते ही सूखा वन हरा हो गया।

७. रानी को श्मशान में पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे एक चाडाल ले गया।

८ एक अन्य राजा की मृत्यु पर करकडु को राजा बनाया गया।

९ नायक और उसके पिता में युद्ध तथा मा ने दोनों को मिलाया।

१० नायक करकडु की पत्नी को एक विद्याधर हाथी के रूप में आकर हरण कर ले गया।

११. करकडु का सिंहल में जाकर राजकुमारी से विवाह।

१२ सिंहल की राजकुमारी के पेट से सर्प का निकलना और करकडु द्वारा उसका मारना।

१३ सिंहल से लौटते समय नौका पर मच्छ का आक्रमण।

१४ करकडु ने मच्छ को मार डाला पर उसका एक विद्याधरी द्वारा हरण कर लिया गया और वह नौका पर न लौट सका।

१५ रानी एक अन्य द्वीप पर पहुँच गई और पति की प्राप्ति हेतु पूजा की। पद्मावती ने प्रकट हो पति-मिलन का आश्वासन दिया।

१६ विद्याधरी ने करकडु से विवाह किया और वियुक्त रानी से मिलाया।

१७ शीलगुप्त नामक मुनिराज का शुभागमन, करकडु के उनसे तीन प्रश्नों का समाधान।

१८ करकडु का वैराग्य, केवलज्ञान और मोक्षप्राप्ति।

उपर्युक्त अपभ्रंश कथाकाव्यों की कथानक-रूढियों को देखने से इतना अनुमान अवश्य हो जाता है कि यह एक परिपाटी ही थी जिसका पालन कवि के जाने अथवा अनजाने ही होता रहा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी प्रेमाख्यानकों की कथानक-रूढियों (जिनका विवरण प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में किया गया है) और अपभ्रंश काव्यों की रूढियों में नायक का योगी होना, किसी चमत्कारी घटना का सहायक होना, सिंहल द्वीप की यात्रा और वहाँ की राजकुमारी से विवाह, प्राकृतिक दृश्य-वर्णन, रानी को दोहद होना आदि कथानक-रूढियाँ सामान्य रूप से दोनों में पाई जाती हैं। अनेक कथानक-रूढियाँ संस्कृत साहित्य से ज्यों-की-त्यों अपभ्रंश और हिन्दी में आ गईं। अनेक तत्कालीन लोक-मानस की उपज है।

## दोहद

प्रो० ब्लूमफील्ड ने दोहद 'मोटिफ' को निम्न छः भागों में विभक्त किया है

१ दोहद की अपूर्ति गर्भस्थ पुत्र को विकृत करती है अथवा उसके किसी अंग विशेष को आघात पहुँचाती है अथवा प्रजनन में कष्ट पैदा होता है।

२ दोहद पति को शीघ्र ही वीरता के कार्य, उच्चतम ज्ञान, बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य करने की प्रेरणा करता है।

३ दोहद दैवी कर्मों का रूप धारण करता है अथवा दैवी इच्छा का रूप लेता है।

४ दोहद घटना को आलंकारिक या रोचक बनाने के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है, जो कहानी की मुख्य घटनाओं को प्रभावित नहीं करता।

५ दोहद स्त्री के द्वारा प्रस्तुत एक विश्वास है कि वह कुछ इच्छाओं की संतुष्टि कर सके।

६ दोहद एक बनावटी आवश्यकता है जो कि इस विश्वास मे स्त्रियों की एक चाल (ट्रिक) है कि उनकी इच्छा-पूर्ति होनी चाहिए।

दोहद के उक्त छ रूपो मे से अन्तिम रूप का प्रयोग अपभ्रंश अथवा हिन्दी प्रेमाख्यानको मे देखने को नही मिला। भारतीय मान्यता से दोहद गर्भिणी की इच्छापूर्ति का उपक्रम है। याज्ञवल्क्यस्मृति मे स्पष्ट लिखा है कि गर्भिणी की विचित्र इच्छाएँ गर्भ का स्वाभाविक और सहज परिणाम है अत उनकी पूर्ति अवश्य होनी चाहिए। संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी के प्रेमाख्यानो मे इस परिपाटी को काल्पनिक कलेवर देकर चित्र-विचित्र बनाने का खूब प्रयत्न हुआ। दोहद के तीन भेद किये जा सकते हैं सामान्य दोहद अर्थात् गर्भिणी की इच्छापूर्ति और वृक्ष-दोहद तथा तिथि-दोहद। वृक्ष-दोहद एक प्रकार की काव्यरूढि हो गई थी। वृक्ष के साथ दोहद का अर्थ पुष्पोद्गम है। मेघदूत, रघुवंश, नैषध आदि मे इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे हुआ है। तिथि-दोहद के अन्तर्गत यात्रा के समय तिथि, वार या दिशा से उत्पन्न दोषो की शान्ति के उपक्रमो को परिगणित किया जा सकता है। मुहूर्तचिन्तामणि आदि ग्रन्थो मे इस पर विस्तार से विचार है। रास्ते मे होने वाले शकुन-अपशकुनो को भी इसी मे सम्मिलित कर लेना चाहिए। अपभ्रंश और हिन्दी कथाकाव्यो मे तीनो प्रकार के दोहदो से सम्बद्ध सामग्री प्राप्त होती है।

यह रूढि संस्कृत साहित्य से ही चली आ रही है। भवभूति ने उत्तर-रामचरित मे सीता के मुख से दोहदपूर्ति का आग्रह कराया है। राम, लक्ष्मण और सीता जब वनवासादि के समय के भित्तिचित्रो को देखकर पूर्वानुभूतियो का स्मरण कर रहे थे तो इसी बीच अर्जुन के फूलो से सुगन्धित माल्यवान् पहाड के चित्र का चित्रण लक्ष्मण द्वारा किये जाने पर राम ने उन्हे रोका। राम से सीता कहती है—'आर्यपुत्र, एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्नदोहदाया मम विज्ञापनीयमस्ति।' सीताजी को गर्भिणी की इच्छा के रूप मे भागीरथी मे स्नान करने की इच्छा हुई। वे कहती है—'जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीरासु वनराजिपु विहृत्य पवित्रनिर्मलशिशिरसलिला

भगवती भागीरथीमवगाहिष्य इति' (पृ० ५८-५९)। ठीक इसी प्रकार अपभ्रंश कथाकाव्य करकंडुचरिउ में रानी को राजा के साथ हाथी पर बैठकर घूमने का 'दोहद' हुआ। ऐसे सामान्य दोहदों के अनेक उदाहरण हैं।

वृक्षदोहद के विषय में, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, नैषध, मेघदूत, रघुवंशादि में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है। साहित्य-दर्पण में 'कविसमयप्रसिद्धि' के अन्तर्गत वृक्ष-दोहद के संदर्भ में लिखा है कि प्रियंगु स्त्रियों के स्पर्श से विकसित होता है, वकुल नायिकाओं द्वारा मदिरा के कुल्ले किये जाने पर, अशोक उनके पादाघात से, मन्दार मधुर वचनों से, चम्पक मधुर हास से, आम्र वक्त्रवात से, नमेरु संगीत से और कर्णिकार उनके नृत्य से पुष्पित होते हैं

स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियंगुर्विकसति वकुलः सीधुगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम्।
मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाता-
च्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात्कर्णिकारः॥
—साहित्यदर्पण, पृ० ५६२

एक श्लोक और भी आया है

पादाघातादशोको विकसति वकुलो योषितामास्यमद्यै-
र्यूनामङ्गेषु हाराः, स्फुटति च हृदयं विप्रयोगस्य तापैः।
मौर्वी रोलम्बमाला धनुरथ विशिखाः कौसुमाः पुष्पकेतो-
र्भिन्नं स्यादस्य बाणैर्युवजनहृदयं स्त्रीकटाक्षेण तद्वत्॥
—वही, पृ० ५६१

अशोक वृक्ष के दोहद के सन्दर्भ में कुमारसंभव की मल्लिनाथटीका के उद्धरण भी द्रष्टव्य हैं

सनूपुररवेण स्त्रीचरणेनाभिताडनम्।
दोहदं यदशोकस्य ततः पुष्पोद्गमो भवेत्॥

अन्य—

पादाहतः प्रमदया विकसत्यशोकः
शोकं जहाति वकुलो मुखसीधुसिक्तः।

आलोकित कुरवक कुरुते विकाश-
मालोडितस्तिलक उत्कलिको विभाति ॥
—कुमारसभव, ३ २६ की टीका

वृक्ष-दोहद पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका ( पृ० २३० आदि ) मे विस्तृत विवेचन किया है।

तिथि-दोहद के उदाहरण हमे हिन्दी कथाकाव्य माधवानल-कामकदला, रसरतन आदि ग्रन्थो मे बहुतायत से मिल जाते है। जैसे गणपति-कृत माधवानल-कामकदला मे तिथि-विधि-निषेध शीर्षक से तिथि-दोहद की बात पुष्ट होती है

आजा पडवा प्रेतबीज, अखात्रीज युग आदि।
वरजी चुथि गणेसनी, रिसिपचमी प्रसादि ॥ ५९ ॥
चपाछठि नइ अचला, सत्तमि सीतल सुजाण।
आठमि दुर्वा गोकुला, नवमी राम रमाण ॥ ६० ॥
कलियुग आदि त्रयोदशी, चौदशि ईश अनत।
आमा नइ पुनिम प्रगट, नारि न देखइ कंत ॥ ६२ ॥
आदित्यवार अनइ वली, मूल मघा रेवत्ति।
पौढी पुष्य पुनर्वसु, सोचि चढइ नही सत्य ॥ ६३ ॥
चैत्र आसोई नुरता, अपर पक्षना दीह।
परवशि पिड करी रहइ, अेता आडी लीह ॥ ६७ ॥

रसरतन मे पुहुपावती के जन्मोपरान्त ज्योतिषी भविष्यवाणी करते है

इह विधि पडित करहि बखाना। विद्यावान भविष्य निदाना ॥ १८३ ॥

दस अतीत एकादशी होहि अवर्ष समान।
तन पीडा मन मूढता रहहिं जतन कर प्रान ॥ १८४ ॥
जबहिं चतुर्दस वरष, वर वाला करहि प्रवेस।
तब कुटुम्ब चिंता मिटहि, निश्चित होहि नरेस ॥ १८५ ॥

सूरसेन और राजकुमारी का सरोवर के तीर पर सयोग हुआ उसमे तिथिवार दिया है

जेठ मास सित पश्छिमी, तिथि दसमी दस जोग।
सूर सरोवर तीर पर, भयौ उभै सजोग ॥ २३३ ॥

एक मास मारग चले, सह्यो सीत अरु घाम।
सरवर सोहनु पैषि कै, भयौ मनहिं विश्राम ॥ २३४ ॥

—रसरतन, पृ० १०६

वस्तुवर्णन, मोटिफ, निजधर तत्त्व आदि के तुलनात्मक अध्ययन के वाद हम मगलाचरण, सज्जन-दुर्जनप्रशसा-निन्दा आदि का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

**मंगलाचरण**

मगलाचरण समस्त भारतीय ग्रन्थो मे मिलता है। सस्कृत आचार्यो ने तीन प्रकार से मगलाचरण करने का विधान वताया है। ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त मे मगलाचरण करने का निर्देश किया गया है। इसका उद्देश्य यह है कि कार्य का प्रारम्भ, उत्थान और अन्त निर्विघ्न हो सके। यह एक आस्था—विश्वास और सस्कृति की देन है। अपभ्रंश काव्य हो अथवा हिन्दी प्रेमाख्यानक सभी मे कवियो ने अपने-अपने इष्ट-देवो का स्मरण किया है। कही-कही वाग्देवी सरस्वती के स्मरण से ही काव्य का आरम्भ किया गया है—जैसे णायकुमारचरिउ। नयनदी ने सकलविधिनिधान काव्य मे सरस्वती की स्तुति इस प्रकार की है

छद्दसण छच्चरण छदालंकार फुरिय पक्खउडा।
णवरस कुसुमासत्ता, भिंगिव्व गिरा जए जयउ ॥ १ ॥
विलसिय सविलास पया वाएसी परमहस तल्लीण।
मुणिगण हर पमुह मुहारविंद ठिय जयउह सिव्व ॥ २ ॥

रसरतनकार ने सरस्वती देवी को विभिन्न विशेपणों से युक्त स्मरण किया है

जा गगा तारगीवानी। साम्या पातायो ब्रह्मानी।
जा ब्रह्मा ईसो गोविंद। जा सूरो देवान इद ॥ ७ ॥
जा वानी वोगेस ईस। जा वानी आदेषं दीस।
जा वीना वानोदा दडी। सा वानी पादोय चडी ॥ ८ ॥
सुमृत वेद अरु व्याकरन सेव सो आहि।
ब्रह्म सुता नाराइनी देत वुद्धि वल ताहि ॥ १० ॥

—आदि खण्ड, पृ० ४–५

अपभ्रंश-स्तुति में सरस्वती को षड्दर्शन, छंदालंकार, रस ०
युक्त बताया गया है। उसी प्रकार स्मृति-वेद-व्याकरण आदि स
की सेवा करने से मिलते हैं, यह बताया गया है।

## पूर्ववर्ती कवियों का स्मरण

अपभ्रंश काव्यों के रचनाकारों में अपने पूर्ववर्ती कवियों को स
करने की भी परम्परा थी। सकलविधिनिधान काव्य के रचयित
अन्य कवियों का स्मरण इस प्रकार किया है

मणु जण्ण वक्कु वम्मीउ वासु, वररुइ वामणु कवि कालियासु।
कोऊहल वाणु मऊरु सूरु, जिणसेण जिणागम कमल सुरु।
वारायणवरणाउ विवियदडु, सिरि हरिसु राय सेहरु गुणदडु।
जसइधु जए जयराय णाभु, जय देउ जणमणाणद कामु।
पालित्तउ पाणिनि पवरसेणु, पायजलि पिंगलु वीरसेणु।
सिरि सिंहणदि गुणसिंह भद्दु, गुणभद्दु गुणिल्लु समस भद्दु
अकलकु विखम वाईय विहडि, कामदडु रुदडु गोविदु दडि।
भम्मुई भारहि भरहुवि महतु, चहुमुह सयमु कइ पुप्फयतु।
घत्ता—सिरि चदु पहाचदु वि विबुह, गुण गण णदि मणोहरु।
कइ सिरि कुमार सरसइ कुमरु, कित्ति विलासिणि सेहरु॥

इसी प्रकार मुनि कनकामर ने करकडुचरिउ में सिद्धसेन, सम
अकलकदेव, जयदेव, स्वयभू और पुष्पदन्त का उल्लेख किया है

तो सिद्धसेण सुसमतभद्द अकलकदेव सुअजलसमुद्द।
जयएव सयभु विसालचित्तु वाएसरिघरु सिरिपुप्फयतु॥
—१ २

यह परम्परा अथवा रूढि हिन्दी-प्रेमाख्यानकों में ज्यों-की-त्यों
आई। पुहकर ने निम्नलिखित कवियों का उल्लेख किया है

प्रथम सेष अरु व्यासुदेव सुषदेवहं पायौ।
वालमीक श्रीहर्ष कालिदासह गुन गायौ।
माघ-माघ दिन जेमि वान जयदेव सुदडिय।
भानदत्त उदयेन चद वरदाइक चडिय॥

ये काव्य सरस विद्या निपुन वाकवानि कठह् धरन ।
कविराज सकल गुन गन निलक सुकवि पौहकर वदत चरन ॥

—रसरतन, पृ० ५.

सज्जन-दुर्जन-उल्लेख

अन्य कई कवियों ने भी इस प्रकार की परम्परा का निर्वाह किया है। इसके अतिरिक्त रचयिता सज्जन दुर्जनों का भी स्मरण करते थे। भविष्यदत्तकथा में इस प्रकार का स्मरण किया गया है

इहु सज्जणलोयहो विणउ सिट्ठु ।
जो सुहि मज्झत्थु विसिट्ठु इट्ठु ॥
जो पुणु खलु खुड्डु अइट्ठु संगु ।
सो किं अब्भत्थिउ देइ अगु ॥
परिच्छिद्दसएहिं वावारु जासु ।
गुणवन्तु कहिंमि कि कोवि तासु ॥
णउ सक्कइ देखिवि परहो रिद्धि ।
णउ सहइ सउरिसह गुणपसिद्धि ॥ १ ३

रामचरितमानस में तुलसीदास ने भी खल-वन्दना की है

वहुरि वन्दि खलगन सतिभाए। जे विनु काज दाहिनेहु बाएं ।
परहित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरे हरष विषाद वसेरे ॥

इन कवियों में अनभिज्ञता-प्रकाशन की भी प्रणाली थी अथवा यों कहे कि इनकी प्रकृति अत्यधिक सरल थी। तुलसी और स्वयभू दोनों ने अपने को अविवेकी तक कह डाला है

वुहयण सयम्भु पइ विण्णवइ ।
मइं सरिसउ अण्णु णहिं कुकइ ॥
वायरणु कयावि ण जाणियउ ।
णउ वित्ति-सुत्तु वक्खाणियउ ॥
णउ वुज्झिउ पिङ्गल-पत्थारु ।
णउ भम्मह-दंडि-अलङ्कारु ॥ पउमचरिउ, १ ३.

तुलसीदास कहते हैं

कवित विवेक एक नहि मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥
कवि न होउ नहि चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥

इसी प्रकार के अनेक उद्धरण मिलते हैं जिनका तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

## ऋतु-वर्णन

ऋतु-वर्णन के प्रसग मे अपभ्रंश से लेकर हिन्दी प्रेमाख्यानकों तक ऐसा कोई प्रेमकाव्य नही मिलेगा जिसमे ऋतुओ का वर्णन षड्ऋतु अथवा बारहमासा या चौमासा के रूप मे न मिलता हो। प्रेमकाव्य मे विरहिणी अथवा विरही की स्थिति का सही चित्रण करने लिए ऋतु-वर्णन आवश्यक भी होता है। संस्कृत मे तो ऋतुसहारादि काव्य ही रच दिए गये।

षड्ऋतुवर्णन और बारहमासे का वर्णन कवियो ने सयोग-वियोग के निश्चित पक्षो के आधार पर किया है। मूलत षड्ऋतुवर्णन की परिपाटी सयोगशृगार के लिए और बारहमासे की विप्रलभ के लिए चली आई है। षड्ऋतु और बारहमासे के सम्बन्ध मे डा० शिवप्रसाद सिंह ने निम्नलिखित विशेषताओ का उल्लेख किया है[1]

१. दोनो ही उद्दीपन के निमित्त व्यवहृत काव्य-प्रकार हैं किन्तु सामान्यत षड्ऋतु का वर्णन सयोगशृगार मे, बारहमासे का विरह मे होता है। इन नियमो का पालन बडे शिथिल ढग से होता है, अत अपवाद भी मिलते हैं।

२ षड्ऋतुवर्णन ग्रीष्मऋतु से आरम्भ होता है, बारहमासे की पद्धति के प्रभाव के कारण कई स्थानो पर वर्षा से भी आरम्भ किया गया है। बारहमासा प्राय आसाढ महीने से आरम्भ होता है।

---

१ डा० शिवप्रसाद सिंह, सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० ३३७

३ इन काव्यो की पद्धति वहुत रूढ हो गई है, कवि-प्रथा का पालन वहुत कडाई से होता है, इसलिए मौलिक उद्भावना की कमी दिखाई पडती है।

हरिवशपुराण मे मधुमास का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि फाल्गुन मास वीत गया और मधुमास आ गया। मदन उद्दीप्त होने लगा। लोक अनुरक्त हो गया। वन भाँति-भाँति के पुष्पो से सुन्दर और मनोहर हो गया। मकरन्द-पान से मत्त भ्रमर गुजार करते हुए सुन्दर लग रहे है। गृहो मे नारिया सज रही हैं, झूला झूलती है, विहार करती है। वन मे कोयल मधुर आलाप करती है। सुन्दर मयूर नृत्य कर रहे है :

**फग्गुण गउ महुमासु परायउ, मयणुद्दलिउ लोउ अणुरायउ।**
**वण सय कुसुमिय चारु मणोहर, वहु मयरद मत्त वहु महुयर।**
**गुमगुमंत खणमणइं सुहावहिं, अहपणट्ठ पेम्मुउक्कोवहिं।**
**केसु व वणहिं घणारुण फुल्लिय, ण विरहग्गे जाल पमिल्लिय।**
**घरि घरि णारिउ णिय तणु मडिहिं, हिंदोलहिं हिंडहि उग्गायहिं।**
**वणि परपुट्ठ महुर उल्लावहिं, सिहिउल सिहि सिहरेहि धहावइ॥**

—१७ ३

ऊपर वसत ऋतु का एक चित्रण प्रस्तुत किया गया। वस्तुत ऋतु-वर्णन के प्रसग मे यह नही कहा जा सकता कि वर्णन की परिपाटी या मान्यता क्या थी अर्थात् उनका क्रम क्या था। किसी ने वसन्त को पहले रखा है तो किसी ने ग्रीष्म को। सामान्यत षड्ऋतुओ का वर्णन करने वालो ने वसन्त ऋतु से ही ऋतुओं का प्रारम्भ माना है। षड्ऋतु और वारहमासा सम्बन्धी रचनाएँ भारतीय प्रदेशो की कई भाषाओ मे उपलब्ध होती हैं। प्राय षड्ऋतुवर्णन सयोगश्रृगार को लेकर हुआ है, सदेशरासक इसका अपवाद है। वारहमासो मे प्रकृतिचित्रण आसाढ मास से किया जाता रहा है। पूर्व मे ऋतुवर्णक कतिपय रचनाओ का नामोल्लेख किया जा चुका है। सदेशरासक और पृथ्वीराजरासो के षड्ऋतुवर्णन भी उल्लेखनीय है। इन विभिन्न काव्यों मे ये वर्णन विभिन्न उद्देश्यो की पूर्ति के लिए किए गए ही प्रतीत होते हैं। यो प्राचीनतम प्रणाली मे ऋतुवर्णनो का महत्त्व मात्र प्रकृति के सौन्दर्यनिरू-

पण की दृष्टि मे ग्राह्य था। रासो के ऋतुवर्णन की विशेषताओं पर प० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विशद प्रकाश डाला है[1]। कुछ ऋतुवर्णन सम्बन्धी पद विभिन्न काव्य-सग्रहों मे भी मिलते है। वसन्त ऋतु का एक आकर्षक चित्र प्रस्तुत करने वाला उदाहरण देखिए

फुल्लिअ केसु चन्द तह पअलिअ मजरि तेज्जइ चूआ।
दक्खिण वाउ सीअ भइ पवहइ कम्प विओइणि हीआ॥
केअइ धूलि सव्व दिस पसरइ पीअर सव्वउ भासे।
आउ वसन्त काइ सहि करिअइ कन्त ण थक्कइ पासे॥

—प्राकृतपैंगलम्, २१३

वसत ऋतु की आम्र-मजरिया, चाँदनी, दक्षिणी शीतल पवन आदि विरहिणी के हृदय को पीडा देती है। वसन्तागमन से केशर की धूलि चारो ओर फैल गई है जिससे सभी ओर पीला-पीला ही दिखाई पडता है। नायिका अपनी सखी से पूछती है कि प्रिय पास नही है और वसन्त आ गया, मैं क्या करू ? मधुमास की इस पीडा को मझन ने मधुमालती मे व्यक्त किया है

चैत करह निसरे बन बारी। बनसपती पहिरी नव सारी।
चहु दिसि भा मधुकर गुजारा। पाखुरि फूल डारिन्ह अनुसारा।
कुसुम सीस डारिन्ह सेउ काढे। तरिवर नौ साखा भे बाढे।
फागुन हुते जे तरु पतझारे। ते सभ भए चैत हरियारे।
मोहि पतझार जो भा बिनु साईं। सो न सखी मौला अब ताईं।
दुखु दै प्रीतम छाडि गा जननि दीन्ह बनवास।
औ रबि आठौं मै तपा कै मोहि सिर परगास॥ ४१०॥

—मधुमालती, पृ० ३५८.

वसन्तागम के समय विरही लोग पुष्पो की गन्ध, मन्द पवन के झोको, भौरो की गुजार और कोयल-रव से कष्टानुभव करते हैं तथा पूर्वसयोगावस्था का स्मरण करते हैं

जं फुल्लु कमलवण बहइ लहु पवण
भमइ भमरकुल दिसि विदिस

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ८२--८३

झकार पलइ वण रवइ कुहिल गण
विरहिअ हिअ हुअ दर विरसं ॥

—प्राकृतपैंगलम्, २१३

रसरतनकार ने षड्ऋतु—बारहमासे का अत्यधिक मनमोहक चित्र उपस्थित किया है। वसत ऋतु का रसरतन मे इस प्रकार वर्णन किया गया है

मधु मास चैत सोभित वसंत। सयोग सग दपति लसत।
रितु पाइ राज रति राज साज। दल सज्ज कीन बिरहिनी काज ॥ ७९ ॥

अकुरित पत्र तरु हरित नील। हलि चलित मनौ दल मदन पील।
रंग अरुन फूलि किंसुकि विधान। जनु कटक माझ सोभित वितान ॥८०॥

सोभित सरस छवि अम्ब मौर। सिर ढरहि मनौ मनमथ्थ चौर।
केवरो मलति मालती जाइ। जनु मैन वान राषिय वनाइ ॥ ८१ ॥

गुजरत भ्रमर कोकिल सुकीर। जसु भनत वदिजन विप्र धीर।
लपटाइ लता लागी तमाल। जनु करति त्रिया कर अकमाल ॥ ८२ ॥

सुनु सुक जु चित्त मुहि नहिन चैत। भये मदन सूर मिलि मदन कैत।
हिय सून प्रान घरनी निकत। किहि अंग संग मानौ वसंत ॥ ८३ ॥

—युद्धखड, पृ० २१२

बारह मासो के वर्णन के लिए नेमिनाथचउपई का नाम उल्लेखनीय है। नेमिनाथचउपई मे जैनो के बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ और राजमती के प्रेम का रोमाचकारी एवं स्वाभाविक चित्रण है। ज्येष्ठ मास मे जिस प्रकार सूर्य तप्त होता है, नदिया सूख जाती है, ऐसी अवस्था मे पति के न आने से चंपा-लता को पुष्पित देखकर नेह-पगी राजुल मूर्च्छित हो जाती है

जिट्ठ विरह जिमि तप्पइ सूर, छण वियोग सूखिउ नइ पूर।
पिक्खिउ फुल्लिउ चपइ विल्लि, राजल मूर्छी नेह गहिल्लि ॥

इस वर्णन का जायसी के पदमावत मे किए गए ज्येष्ठ मास के वर्णन से साम्य देखा जा सकता है

जेठ जरे जग बहे लुवारा। उठे बवंडर धिके पहारा॥
बिरह गाजि हनिवत होइ जागा। लंका डाह करे तन लागा॥
चारिहुँ पवन झँकोरे आगी। लंका डाहि पलंका लागी॥
दहि भइ स्याम नदी कालिंदी। बिरह कि आगि कठिन असि मंदी॥

परवत समुद मेघ ससि दिनअर सहि न सकहिं यह आगि।
मुहमद सती सराहिऐ जरे जो अस पिय लागि॥ ३५५॥

—पदमावत, पृ० ३५४

पृथ्वीराजरासो मे पृथ्वीराज भिन्न-भिन्न ऋतुओ मे काम से प्रताड़ित होता है। चन्द ने ऐसे अवसरो पर ऋतुओ का अद्वितीय वर्णन किया है

मोर सोर चहुँ ओर घटा आसाढ बंधि नभ।
वच दादुर झिंगुरन रटत चातिग रजत सुभ॥
नील बरन वसुमत्तिय पहिर आभ्रन अलंकिय।
चंद वधू सिब्बद धरे वसुमत्तिसु रज्जिय॥
बरषत बूंद घन मेघसर तब सुभोग जद्दव कअरि।
नन हंस धीर धीरज सुतन इष फुहे मन मत्थ करि॥२५-६५॥
घन घटा बंधि तम मेघ छाय।
दामिनिय दमकि जामिनिय जाय॥
बोलत मोर गिरवर सुहाय।
चातिग्ग रटत चिहुँ ओर छाय॥

कवि अद्दहमाण एक नायिका के माध्यम से वर्षा ऋतु का चित्रण करते हुए लिखते है कि कोई विरह-कातरा प्रिया किसी पथिक से अपने प्रिय को संदेशा भेजती है। वह मेघो का समय है। दसो दिशाओ मे बादल छाये हुए है, रह-रह के घहरा उठते हैं, आकाश मे विद्युल्लता चमक रही है, कडक रही है, दादुरो की ध्वनि चारो ओर व्याप्त हो रही है—धारासार वर्षा एक क्षण के लिए भी नही रुकती। हाय पथिक, पहाड की चोटियो पर से उसने ( प्रिय ने ) कैसे सहा होगा ?

झंपवि तम बद्दलिण दसह दिसि छायउ अंबरु,
उन्नवियउ घुरहुरइ घोरु घणु किसणडंबरु।

णहहमग्गि णहवल्लिय तरल तडयडिवि लडक्कइ,
दद्दुररडण रउद्दु सद्दु कवि सहवि ण सक्कइ।
निवड निरन्तर नीरहर दुद्धर धरधारोह मरु।
किम सहउ पहिय सिहरट्ठियइ दुसहउ कोइल रसह सरु॥१४८॥

—संदेशरासक.

पृथ्वीराजरासो के वर्षा-वर्णन मे कवि लिखता है—बादल गरज रहे है, प्रत्येक क्षण पहाड के समान वीत रहा है, सजल सरोवरो को देखकर सौभाग्यवतियो के हृदय फटे जा रहे है, बादल जल से सीच-सीचकर प्रेमलता को पलुहा रहे है, कोकिलो के स्वर के साथ मदन अपना वाण-सधान कर रहे है, दादुर, मोर, दामिनी, चातक शत्रु-सम व्यवहार कर रहे है आदि

घन गरजै घरहरै पलक निस रैनि निघहै।
सजल सरोवर पिष्षि हियौ ततछन घन फहै॥
जल वद्दल वरषंत पेम पल्लहौ निरन्तर।
कोकिल सुर उच्चरै अग पहरंत पचसर॥
दादुरह मोर दामिनि दसय अरि चवत्थ चातक रटय।
पावस प्रवेस वालम न चलि विरह अगिनि तन तप घटय॥

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि वाद के ऋतुवर्णनो मे प्राकृतिक दृश्यो का ध्यान उतना नही रखा जाने लगा जितना वस्तुओ की नाम-परिगणना का। इस पद्धति मे जिनपद्मसूरि के थूलिभद्दफागु के वर्षा-वर्णन को देखा जा सकता है

झिरिझिरि झिरमिर झिरमिर ए मेहा वरसति।
खलहल खलहल खलहल ए वादला वहति॥
झव झव झव झव झव झव ए वीजुलिय झवक्कइ।
थर हर थर हर थर हर एक विरहिणि मणु कपइ॥ ६॥
महुर गभीर सरेण मेह जिमि जिमि गाजन्ते।
पच वाण निज कुसुम वाण तिम तिम साजन्ते॥
जिमि जिमि केतकि महमहत परिमल विगसावइ।
तिमि तिमि कामिय चरण लग्गि निज रमणि मनावइ॥ ७॥

विषय विवेचन की दृष्टि से ग्रन्थ या रचना को एकाधिक भागों में विभक्त करना अनिवार्य तत्त्व है। इनका नामकरण की दृष्टि से सर्ग, अध्याय, परिच्छेद, खंड, लम्बक और सन्धि आदि रूपों में देखा जा सकता है। अपभ्रंश कथाकाव्यों में प्राय 'सन्धि' होती थी और उनमें कहीं कहीं परिच्छेद भी होते थे। इसकी सूचना प्रत्येक सधि के प्रत्येक परिच्छेद की समाप्ति पर दे दी जाती थी। उदाहरणार्थ

**इह णायकुमारचारुचरिए णण्णणामंकिए महाकविपुप्फयंतविरइए महाकव्वे वालवीरलंभो णाम चउत्थो परिच्छेउ समत्तो। संधि ॥ ४ ॥**

हिन्दी में कहीं खंड, कहीं अध्याय और कहीं परिच्छेदादि द्वारा विषय-विभक्त करके विवेचन की परिपाटी रही है। पदमावत, रसरतन आदि में 'खंड' नामकरण किया गया है, जैसे—अप्सरा खंड, युद्ध खंड, सिंहल यात्रा-वर्णन खंड आदि।

छंद

अपभ्रंश एवं हिन्दी प्रेमाख्यानकों की छन्द-योजना पर विचार करने के पूर्व 'छन्द' शब्द के अर्थ से परिचित होना आवश्यक है। 'छन्द' शब्द का कई अर्थों में प्रयोग किया जाता रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता में वेदों को 'छन्दस्' कहा गया है

**ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।**
**छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १५ १**

अमरकोश में 'छन्द' शब्द का अर्थ अभिप्राय लिखा गया है—'अभिप्रायश्छन्द आशय'[1]। अन्यत्र अमरकोशकार ने छन्द का अर्थ 'वश'—'अभिप्रायवशौ छन्दाब्दौ जीमूतवत्सरा'[2] किया है। गायत्री प्रमुख छन्द है—'गायत्री प्रमुख छन्दो'[3]। पद्य द्वारा व्यक्त अभिलाषा छन्द है—'छन्दः पद्येऽभिलापे च'[4]। हिन्दी शब्दसागर के अनुसार 'छंद' संज्ञा

१ अमरकोश, तृतीय काण्ड, संकीर्णवर्ग, श्लोक २०
२. वही, नानार्थवर्ग, श्लोक ८८
३. वही, द्वितीय कांड, ब्रह्मवर्ग, श्लोक २२
४ वही, तृतीय कांड, नानार्थवर्ग, श्लोक २३२

पुलिंग शब्द है जो सस्कृत 'छंदस्' से निकला है। हिन्दी मे इस शब्द का सोलह अर्थो मे प्रयोग मिलता है।[१] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने छन्द को आवेग का 'वाहन'[२] तथा 'एक चित्त के अनुभव को अनेक चित्तो मे अनायास सचरित करने वाला महान् साधन'[३] माना है। कालिदास ने छन्द का आदि रूप प्रणव को माना है।—'प्रणवश्छन्दसामिव'[४]। पाणिनीयशिक्षा मे वेदज्ञान की जिस पुरुषरूप मे कल्पना की गई है उस पुरुप के चरण छन्द हैं[५]

छन्द पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयन चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१ ॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुख व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४२ ॥

ऐसी मान्यता है कि वैदिक युग मे छन्द देवताओ को प्रसन्न करने के साधन थे। परन्तु साहित्यिक विधाओः मे छन्दो का प्रयोजन 'एक चित्त के अनुभव को अनेक चित्तो मे अनायास संचरित करने वाले महान् साधन' से है। डा० पुत्तूलाल शुक्ल के शब्दो मे 'छन्द वह वैखरी ध्वनि ( मानवोच्चारित ध्वनि ) है, जो प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरगभंगिमा से आह्लाद के साथ भाव और अर्थ की अभिव्यंजना कर सके।'[६] छन्द को भेदो की दृष्टि से पिंगल नागमुनि ने सम, अर्द्धसम और विपम तीन रूपो मे विभक्त किया है—सममर्धसम विपम च। पिंगलच्छन्द सूत्रम् के टीकाकार हलायुध भट्ट ने लिखा है कि जिसके चारो पाद एक लक्षणयुक्त हो वह सम वृत्त और जिसके अर्ध पाद ( दो चरण ) एक समान हो तथा दूसरे दो चरण एक समान हो उसे अर्धसम छन्द

---

१ हिन्दी शब्दसागर ( वृहत् )
२ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य का मर्म, पृ० ४१
३ वही, पृ० ४६
४ रघुवश, १ ११
५ पाणिनीयशिक्षा, ४१-४२
६ डा० पुत्तूलाल शुक्ल, आधुनिक हिन्दी-काव्य में छद-योजना, पृ० २१

कहते है।[1]

उक्त विषय के विस्तार मे न जाकर यहाँ हम कतिपय अपभ्रंश कथा-काव्यो मे प्रयुक्त छन्दो के अध्ययन के बाद हिन्दी प्रेमाख्यानको मे वर्णित छन्दो पर तुलनात्मक दृष्टि मे विचार करेगे। अपभ्रंश रचना सुदमण-चरिउ मे कवि नयनदी ने वार्णिक और मात्रिक दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है। इसमे प्रयुक्त छन्दो की तालिका इस प्रकार है

पादाकुलक, रमणी, मत्तमातग, कामवाण, दुवई भयण विलासा, भुजगप्रयात, प्रमाणिका, तोडमाउ, मदाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, मालिनो, दोधय, समानिका, भयण, त्रिभगिका ( मजरी, खडिय और गाथा का मिश्रण ), आनंद, द्विभगिमा ( दुवई और गाहा का मिश्रण ), आरणाल, तोमर, मदयार्रात्त, अमरपुरसुन्दरी, मदनावतार, मागहण-क्कुडिया, शालभजिका, विलासिनी, उविदवज्जा, इदवज्जा अथवा अखोणइ, उवजाइ ( उपजाति ), वसतचच्चर, वसत्य, उव्वसी, सारीय, चडवाल, भ्रमरपद, आवली, चन्द्रलेखा, वस्तु, णिसेणी, लताकुसुम, रचिना, कुवलयमालिनी, मणिशेखर, दोहा, गाथा, पद्धडिया, उण्हिया, मोत्तियदाम, तोणउ, पच-चामर, सग्गिणी, मदारदाम, माणिणो, पद्धडिया ( रयणमाल, चित्तलेह, चदलेह, पारदिया, रयडा इत्यादि )।

नयनन्दीकृत सकलविधनिधान काव्य मे सुदंसणचरिउ मे प्रयुक्त छन्दो के अतिरिक्त ये छन्द प्रयुक्त हुए है

श्रेणिका, उपश्रेणिका, विषमशीर्षक, हेममणिमाल, रासाकुलक, मदरतार, खंडिका, मजरी, तुरगगति ( मदन ), मदतारावली ( कुसुम-कुसुमावलि ), सिंधुरगति, चारुपदपक्ति, मनोरथ, कुसुममंजरी, विश्लोक, मयणमजरी, कुसुमघर, भुजगविलास, हेला, उवविछिया, रासावलय, कामललिया, सुन्दरमणिभूषण, हंसलील, रक्ता, हसिणी, जामिणी, मदरावली, जयतिया, मदोद्धता, कामक्रीडा, णागकण्णा, अणगभूसण, गउदलोल, गुणभूषण, रुचिरग, स्त्री, जगन्सार, सगीतकगान्धर्व, बाल-

---

[1] पिगल नागमुनि, पिंगलच्छन्द सूत्रम्, २ ५.

भुजगललित, चड, शृगार, पवन, हरिणकुल, अकणिका, धनराजिका ( हेला ), अजनिका, वसन्ततिलक, पृथिवी, प्रियवदा ( अनन्तकोकिला ), पुष्फमाल, पतिया, शालिनी, विद्युन्माला, यथोद्धता, कौस्तुभ ( तोणक ), अशोकमालिनी इत्यादि ।

कवि लक्खण ने जिणदत्तचरिउ मे वार्णिक-मात्रिक दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है

विलासिणी, मदनावतार, चित्तगया, मोत्तियादाम, पिंगल, विचित्त-मणाहरा, आरणाल, वस्तु, खडय, जभेट्टिया, भुजगप्पयाउ, सोमराजी, सग्गिणी, पमाणिया, पोमणी, चच्चर, पचचामर, णराच, तिभगिणिया, रमणीलता, समाणिया, चित्तिया, भमरपय, भोणय, अमरपुरसुन्दरी, लहुमत्तियसिगिणी, ललिता इत्यादि ।

पउमचरिउ मे गन्दोकधारा, द्विपदी, हेलाद्विपदी, मजरी, शाल-भाजिका, आरणाल, जभेदिया, पद्धडिका, वदनक, पाराणक, मदनावतार, विलासिनी, प्रमाणिका, समानिका, भुजगप्रयात आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है ।

अपभ्रश के उक्त छन्दो की एक लम्वी तालिका प्रस्तुत करने का मात्र यह उद्‌देश्य रहा है कि अपभ्रश काव्यो मे प्रयुक्त अधिकाश छन्दो की जानकारी हो सके । इन छन्दो के लक्षण या परिभापा देने का उद्देश्य नही है । यो अपभ्रश के जिन काव्यो का सम्पादन हो चुका है उनके सम्पादको ने अपनी भूमिका अथवा प्रस्तावना मे सम्पादित काव्य के छन्दो पर भी विचार किया है । उदाहरणार्थ—भविसयत्तकहा ( पृ० २८–३६ ), णायकुमारचरिउ ( पृ० ५७–६२ ), करकडुचरिउ ( पृ० ४९ ), जम्वूसामिचरिउ (पृ० १०१–१०७), मयणपराजयचरिउ ( पृ० ७१–७७ ) आदि हमारे सामने है ।

अपभ्रश काव्य कडवकवद्ध अधिक लिखे गये । अपभ्रश काव्यो मे सर्ग की जगह प्राय सन्धि का व्यवहार किया जाता है। प्रत्येक सधि मे अनेक कडवक होते है और एक कडवक आठ यमको का तथा एक यमक दो पदो का होता है। एक पद मे, यदि यह पद्धडियावद्ध

हो तो, सोलह मात्राएँ होती है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार चार पद्धडियो यानी आठ पंक्तियो का कडवक होता है। अपभ्रंश काव्यो मे चौपाई का प्रयोग प्रारम्भिक अवस्था मे पद्धडियो की अपेक्षा कम हुआ है। पद्धडिया छन्दो मे श्रेष्ठ और मन को प्रसन्न करने वाला माना जाता था। स्वयभू कवि ने लिखा है कि रासावन्ध मे घत्ता छड्डणिआ और पद्धडिया के प्रयोग से जनमन-अभिराम हो जाता है

घत्ता छड्डणिआहि पद्धडियाहि सुअण्ण रूए हि।
रासावधो कव्वे जणमण अहिरामओ होहि ॥[1]

पुहकर ने रसरतन मे लिखा है कि जिस प्रकार समस्त छन्दो मे पद्धरी छन्द शोभित होता है वैसे ही पूर्ण कलाओ से युक्त चन्द्र शोभित हो रहा था

रतिनाथ देषि तहा धवल धाम।
मनि मुक्ति जटित नैननि विराम ॥
नवसत कलानि मिलि लसत चद।
जिहि छंद समत पद्धरी छद ॥ २४ ॥—स्वप्न, पृ० ३१

अपभ्रंश कथाकाव्य भविसयत्तकहा मे पद्धरि छद का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। वहाँ इसका प्रयोग कडवक विधान के लिए हुआ है। कडवक के अन्त मे घत्ता प्राय रखा गया है। पद्धरि के चार पाद और प्रत्येक पाद १६ मात्राओ का होता है। उदाहरण के लिए भविसयत्त-कहा का पद्धरि छद देखिए

वित्थारिव लोयणदल विसाल। उल्लवइ हसेविणु कयणमाल ॥
आयहो आए फिर कवणु कज्जु। हुतउ पडिउत्तरु देमि अज्जु ॥

उक्त पद्धरि छद मे चार पाद और प्रत्येक पाद मे १६ मात्राए है। भविसयत्तकहा मे अलिल्लह छद का भी प्रयोग हुआ है जो बाद के हिन्दी काव्यो मे आकर अरिल्ल छद के नाम से जाना गया। पुष्पदत ने

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० १००

णायकुमारचरिउ, कनकामर ने करकंडुचरिउ एवं अन्य अपभ्रंश कवियों ने पद्धरि छंद का प्रयोग कडवक विधान के लिए किया है। करकंडुचरिउ का एक उदाहरण देखिए

जहिं सरवरिउग्गयपकयाइं।
ण धरणि वयणि णयणुल्लयाइं ॥—पृ० ४

जिस प्रकार अपभ्रंश मे ८ यमकों अर्थात् एक कडवक के बाद घत्ता देने को प्रणाली थी उसी प्रकार हिन्दी के दोहा-चौपाई मे लिखे जाने वाले पदमावत, रामचरितमानस आदि ग्रन्थों मे ७ चौपाई के बाद एक दोहा देने की प्रणाली चल पड़ी।

अपभ्रंश मे जो स्थान पद्धरि का था वही हिन्दी मे चौपाई को मिला। चौपाई छंद हिन्दी प्रेमाख्यानक कवियों का प्रिय छंद रहा है। कुतुबन की मृगावती मे प्रयुक्त छन्दों को चौपाई और दोहरा कहा गया है। उदाहरण के लिए

मृगावती सुनि जिअ रहसाई। कामा जनु मधवानल पाई॥
—सूफी काव्यसग्रह, पृ० ९८

जायसी, मझन, उसमान, जान आदि कवियों ने क्रमश पदमावत, मधुमालती, चित्रावली और कनकावती मे इस छंद का प्रयोग किया है। चौपाई छंद के सम्राट तुलसीदास जी हुए जिन्होंने रामचरितमानस मे इस छंद का सर्वाधिक प्रयोग किया। चौपाई और पद्धरि छंद मूलत कथाकाव्यों मे प्रयुक्त होने वाले छंद हैं। दोहा मात्रिक छंद है। इसके प्रथम और तृतीय चरण मे १३-१३ मात्राएं एवं द्वितीय और चतुर्थ चरण मे ११-११ मात्राएं होती हैं। जायसीकृत पदमावत मे सात चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम रखा है। परन्तु उसमे ऐसे दोहे ही मिलते हैं जिनमे प्रथम तृतीय चरणों मे १३-१३ मात्राएं नहीं मिलती। १३ मात्राओं के स्थान पर कहीं १६ मात्राएं भी मिलती हैं। वास्तव मे यह अपभ्रंश का ही प्रभाव समझना चाहिये। अपभ्रंश काव्यों मे पद्धडिका (१६ मात्राओं का छंद), वदनक (भी १६ मात्राओं का) और पारणक (१५ मात्राओं का) छंदों को कडवकों मे प्रयुक्त किया गया है। छंदों की विभिन्नता की परम्परा अपभ्रंश-कालीन है।

कवि पुहकर ने रसरतन मे लगभग पैंतीस छंदों का प्रयोग किया है

छप्पय, दोहा, सोमकांति, घाटक, गाग्दूल, चौपही, दंडक, सवैया, तोटक, पद्धरी, प्रयगम, मोतीदाम, सोरठा, कुडलिया, कवित्त, प्रमानिक, गीतिका, कठभूषण, भुजगप्रयात, सोरठा-दोहा, वथूह, पैडी, गुनदीपक, गीतमालती, मोदिका, तोटकी, कामिनीमोहन, नाराच, गाथा, भुजगी, लीलावती, दुर्मिला, त्रिभगी, शखधारा, चद्रजोति ।

नयनदी ने जिन छदो का प्रयोग किया था उनकी तालिका पीछे दी जा चुकी है। रसरतनकार ने जिन छदो का प्रयोग किया है उनमे से गाथा, दोहा, पद्धरी, भुजगप्रयात, त्रिभगी, चौपही और मोतीदाम आदि अनेक छदो का नयनदी आदि पूर्ववर्ती कवियो ने प्रयोग किया है।

**प्रयगम छद** यह २१ मात्राओ का छद होता है। ८, १३ पर यति, आदि मे गुरु और अन्त मे जगण होता है

> उठत उरोज नवीन छीन कटि केहरी ।
> नूपुर की झनकार जराऊ जेहरी ॥
> कज तै कोमल चरन अरुन अति वाम के ।
> पूरित पचहु बान तरक्कस काम के ॥ ३३९ ॥

—रसरतन, पृ० १६१

वथूह छद डा० शिवप्रसाद सिंह इसे रोला का ही एक रूप मानते है।[1] रोला के सदर्भ मे डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी का मत है कि 'प्राचीन छद ग्रन्थो मे कोई रोला नामक छद ही नही मिलता। हा, काव्य, वस्तु, वदनक, वत्थुओ और वत्थुवरण लगभग इसी के अनुरूप है।'[2] छद पयोनिधि भाषा मे लिखा है कि उपदोहा के प्रथम दो चरणो के योग के समान चार चरण रखने से उस छद को (रोला) रोलावत्थू कहते है।[3] रोलावत्थू को दोहावत्थू का भेद माना गया है जिसके आनदवत्थू, मगलवत्थू, रायवत्थू और मोहनवत्थू ये चार भेद है।[4] रस-

---

१ चदवरदाई और उनका काव्य, पृ० २३६

२ हरदेवदास, छद पयोनिधि भाषा, ३ १९३-१९४.

३ वही, ७ १९२

४ पउमचरिउ, सपा०—डा० हरिवल्लभ भायाणी, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, पृ० ७८

रतन के १४ + १० = २४ मात्राओ के इस छद का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है

> कासी कौसल कारनाट, कनवज्ज कलिंजर।
> कामरूप कैकय कलिंग, केदार कछघर॥

कुछ छन्द सस्कृत से अपभ्रश मे ठीक उसी नाम से ले लिए गए और कुछ का कालभेद मे नामपरिवर्तन तो हुआ परन्तु रूपपरिवर्तन नही हुआ। अपभ्रश-हिन्दी छन्दो के विपय मे भी उक्त वात लागू होती है। सस्कृत का जो सुग्विणी छन्द है वही कामिनीमोहन नाम से सामने आया।

कामिनीमोहन छन्द : इसमे चार रगण होते हैं। अपभ्रश-कवि यश - कीर्ति का छन्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत है

> अस्सथामो मुऊ तेहि ता उत्तऊ।
> मुच्छिऊ दोण धनु वाण हत्थह चुऊ।
> चेयणा या लहिवि कस्सा वि णउ पत्तिउ।
> सच्चवाई य तउ धम्म सुउ पुच्छिउ॥

रसरतन मे कामिनीमोहन छद का प्रयोग हुआ है

देषि सोभा रही रीझि प्यारी प्रिया। मग्ग भूलै चलै चित्त हारै त्रिया।
सग छाड़ै मृगी जेमि भूली फिरै। हार टूटै हियै भूमि मोती गिरै॥१२५॥

एक जानै नहीं छोन है अचरा। मौन रीति चली सीस मजै धरा।
एक टक्कै रही अषिया जोहन। रूप देषौ जहा कामिनी मोहन॥१२८॥

—रसरतन, पृ० १४३.

पुहकर ने जिम छन्द मे वर्णन किया है उसी मे उस छन्द का नामोल्लेख और कही-कही लक्षण भी दे दिया है। कामिनीमोहन यहाँ दो अर्थो मे प्रयुक्त होता है एक प्रासगिक अर्थ के लिए, दूसरा छन्द के नामोल्लेख के लिए। इसी प्रकार भुजगप्रयात 'भुजगा' शव्द द्वारा व्यक्त किया गया है .

> वजै दुंदुभी ढोल भेरी मृदगा।
> सुनै सोर पाताल मध्ये भुजगा॥ १९६॥

कंठभूषण छंद में भी उपर्युक्त प्रणाली अपनाई गई है

कंठ अभूषन के वह नामा ।
यो सुमरे सुप प्रीतम स्यामा ॥ १७० ॥
भुजा जनु नाग विराजत वाम ।
उरस्थल सोभित मोतिय दाम ॥ ३८ ॥
वत्तीसौ लच्छिन लच्छि लसै ।
तन ज्यो गुन अच्छरि लीलवती ॥

पुहकर ने छद के नामोल्लेख के साथ ही यहा उसका लक्षण भी बता दिया है कि यह ३२ अक्षर का छद है। पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य मे इस प्रकार के कई उदाहरण मिल सकते है। जैसे नयनदी ने प्रासगिक विषय के साथ ही छद के नाम का भी उल्लेख कर दिया है

वसततिलक सिंहोद्धता वा णामेद छन्द
तुरगति मदनो वा छन्द
प्रियवदा अनन्तकोकिला वा नामेद छन्द. ॥

प्रेमाख्यानको मे विविध छन्दो का प्रयोग प्राय विशुद्ध भारतीय प्रेमाख्यानको मे हुआ है। यो छन्दोगत परिवर्तन भी होते रहे। दोहा अपभ्रंश का पर्यायवाची ही बन गया। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'यह ( दोहा ) नवी-दसवी शताब्दी मे बहुत लोकप्रिय हो गया था। इस छन्द मे नई बात यह है कि इसमे तुक मिलाये जाते हैं। सस्कृत-प्राकृत मे तुक मिलाने की प्रथा नही थी। दोहा वह पहला छन्द है, जिसमे तुक मिलाने का प्रयत्न हुआ और आगे चलकर एक भी ऐसी कविता नही लिखी गई जिसमे तुक मिलाने की प्रथा न हो। इस प्रकार अपभ्रंश केवल नवीन छन्द लेकर ही नही आई, बिल्कुल नवीन साहित्यिक कारीगरी लेकर भी आविर्भूत हुई।'[1] स्पष्ट है कि कविता मे तुकबन्दी का प्रभाव सीधा अपभ्रंश से आया। यह लिखा जा चुका है कि छन्दोगत परिवर्तन प्रारम्भ से ही होते रहे। उनमे कुछ नवीन छन्द भी प्रकाश मे आये और कुछ के नाम मात्र बदल गए। अपभ्रंश मे विषय के अनुसार छन्द रखने की प्रथा थी। यदि कवि को युद्ध का वर्णन करना है तो वह ऐसे छन्द और शब्दयोजना का गठन करता है जिससे ध्वन्यात्मक रव से

---

१ हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ९३

युद्ध-स्थल का चित्र प्रस्तुत हो सके। वही प्रवृत्ति हिन्दी प्रेमाख्यानको मे भी अपनाई गयी। वैसी ही तुकवन्दी और शब्द-योजना।

हिन्दी प्रेमाख्यानको की वर्णन-परिपाटी अपभ्रंश कथाकाव्यो की नीव पर ही खडी हुई। इनकी कथानक-रूढियो मे तादात्म्य के सम्वन्ध मे पहले लिखा जा चुका है। यह भी वर्णन परिपाटी का अंग था। प्रेम होने-मे साक्षात् दर्शन, चित्र-दर्शन अथवा सौन्दर्य की प्रशंसा सुनना दोनो काव्यो मे कारण माना जाता रहा है। जिस नारी से नायक का प्रेम-सम्बन्ध हुआ है उसके नख-शिख का वर्णन ये कवि अवश्य करते थे। सुदसण-चरिउ मे मनोरमा का रूप-वर्णन करते समय कवि को उपमाए ही नही मिल रही थी। वह लिखता है कि जो मनोरमा लक्ष्मी के समान है उसकी तुलना किससे की जा सकती है? जिसकी चाल से लज्जित होकर समस्त हस मानस मे चले गये। जिसके अतिकोमल अरुण चरणो को देखकर रक्त कमल जल मे प्रविष्ट हो गए। जिसके पैरो के नखो की काति से पराजित हो नक्षत्र आकाश मे चले गये । जिसको जघाओ की कदली से तुलना करने पर वह फीका पड गया आदि

जा लच्छि समा तहे काउ जाहे गइए सकलत्तइ।
णिरु णिज्जियइं, णं लज्जियउ हसइ माणसे पत्तइं ॥ ४ १.
जाहे चरण सारूण अइ कोमल, पेछेवि जले पइट्ठ रत्तुप्पल।
जाहें पायणह मणिहि विचित्तइं, णिरि इं सहे ठिय णक्खत्तइ ।
जाहि लडह जंघहि उहामिउं, रभउ णीसारउ होएवि थिउ।
जाहे णियंबु विंवुव अलहते, परिसेसियउ अंगु रह कते॥

इस प्रकार के नखशिख वर्णनो मे पदमावत आदि हिन्दी प्रेमाख्यानक भी पीछे नही रहे। इनकी भी वही परिपाटी रही आई। इन सव वातों के अतिरिक्त दोनो ही प्रकार के प्रेमाख्यानको मे प्रेमोत्पत्ति, प्रेमोत्थान, मिलनस्थल आदि की प्रक्रियाए समान रूप से चलती है। नायक का योगी होकर घूमना, किसी वाद्य विशेष द्वारा प्रेमिका को अपने आने की खबर देने जैसी घटनाए कही-कही हूवहू मिल जाती हैं। नायिका की विरहा-वस्था मे सखियो द्वारा उपचार किया जाना, समझाया जाना और सहा-यता करना ये सव भी सामान्य रूप से दोनो मे आते है। रसरतन मे नायिका प्रथम मिलने से भयभीत होती है तो सखिया पहले ही समझाती

है और पति की सेज तक ले जाकर छोड आती है। कुछ कथानकों को उदाहरणस्वरूप सामने रखकर विचार करने पर वर्णन-परिपाटी का प्रश्न और भी स्पष्ट हो जायेगा। भविसयत्तकहा मे श्रुतपचमी का महत्त्व बताया गया है। कथा मे सज्जन-दुर्जन प्रसग से लेकर कथावतार, उद्देश्य आदि कथानक-रूढियो तक का पालन किया गया है। इस प्रेमाख्यानक का पूर्वार्ध रोमाचक और साहसिक यात्रा-वर्णनों से परिपूर्ण है। उत्तरार्द्ध मे युद्ध तथा पूर्व भवो का वर्णन है। इस प्रकार यह किसी लोकप्रचलित कथानक पर आधारित कथा मालूम होती है। यदि हम भविष्यदत्तकथा और रत्नसेन-पद्मावती की तुलना करें तो दोनो की कथापरिपाटियो मे अधिकाशत साम्य प्रतीत होगा। जिस प्रकार का प्रेम-चित्रण भविष्यदत्तकथा मे है, ठीक उसी प्रकार का चित्रण रत्नसेन-पद्मावती की कथा मे है। रत्नसेन की रानी पद्मिनी का हरण करने का प्रयत्न अलाउद्दीन द्वारा किया जाता है और इधर भविष्यदत्त की स्त्री का हरण उसके सौतेले भाई वधुदत्त द्वारा कर लिया जाता है। कालक्रम-घटनाक्रम के अनुसार भविष्यदत्त को उसकी स्त्री वापिस मिल जाती है।

करकडुचरिउ नामक एक अन्य अपभ्रश काव्य ऐसा है जिसकी कथा अत्यधिक रोचक है। इसकी कथा का उल्लेख पाचवें अध्याय मे किया जा चुका है परन्तु तुलनात्मक अध्ययन को दृष्टिगत रखते हुए यहाँ उसे दुहराना पडेगा। अगदेश की चपापुरी मे धाडीवाहन राजा राज्य करते थे। एक बार वे कुसुमपुर गये। वहाँ पद्मावती नाम की एक युवती को देखकर मोहित हो गए। उसके साथ उन्होने पाणिग्रहण कर लिया। रानी गर्भवती हुई और उसे दोहद उत्पन्न हुआ। इसी बीच वह जगल मे भटक गई और समय पर श्मशान मे करकडु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

कुछ समय बाद करकडु का विवाह मदनावली से हो गया। न पहचानने के कारण पिता-पुत्र मे युद्ध हुआ जिसका वर्णन लव-कुश और राम के युद्ध का स्मरण कराये बिना नही रहता। करकडु का राज्यविस्तार हुआ। वे सिंहलद्वीप पहुँचे और वहा रतिवेगा से विवाह किया। जलमार्ग से लौट रहे थे तब किसी विद्याधरपुत्री द्वारा हरण कर लिए गए। इस प्रकार की मुख्य कथा मे नौ अवान्तर कथाए भी हैं।

उक्त कथानक एव जायसी के पदमावत के कथानक की तुलना से एक परिपाटी की शृखला जुड जाती है। करकडुचरिउ मे नायक सिंहलद्वीप की यात्रा करता है, वहा की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह करता है, समुद्र मे उससे विछोह तथा रतिवेगा को पद्मावती का आश्वासन आदि घटनाए जायसी के पदमावत की निम्न घटनाओ से पर्याप्त मेल खाती हैं—सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के रूप-गुणो का बखान सुनकर चित्तौड का राजा रतनसेन उसपर मोहित हो जाता है, वह यात्रा करता है, उसका विवाह होना है और समुद्रमार्ग से लौटने पर दोनो का वियोग भी होता है। पुन मिलन आदि की घटनाए ऐसी है जो ज्यो की त्यो मिल जाती है।

रामचरितमानस मे राम-कथा की तुलसीदास ने एक सरोवर और सरिता से तुलना की है। सरोवर की तुलना देखिए

सुठि सुन्दर संवाद वर विरचें बुद्धि विचारि।
तेहि एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

सप्त प्रवध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना।
रघुपति महिमा अनुगन अवाधा। वरनव सोइ वर वारि अगाधा॥

राम सीय जस सलिल सुधा सम। उपमा वीचि विलास मनोरम।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मजु मनि सीप सुहाई॥

छद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ वहुरंग कमल कुल सोहा।
नरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुवासा॥

सुकृत पुज मंजुल अलि माला। ग्यान विराग विचार मराला।
धुनि अवरेख कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते वहु भांती॥

अरथ धरम कामादिक चारी। कहव ग्यान विग्यान विचारी।
नवरस जप तप जोग विरागा। ते सव जल चर चारु तडागा॥

—वालकाड, ३७

अव रामकथा की सरिता से तुलना प्रस्तुत है

श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहु कूल।
सत सभा अनुपम अवध सकल सुमगल मूल॥

रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई।
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन॥
जुग विच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुविरति विचारा।
त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु सुमुहानी॥
मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही।
बिच-बिच कथा विचित्र विभागा। जनु सरि तीर तीर बन भागा॥
उमा महेस बिवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाती।
रघुवर जनम अनद बधाई। भवर तरग मनोहर ताई॥
बालचरित चहु बधु के बनज विपुल बहुरग।
नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर वारि विहग॥

—बालकाड, ३९-४०

स्वयभू ने भी अपने पउमचरिउ मे रामकथा की तुलना सरिता से करते हुए लिखा है कि यह रामकथारूपी सरिता क्रम से चली आ रही है। इसमे अक्षरसमूह सुन्दर जलसमूह है, सुन्दर अलकार और शब्द मत्स्यगृह है, दीर्घ समास वक्र प्रवाह है, सस्कृत और प्राकृत अलकृत पुलिन है, देशी भाषा दोनो उज्ज्वल तट हैं, कवि से प्रयुक्त कठिन और सघन शब्द शिलातल के समान हैं, अर्थबहुलता उठती हुई तरगे हैं—इस प्रकार यह रामकथा शोभित होती है

वड्ढमाण मुह कुहर विणिग्गय राम कहाणइ एह कमागय।
अक्खर पास जलोह मणोहर सुअलकार सद्द मदोहर॥
दीहसमास पवाहा वकिय सक्कय पायय पुलिणालकिय।
देसी भासा उभय जडुज्जल कवि दुक्कर घण सद्द सि यल॥
अत्थ बहल कल्लोलाणिट्ठिय आसासय सम तूह परिट्ठिय।
एह रामकह सरि सोहती गणहर देवहिं दिट्ठ वहती॥

—पउमचरिउ, १ २.

वर्णन की परिपाटी मे भी समानता पाई जाती है, इसके लिये उक्त प्रमाण से अच्छा कौन-सा प्रमाण दिया जा सकता है।

अपभ्रश कथाकाव्यो एव हिन्दी प्रेमाख्यानको के मनोरजन के साधनो, सास्कृतिक, सामाजिक उपादानो के वर्णनप्रसंगो मे भी कदाचित् मूल-

भूत अन्तर दृष्टिगोचर नही होता। अपभ्रंश कथाकाव्यो मे जल-क्रीडा, उद्यान-क्रीडा, आखेट, गोपियो के रास व चर्चरी नृत्य, वेश्याओ द्वारा गायन व नृत्य, वेश्यागमन और द्यूतक्रीडा आदि मनोरजन के साधनो का उल्लेख हुआ है। वीर कवि (११वी शती) के जम्बूसामिचरिउ मे जिनदास नामक पात्र प्रतिदिन घर से द्रव्य चुराकर वेश्या का उपभोग करता और डिम व डक्का वजते हुए सजी दुकानो मे मद्य पीता तथा जुए का एक वडा फलक सजाकर ककरो के स्वर और ज्वारियो की विरस ध्वनियो के साथ जुआ खेलता

**अणुदिणु दविणु घराउ हरेप्पिणु वेसायणु भुंजइ त देप्पिणु।**
**वज्जिय डक्क-हुडुक्क समाणए पियइ मज्जु विरइय-आवाणए॥**
—४ २ १

उक्त काव्य मे ही वेश्यागामी का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है—'सुदृढ गाठ से अपने परिधान मे शलाका लगाये हुए, पृथुल कटितट पर छुरी लटकाये हुए, सिर पर घना जटा-जूट वाधे हुए, अगरू आदि सुगन्धित द्रव्य से पवन को सुगन्धित करते हुए, श्वेत ताम्बूल पत्र का वोडा चवाते हुए, दाहिने हाथ से तलवार घुमाते हुए, कामलता नामक कामिनी को घर छोडकर प्रतिदिन वेश्याहाट को देखा करता था। जहाँ वेश्याएँ अत्यधिक सुडौल-रूपवान व्यक्ति को भी धन-हीन हो जाने पर कुरूप मानती हैं ' आदि।[1] स्पष्ट है कि उस समय वेश्यागमन खुलेरूप मे मनोरजन का साधन था और शासन का उसपर कोई प्रतिवन्ध नही था। णायकुमारचरिउ (पृ० ४८-४९), कीर्तिलता (पृ० २५८-६०) आदि अपभ्रंश काव्यो मे वेश्याहाटो की विस्तृत चर्चा की गई है।

सन्देशरासक मे मनोरजन के साधनो का उल्लेख करते हुए अद्दह-माण ने लिखा है

कह व ठाइ चउवेइहि वेउ पपासियइ।
कह वहुरुवि णिवद्धउ रासउ भासियइ॥
कह व ठाइ सुदयवच्छ कत्थ व नलचरिउ।
कत्थ व विविह विणोइह भारहु उच्चरिउ॥

---

१ जम्बूसामिचरिउ, ९ १२-१३, पृ० १८०–१८४

कह व ठाइ आसीसिय चाइहि दयवरिहि ।
रामायणु अहिणवियअइ कत्थविकय वरिहि ॥

—सदेशरासक, ४३-४४.

अर्थात् कही चारो वेदो को जानने वाले पाठ कर रहे है । कही विविध रूप धारण करने वाले बहुरूपिये या बहुरूप धारण करने वालो द्वारा रासकपाठ हो रहा है, कही सदयवत्स और नल की कथा कही जा रही है । कही विविध विनोद के साथ महाभारत की कथा हो रही है और कही रामायण की कथा हो रही है ।

सगीत-नृत्य आदि भी मनोरजन के साधन थे । चर्चरी, चाचरि अथवा चाचरि जो कि ताल एव नृत्य के साथ विशेष उत्सवादि मे गाई जाती थी—सामूहिक मनोरजन का साधन थी । विक्रमोर्वशीय ( चतुर्थ अक ), समरादित्यकथा आदि रचनाओ मे इसका उल्लेख मिलता है । वीर कवि ने जबुसामिचरिउ मे इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि महाकवि देवदत्त ने सरस चच्चरिया बन्ध मे शातिनाथ का महान् यशोगान किया तथा जिन भगवान् के चरणो की सेविका अम्बादेवी का रास रचा जिसका जिन भगवान् के सेवको द्वारा नृत्याभिनय भी किया जाता है

**चच्चरियबाधि विरहउ सरसु गाइज्जइ सतिउ तारजसु ।**
**तच्चिज्जइ जिणपय सेवयहि किउ रासउ अबादेवयहि ॥ १ ४**

सुदसणचरिउ मे नयनन्दी ने चच्चरि का उल्लेख किया है

**जिण हरेसु आढविय सुच्चरि ।**
**करहि तरुणि सवियारी चच्चरि ॥७.५**

उक्त उद्धरणो से इतना स्पष्ट है कि यह मनोरजन का ही एक साधन था । हिन्दी प्रेमाख्यानक पदमावत, रसरतन आदि मे चच्चरि अथवा चाचरि का वही रूप विद्यमान है जो उसके पूर्व था । यहा पदमावत से उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं

पिउ सजोग धनि जोवन वारी । भवर पुहुप सग करहि धमारी ॥
होइ फागु भलि चाचरि जोरी । विरह जराइ दीन्ह जसि होरी ॥

—पदमावत, षड्ऋतुवर्णन, ३३५ ५–६

नागमतोवियोग खड मे भी चाचरि का इसी अर्थ मे उल्लेख हुआ है

फागु करहिं सब चाचरि जोरी ॥
मोहि तन लाइ दीन्हि जस होरी ॥ —वही, ३५२ ५.

पुहकर कवि ने मनोरजन के साधन के रूप मे ही चाचरि का उल्लेख किया है

गीत नाद चाचरि चित लावहु । काव्य कथा कहि काल गमावहु ।
वात सरस कवि कहै सव कोई । इक सिगार रस वरजित सोई ॥
—आदि खड, १५.

जलक्रीडा, उद्यानक्रीडा, वेश्यावर्णन आदि के उदाहरण वस्तुवर्णन के अन्तर्गत दिये गये है अतः यहाँ मनोरजन के साधनो मे उनको उद्धृत नही किया जा रहा है। कदाचित् जिन मनोरजन के साधनो का ऊपर उल्लेख किया गया है वे सामूहिक साधन हैं। व्यक्तिगत साधनो मे कुछ लोग प्रेमकथाओ को वाचकर अथवा दूसरे से सुनकर भी समय यापन कर लिया करते थे। बनारसीदास जी ने अपने अर्ध-कथानक मे इसकी चर्चा भी की है

तब घर मे वैठे रहे, जाहि न हाट बाजार ।
मधुमालति मिरगावति, पोथी दोइ उदार ॥ ३३५ ॥
ते वाचहिं रजनी समै, आवहिं नर दस बीस ।
गावहिं अरु बातें करहिं, नित उठि देहि असीस ॥ ३३६ ॥
—पृ० ३८

पदमावत मे रतनसेन के शिकार को जाने का उल्लेख एव शतरज के खेल का वर्णन ये सब मनोरजन के साधनो के अन्तर्गत आते है। इस प्रकार अपभ्रश एव हिन्दी प्रेमाख्यानको की सास्कृतिक पृष्ठभूमि, कथा-विन्यास, चरित्र, कथोद्देश्य, वस्तुवर्णन और मोटिफ आदि के तुलनात्मक अध्ययन के बाद हम कह सकते है कि हिन्दी प्रेमाख्यानको का शिल्प अपभ्रश कथाकाव्यो के शिल्प का ही ऐतिहासिक विकास है।

अध्याय ७

# उपसंहार

अपभ्रश और हिन्दी के प्रेमाख्यानको के इस अध्ययन से जो निष्कर्ष निकले और जो उपलब्धियाँ हुईं उन्हें सक्षेप मे क्रमिक रूप से इस प्रकार रखा जा सकता है

१ हिन्दी प्रेमाख्यानक अपनी सम्पूर्ण आत्मा और कलेवरगत विशिष्टताओ के कारण हमारे साहित्य की एक बहुत बडी उपलब्धि है। इस काव्यरूप के भीतर प्राचीन और नवीन अनेक प्रकार के तत्त्वो का मिश्रण हुआ है। यह मिश्रण इस काव्यरूप को पुराने काव्यरूपो के जोड-तोड से बना एक अलग काव्यरूप ही नही बनाता बल्कि इस मिश्रण की रासायनिक प्रक्रिया ने हिन्दी प्रेमाख्यानक के रूप मे एक ऐसी विधा ( फार्म ) को जन्म दिया जो किंचित् पुराने उपादानो को स्वीकार करते हुए भी नई लोकात्मक भाव-भूमियो का स्पर्श करने वाली बिल्कुल विलक्षण शिल्पभगिमा वाली वस्तु बन गई।

यह काव्यरूप हिन्दी मे पूर्ण विकास को प्राप्त हुआ, किन्तु इसका बीजबिन्दु-वपन और अकुरोद्भव अपभ्रश साहित्य मे हो चुका था। ऐसा स्वाभाविक भी है। क्योकि अपभ्रश न केवल हिन्दी की जननी भाषा है बल्कि लोकभाषा के रूप मे हिन्दी का आगे चलकर जो विकास हुआ, उसकी पूर्ववर्ती पीठिका भी यही तैयार हुई। अनेकानेक विद्वानो ने अपभ्रश को जो लोकभाषा कहा है, उसके पीछे यही मन्तव्य छिपा हुआ है। अपभ्रश प्राकृत, पालि और सस्कृत की तुलना मे कही अधिक लोकजीवनसम्पृक्त भाषा रही। परिणामत न केवल उसके भाषिक कलेवर मे बल्कि वस्तुगत आत्मा और शैली-शिल्प आदि के भीतर भी लोकतत्त्वो का प्रचुर समन्वय हुआ। हेमचन्द्राचार्य जब अपभ्रश के वैयाकरणिक नियमों का आख्यान करते

हुए 'लोकतोऽवगन्तव्या, कहते हैं, तो वे प्रकारान्तर से इसी बात की पुष्टि करते हैं।

अपभ्रंश का पूरा कथा-साहित्य, विशेषकर प्रेमाश्रित कथा-साहित्य इसी लोकमानस की देन है। हिन्दी के प्रेमाख्यानकों की पृष्ठभूमि के रूप में इसका अध्ययन प्रेमाख्यानकों के अध्ययन की अनेकानेक समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकता है। इस अध्ययन ने निम्न तत्त्वों के आधार पर इस मान्यता की साधार पुष्टि की है

२ संस्कृत में कथा-आख्यायिका का वृहत् साहित्य उपलब्ध है। कादम्बरी, दशकुमारचरित, वृहद्कथा तथा हर्षचरित आदि को कौन नकार सकता है। इन कथाओं में रोमांस, प्रेम के नाना पक्षों तथा जन्म-जन्मान्तर की अनेक घाटियों में भटकती आत्माओं के मिलन का चटक रंगीन और धूमिल उदास करने वाला बहुविध वर्णन सर्वत्र मिलेगा। संस्कृत के आलंकारिकों ने इन कथा-आख्यायिकाओं को आधार बनाकर इनके लक्षण-निरूपण का भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, किन्तु क्या रुद्रट, भामह, मम्मट, विश्वनाथ आदि द्वारा निरूपित लक्षण संस्कृत के कथा-साहित्य में यथावत् मिल जाते हैं? ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यों-ज्यों कालसरिता बढ़ती गयी और ज्यों-ज्यों उसके प्रवाह में नये-नये तत्त्व और उपादान बहकर आते गये त्यों-त्यों आचार्यों के लक्षणनिरूपण भी बदलते गये। अपभ्रंश कथाओं में ऐसे अनेकानेक उपादान दिखाई पड़ते हैं जो संस्कृत कथा-साहित्य में दुर्लभ हैं, इसीलिए इन आचार्यों को कथाकाव्य के लक्षणों के निरूपण में अनेक ऐसी बातों का समावेश करना पड़ा जो संस्कृतेतर लोकभाषा में गृहीत होने वाले उपादानों को बाँध सके। हेमचन्द्राचार्य ने तो स्पष्ट ही संस्कृत कथा और संस्कृतभिन्न कथा को बिलगाने का प्रयत्न किया। अन्य आचार्यों के लक्षणग्रन्थों में भी यह विभाजन सांकेतिक ही सही वर्तमान अवश्य है।

३ अपभ्रंश कथा में गृहीत लक्षण आगे चलकर लोकभाषा हिन्दी के प्रेमाख्यानकों में पूरी तरह विकसित और पल्लवित हुए। दूसरे अध्याय के अध्ययन में इस बात की पुरस्सर पुष्टि हो जाती है।

हिन्दी मे प्रेमाख्यानक प्राय दो प्रकार के लिखे गये एक सूफी कवियो का मसनवी पद्धति पर आधारित, दूसरे शुद्ध भारतीय पद्धति के। इन दोनो प्रकार के प्रेमाख्यानको का शैलीशिल्प बहुत साम्य रखता है। ऊपर-ऊपर से देखने पर सूफी प्रेमाख्यान दोहे-चौपाई मे लिखे गये, उनमे छन्दवैविध्य कम है, लोग उनकी रचना के पीछे मसनवी शैली का प्रभाव भी देखते है, पर मगलाचरण, गुरुवन्दना, कविवंशपरिचय, प्रेम की विभिन्न अवस्थाए, वस्तुचित्रण, नगर, भवन, चित्रकशाला, अश्व, रथ तथा युद्ध के दूसरे उपादान, सरोवर, बाग-बगीचे के वर्णनो के अलावा कथाभिप्रायो की दृष्टि से भी ये कथाकाव्य अपभ्रंश कथाओ का अनुसरण करते हुए दिखाई पडते है। शुद्ध हिन्दू प्रेमाख्यानको मे तो यह प्रभाव पर्याप्त स्पष्ट और घनिष्ठ रूप से परिलक्षित होता ही है।

४ प्रतीकयोजना सूफी काव्यो की एकदम नई वस्तु मानी जाती है और उस पर अनेकानेक विद्वानो ने बहुत विस्तार से विचार भी किया है, किन्तु क्या प्रतीकविद्या अभारतीय है? प्रतीक भारतीय दर्शन, धर्म और शास्त्रो के बहुपरिचित तत्त्व है जिनका उपयोग हमारे देश मे ऋग्वेद से लेकर आज तक अनेकानेक रूपो मे होता रहा है। यह सही है कि दार्शनिक प्रतीको को काव्य का अनिवार्य उपादान बनाने की कोशिश नही की गई। किन्तु क्या बाणभट्ट की कादम्बरी का अच्छोदसरोवर प्रेमह्लद का प्रतीक नही है? क्या कादम्बरी स्वय मासल वासनामूलक प्रेम का और महाश्वेता तप पूत चिन्मय प्रेमतत्त्व का प्रतीक नही है? डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'कादबरी एक सास्कृतिक अध्ययन' मे इस तरह के प्रतीको पर विस्तृत विचार किया है। यह सही है कि सस्कृत साहित्य मे प्रतीकात्मकता लाने का सचेष्ट प्रयत्न कम हुआ। अपभ्रंश मे और भक्ति आन्दोलन से प्रभावित हिन्दी साहित्य मे इस प्रकार का प्रचुर प्रयत्न हुआ है। अपभ्रंश मे तो 'मयणपराजयचरिउ' जैसे काव्य नितान्त प्रतीकात्मक है। अत सूफी कथाकाव्यो की प्रतीक पद्धति को भी अपभ्रंश कथाकाव्यो की प्रतीक पद्धति से सीधे जोडा जा सकता है।

५ अपभ्रंश प्रेमाख्यानको की सीमा मे कई तरह के काव्यरूपो मे लिखे

काव्य समाहित हो जाते है। चरित्र, राम, विलास, पुराण आदि वस्तुत वाह्य कलेवर की विशिष्टताओ को सूचित करने वाले नाम है, इनकी आत्मा मे वे ही शैलीशिल्प के तत्त्व घुले-मिले है जो अपभ्रश की प्रेमकथाओ या हिन्दी प्रेमाख्यानको मे मिलते है। यही पर विस्तार से सस्कृत से अपभ्रश कथाओ को विलगाने वाले उपादानो का विश्लेपण भी किया गया है ताकि यह स्पष्ट हो सके कि ये तत्त्व सस्कृत कथाओ से कितने अलग और हिन्दी प्रेमाख्यानको से कितने निकट है।

६ अपभ्रश और हिन्दी प्रेमाख्यानको का पूरा वस्तुविवेचन इस दृष्टि से किया गया है कि वह अपने भीतर के सभी शिल्पगत रहस्यो को उद्घाटित कर सके। कथाओ का साराश इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है ताकि हम उसमे से कथाशिल्प के सभी तत्त्व, वर्णनपद्धतियाँ आदि छाँट सकें।

७ अन्त मे इन सभी उपादानो का सम्यक् अध्ययन करके यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि हिन्दी के प्रेमाख्यान वस्तुत अपभ्रश कथाकाव्यो मे स्वीकृत पद्धति को पूरी तरह स्वीकार करके चलते है। जहा कुछ भिन्नता है वहाँ विकास के कारण आई है, भिन्नता लाने के लिए नही।

इस दृष्टि से इस प्रबन्ध मे अपभ्रश और हिन्दी प्रेमाख्यानको की पृष्ठभूमि मे विद्यमान सामाजिक, सास्कृतिक स्थितियो का साम्य दिखाते हुए इस बात को स्पष्ट किया गया है कि कथाविन्यास (पुरविन्यास मे तुलना करते हुए), चरित, कथोद्देश्य, वस्तुवर्णन, कथाभिप्राय (मोटिफ), निजधरी तत्त्व मगलाचरण, सर्गनिबन्ध, ऋतुवर्णन, छन्दप्रयोग तथा कथा को भराव देने वाले जीवन के विभिन्न तत्त्व, खेल-क्रीडा, मनोरजन आदि सास्कृतिक मनबहलाव के साधनो के वर्णन मे दोनो के भीतर कितनी समानता है।

इस तरह से यह प्रबध अपभ्रश और हिन्दी प्रेमाख्यानको के बीच की शृखला के नियोजन का कार्य तो करता ही है, दोनो के बीच

की समानधर्मा प्रवृत्तियों के उद्घाटन द्वारा हिन्दी की इस महत्त्वपूर्ण काव्यविधा के अध्ययन के कुछ नये क्षितिज भी उद्घाटित करता है।

शैली और शिल्प को व्यापक अर्थ में प्रस्तुत करते हुए वस्तुत इस प्रबंध के द्वारा लोकभाषा के पूर्व और पश्चात् कालावधि के बीच के अन्तराल को दूर करना ही इस प्रबंध का मुख्य उद्देश्य रहा है।

●

# सहायक ग्रन्थ-सूची

हिन्दी प्रेमाख्यानको की सूची प्रबन्ध के प्रथम अध्याय के अन्त मे सलग्न है। अत उन्हे इस सूची मे उल्लिखित नही किया है।

## हिन्दी-ग्रन्थ


अपभ्रश-साहित्य प्रो० हरिवश कोछड, भारतीय साहित्य मदिर, दिल्ली, वि० स० २०१३

अपभ्रश भाषा का अध्ययन डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव

अर्द्धकथानक बनारसीदास, सपा०—नाथूराम प्रेमी, १९५७

आदिपुराण आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६३

आदिपुराण मे प्रतिपादित भारत डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, वर्णी ग्रन्थ-माला, काशी.

आधुनिक हिन्दी काव्य मे छन्द-योजना डा० पुत्तूलाल शुक्ल

इतिहास-प्रवेश जयचन्द्र विद्यालकार, सरस्वती प्रकाशन मदिर, इलाहाबाद, १९४१

कविप्रिया आचार्य केशवदास

कबीर-ग्रन्थावली सपा०—श्यामसुन्दरदास, १९२८

कहानी जैनेन्द्रकुमार

कादम्बरी—एक सास्कृतिक अध्ययन डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

काव्य के रूप गुलाबराय

काव्यो मे शैली और कौशल प० परशुराम चतुर्वेदी

घनानन्द ( सुजानहित ) आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

चन्दवरदायी और उनका काव्य

चन्दायन मुल्ला दाऊद, सपा०—डा० परमेश्वरीलाल गुप्त

चिन्तामणि ( प्रथम भाग ) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

चित्ररेखा जायसी, सपा०—डा० शिवसहाय पाठक

चित्रावली उसमान, सपा०—जगमोहन वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

छन्द पयोनिधि भाषा   हरदेवदास
छिताई-वार्ता   सपा०–माताप्रसाद गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वि० स० २०१५
जायसी-ग्रन्थावली   सपा०–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९२४
ढोला-मारू रा दोहा   रामसिंह, सूर्यकिरण पारीक आदि, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९३४
तसव्वुफ अथवा सूफीमत   चन्द्रवली पाण्डेय
दामोचरित   संपा०–नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, परिमल प्रकाशन, प्रयाग.
पदमावत   जायसी, सपा०–वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य-सदन, झाँसी.
पृथ्वीराज राठौर   सपा०–कृष्णशकर शुक्ल, साहित्य-निकेतन, कानपुर
प्राचीन भारत मे नगर तथा नगरजीवन   डा० उदयनारायण राय.
प्राचीन काव्यो की रूपपरम्परा   अगरचन्द नाहटा
पुराणो की अमर कहानियाँ   रामप्रताप त्रिपाठी
ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन   डा० सत्येन्द्र
भारतीय प्रेमाख्यान काव्य   डा० हरिकान्त श्रीवास्तव
भारतीय सस्कृति मे जैनधर्म का योगदान   डा० हीरालाल जैन
मधुमालती   मझन, सपा०–डा० माताप्रसाद गुप्त, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६१
मधुमालती   मझन, सपा०—शिवगोपाल मिश्र, हिन्दी-प्रचारक, वाराणसी, १९५७
मधुमालती वार्ता   चतुर्भुजदास, सपा०—डा० माताप्रसाद गुप्त
मध्यकालीन धर्मसाधना   डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन   डा० सत्येन्द्र.
मृगावती   कुतवन, सपा०—डा० शिवगोपाल मिश्र, हिन्दीसाहित्य सम्मेलन प्रयाग
यशस्तिलक का सास्कृतिक अध्ययन   डा० गोकुलचन्द्र जैन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान, वाराणसी.
रसरतन   पुहकर, सपा०—डा० शिवप्रसाद सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.

राजस्थानी भाषा और साहित्य मोतीलाल मेनारिया
रूपमंजरी नददास, सपा०—व्रजेश्वर वर्मा
लखमसेन-पदमावतीकथा सपा०—नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, परिमल प्रकाशन, प्रयाग, १९५९.
लोकसाहित्य की भूमिका सत्यव्रत अवस्थी
वीरकाव्य डा० उदयनारायण तिवारी
शैली प० करुणापति त्रिपाठी
शैली और कौशल प० सीताराम चतुर्वेदी
सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा सत्यनारायण पाण्डेय.
सस्कृत साहित्य का इतिहास श्री ए० बी० कीथ [ हिन्दी अनुवाद ]
साहित्य का मर्म डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी.
सूफीमत—साधना और साहित्य डा० रामपूजन तिवारी
सूरपूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य डा० शिवप्रसाद सिंह, हिन्दी-प्रचारक, वाराणसी
हरिभद्र के प्राकृत साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन डा० नेमिचन्द्र, शास्त्री
हर्षचरित—एक सास्कृतिक अध्ययन डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
हिन्दी काव्यधारा : राहुल साकृत्यायन, १९५४
हिन्दी काव्य मे प्रतीकवाद का विकास डा० वीरेन्द्र सिह
हिन्दी काव्यरूपो का अध्ययन डा० रामबाबू शर्मा
हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास डा० भगीरथ मिश्र
हिन्दी के विकास मे अपभ्रश का योगदान डा० नामवर सिह
हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास डा० दशरथ ओझा
हिन्दी महाकाव्यो का स्वरूप और विकास डा० शम्भूनाथ सिंह
हिन्दी साहित्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, वि० स० २००९
हिन्दी साहित्य का अतीत आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य का आदिकाल डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी सूफी कवि और काव्य डा० सरला शुक्ल, वि० स० २०१३

## संस्कृत-ग्रन्थ

अग्निपुराण.
अभिधानचिन्तामणि
अमरकोश अमरसिंह.
उत्तररामचरित भवभूति, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी.
ऋग्वेद : संपा०—श्रीराम शर्मा
ऐतरेयब्राह्मण
कामसूत्र वात्स्यायन
काव्यप्रकाश आचार्य मम्मट
काव्यादर्श दण्डी, भाडारकर ओरियंटल इंस्टीट्यूट, पूना, १९३८.
काव्यानुशासन हेमचन्द्र, भाग १, महावीर जैन विद्यालय, बंबई, १९३८
काव्यालंकार रुद्रट
काव्यालंकार भामह, चौखंभा संस्कृत सिरीज, १९२८
केनोपनिषत्
तैत्तिरीयब्राह्मण.
तैत्तिरीयोपनिषत्.
तैत्तिरीयसंहिता
ध्वन्यालोक आनन्दवर्द्धनाचार्य.
नाट्यदर्पण ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९२१
नाट्यशास्त्र भरत मुनि, बड़ौदा, १९२६
पाणिनीयशिक्षा
पिंगलच्छन्द सूत्रम् पिंगल नागमुनि
बृहत्कथाकोश
ब्रह्मपुराण
मानसार
रघुवंश कालिदास
रत्नावली नाटिका श्रीहर्ष
वक्रोक्तिजीवित भामह
वर्णरत्नाकर संपा०—सुनीतिकुमार चटर्जी
वाचस्पत्य कोश तारानाथ
वायुपुराण

वैदिक इण्डेक्स, भाग १
शतपथब्राह्मण
श्वेताश्वतरोपनिषत्
श्रीमद्भागवत गीताप्रेस, गोरखपुर
सरस्वतीकण्ठाभरण भोजराज
साहित्य दर्पण आचार्य विश्वनाथ, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी
हर्षचरित बाण, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१८

## अपभ्रंश-प्राकृत-ग्रन्थ

करकण्डचरिउ मुनि कनकामर, संपा०—डा० हीरालाल जैन, प्रथम संस्करण, जैन सिरीज, कारंजा, १९३४, द्वितीय संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६४

कामकन्दलाख्यान आनन्दधर, संपा०—एम० आर० मजूमदार
कीर्तिलता और अवहट्टभाषा डा० शिवप्रसाद सिंह, हिन्दी-प्रचारक, वाराणसी

कुवलयमाला उद्योतनसूरि, संपा०—डा० ए० एन० उपाध्ये, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, वि० सं० २०१५
गोम्मटसार आचार्य नेमिचन्द्र, रायचन्द्र शास्त्रमाला, बम्बई, १९२७-२८
जम्बूसामिचरिउ वीर कवि, संपा०—डा० वी० पी० जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६७

जसहरचरिउ पुष्पदन्त, संपा०—पी० एल० वैद्य, जैन सिरीज, कारंजा, १९३१.
दशवैकालिक-सूत्र हरिभद्र-वृत्ति, मनसुखलाल महावीर प्रिंटिंग वर्क्स, बम्बई

धूर्ताख्यान हरिभद्रसूरि, संपा०—डा० ए० एन० उपाध्ये, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९४४
णायकुमारचरिउ पुष्पदन्त, संपा०—डा० हीरालाल जैन, जैन सिरीज, कारंजा, १९३३
पउमचरिउ स्वयम्भू, संपा०—डा० एच० सी० भायाणी, भारतीय विद्याभवन, बम्बई

पउमसिरिचरिउ धाहिल, सपा०—डा० एच० सी० भायाणी, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, वि० सं० २००५.
भविसयत्तकहा धनपाल धक्कड, सपा०—सी० डी० दलाल, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बडौदा, १९२३
मयणपराजयचरिउ हरिदेव, सपा०—डा० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६२
माधवानल-कामकन्दला कुशललाभ, सपा०—एम० आर० मजूमदार, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बडौदा
लीलावईकहा कौतूहल, सपा०—डा० ए० एन० उपाध्ये, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४९
वसुदेवहिण्डी संघदासगणि, सपा०—मुनि चतुरविजय-पुण्यविजय, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर
वीसलदेवरासो सपा०—सत्यजीवन वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वि० सं० १९८२, डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, डा० तारकनाथ अग्रवाल, हिन्दी प्रचारक, वाराणसी, १९६२
समराइच्चकहा हरिभद्रसूरि, सपा०—डा० हर्मन जेकोबी, एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, १९२६
सिरिपासनाहचरिय गुणचन्द्र, सपा०—आचार्य विजयकुमुदसूरि, अहमदाबाद, १९४५
सिरिसिरिवालकहा रत्नशेखरसूरि, भावनगर, १९२३
सुअन्धदहमीकहा उदयचन्द्र, सपा०—डा० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६६
सुपासनाहचरिय लक्ष्मणगणि, सपा०—हरगोविन्ददास, वाराणसी, वी० सं० २४४५
संदेशरासक अब्दुर्रहमान, हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर, बम्बई, १९६०

## गुजराती-ग्रन्थ

प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह : गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बडौदा, १९१६

## अंग्रेजी-ग्रन्थ

ऑन दि वेद्स श्री अरविन्द, पाण्डिचेरी, १९५६

ऑन दि लिमिट्स ऑफ पोइट्री एलेन टेट
आर्ट ऑफ जेम्स जोयस ए० वाल्टन लिट्ज
आर्ट एण्ड रियलिटी जॉयस केरी
आस्पेक्ट्स ऑफ नॉवेल ई० एम० फोर्सटर
इंगलिश लिटरेचर एण्ड आइडियाज इन दि ट्वेंटियथ सेंचुरी डा० एच० वी० रथ
इनसाइक्लोपीडिया ऑफ दि आर्ट डेगोबर्ट रून्स एण्ड एच० जी० श्रिकल्स, पीटर आन लंदन, १९६५
इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलाजन्स एण्ड इथिक्स जेम्स हेस्टिंग्स
इन्फ्लूएन्स ऑफ इस्लाम
एसेज ऑन लिटरेचर एण्ड आइडियाज जॉन वेन
ओरिजिन एण्ड इवोल्यूशन ऑफ रिलीजन हॉपकिन्स
क्राफ्ट ऑफ फिक्शन ल्यूबक
टाइम एण्ड दि नॉवेल
टू चीयर्स फॉर डेमोक्रेसी ई० एम० फोर्सटर
टेकनिक ऑफ नॉवेल • डएविन म्योर
डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर टी० शिप्ले
नॉवेलिस्ट ऑन दि नॉवेल
पर्सियन मिस्टिक्स अत्तार
फॉर्म्स ऑफ मॉडर्न फिक्शन
मिस्टिक्स ऑफ इस्लाम फनाफिल हक
राइटर्स एट वर्क.
लव अगेंस्ट हेट कालमेनिंगर
साइंस ऑफ इमोशन्स डा० भगवानदास
सेक्रेड वुड टी० एस० इलियट
स्टाइल वाल्टर रेले
स्ट्रक्चर ऑफ नॉवेल कार्ल एच० ग्रेबो.

## हिन्दी-पत्रिकाएं

अनेकान्त, दिल्ली
अवन्तिका
नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी
परिषद्-पत्रिका, पटना

परिशोध, चण्डीगढ़
राजस्थान-भारती
श्रमण, वाराणसी
हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद

## अंग्रेजी-पत्रिकाएँ

इंडियन एण्टीक्वेरी
जर्नल ऑफ दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा
लन्दन मेगजीन
न्यू इंडियन एण्टीक्वेरी
जैन एण्टीक्वेरी
जर्नल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन.

# अनुक्रमणिका